ब्रज-साहित्य-माला सं० ३

सूर-निर्णय

सूरदास के जीवन, ग्रंथ, सिद्धांत और काव्य की निर्णयात्मक समीक्षा

लेखक :

द्वारकादास परीख

प्रभुदयाल मीतल

प्रकाशक :

[अग्रवाल प्रेस, मथुरा के लिए]

साहित्य संस्थान, मथुरा

तृतीय सस्करण

मकर सक्रांति, स० २०१८ वि०

[१४ जनवरी सन् १९६२ ई०]

मूल्य ६)

मुद्रक :

त्रिलोकीनाथ मीतल, भारत प्रिंटर्स, डैम्पियर पार्क, मथुरा।

परिचय

हिंदी प्रेमी पाठकों को सुयोग्य लेखक द्वय का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य से संबंध रखने वाले आप लोगों के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जो आप लोगों की विद्वत्ता के परिचायक हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखकों ने महाकवि सूरदास से संबंध रखने वाली समस्त प्रमुख समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पाँच परिच्छेदों में क्रम से सामग्री, चरित्र, ग्रंथ, सिद्धांत तथा काव्य का विवेचन किया गया है। ग्रंथ में अनेक स्थलों पर कुछ नवीन सामग्री का उल्लेख किया गया है। इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा इसकी पूर्ण परीक्षा होनी चाहिए। स्वतंत्रता पूर्वक उद्धरण देने से पुस्तक विशेष रोचक और उपयोगी हो गयी है; यद्यपि साथ ही आलोचनात्मक अंश में कमी करनी पड़ी है।

सूरदास तथा वल्लभ संप्रदाय का अध्ययन हिंदी विद्वानों के द्वारा देर में प्रारंभ हुआ, किंतु यह हर्ष का विषय है कि इस कमी की पूर्ति अब शीघ्रता से हो रही है। इस आलोचनात्मक अध्ययन की माला में 'सूर-निर्णय' इस समय अंतिम कड़ी है। आशा है, यह महत्वपूर्ण ग्रंथ सूर के अध्ययन को अग्रसर करने में सहायक होगा।

—धीरेन्द्र वर्मा
१४ अगस्त, १९४९

(डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट्०)
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
वि श्व वि द्या ल य, प्र या ग

तृतीय संस्करण के संबंध में

सूर-निर्णय का यह संस्करण तब प्रकाशित हो रहा है, जब इसके एक लेखक श्री द्वारकादास जी परीख इस धरा धाम में विद्यमान नहीं है। अपने जीवन के अंतिम कई वर्षों तक वे बल्लभ संप्रदाय के प्रचार और धार्मिक ग्रंथों के प्रकाशन के लिए गुजरात के अहमदाबाद–बड़ौदा नगरो मे निवास करते रहे थे। इसीलिए उनका मथुरा आना-जाना बहुत कम होता था। पिछली बार जब वे दो-एक दिन के लिए आये थे, तब मैंने उनसे इस ग्रंथ के संशोधन-परिवर्द्धन में अपना सहयोग देने के निमित्त कुछ समय तक मथुरा में रुक जाने को कहा था। उन्होंने उत्तर दिया कि उस समय उन्हे आवश्यक कार्य के लिए बड़ौदा जाना है। वहाँ से निवृत्त होकर वे शीघ्र ही कुछ समय तक यहाँ जम कर रहेंगे; तभी इस कार्य के लिए वे अपना सहयोग दे सकेंगे। मथुरा से जाने के थोड़े ही समय बाद अकस्मात उन्हे दिल का दौरा हुआ और मि० वैशाख शु० ४ सं० २०१८ तदनुसार ता० १६ अप्रैल १९६१ बुधवार को रात्रि के ९–३० बजे बड़ौदा में उनका गोलोक-बास हो गया। इस प्रकार उनके सहयोग से इस ग्रंथ के संशोधित संस्करण निकालने की बात सदा के लिए समाप्त हो गई।

श्री परीख जी से मेरा संपर्क मेरे ग्रंथ 'अष्टछाप परिचय' के प्रकाशित होने पर हुआ था। जब इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति काकरौली पहुँची, तब वहाँ के बल्लभ संप्रदायी विद्वानों ने इसका बड़ा स्वागत किया और 'शुद्धाद्वैत एकेडमी' ने इसके लिए लेखक को विधिपूर्वक सन्मानित करने की कृपा की। श्री परीख जी उस समय कांकरोली में रहते थे। उन्होंने भी इसके लिए मुझे साधुवाद का पत्र लिखा था। इसके बाद उनसे बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा।

'अष्टछाप-परिचय' के अनंतर मुझे 'सूर-समीक्षा' का एक ग्रंथ प्रस्तुत करना था। इसके लिए आवश्यक सामग्री भी संकलित करली गई थी। परीख जी के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि उनके पास भी सूर संबंधी सामग्री है। इसी बीच कांकरौली के विद्वानों से उनका मतभेद हो गया और वे वहाँ से अन्यत्र जाने का विचार करने लगे। जब उन्होंने इसकी सूचना मुझको दी, तो मैंने उन्हें मथुरा आकर ब्रज-वास करने का सुझाव दिया। वे मथुरा आ कर

रहने लगे यहा आने पर उ होने पहिले श्री हरिराय जी कृत लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' जैसे बृहद् ग्रंथ का संपादन किया, और फिर मेरे साथ मिल कर 'सूर-निर्णय' ग्रंथ को प्रस्तुत किया। इन दोनों ग्रंथों का हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इसके बाद उन्होंने लीला भावना वाली 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' का संपादन कर उसे गुजरात से प्रकाशित किया था। श्री परीख जी वार्ता साहित्य के विशेषज्ञ और बल्लभ संप्रदाय के मर्मज्ञ थे। उनके आकस्मिक देहावसान से उक्त संप्रदाय का एक विशिष्ट विद्वान ही उठ गया।

'सूर-निर्णय' के अब तक दो संस्करण निकल चुके हैं। इस बीच सूर संबंधी कई ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, और कुछ नवीन सामग्री भी प्रकाश में आई है। मेरा विचार इस संस्करण को परिवर्द्धित रूप में प्रस्तुत करना था; किन्तु दो लेखकों की रचना को एक ही लेखक के विचारों के अनुसार एक दम परिवर्तित किया जाना उचित नहीं समझा गया है। इसलिए साधारण सा परिवर्द्धन और संशोधन कर तथा कुछ नवीन सामग्री का समावेश कर यह तीसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, सूर-साहित्य के विद्वान और अध्येता गण इसका पूर्ववत् स्वागत करेंगे।

इस ग्रंथ में सूरदास का जो रंगीन चित्र दिया गया है, उसका ब्लाक दिल्ली राष्ट्रीय संग्रहालय के प्रामाणिक एवं प्राचीन चित्र के आधार पर बनाया गया है। इसे डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने मुझे तब उपलब्ध कराया था, जब वे उक्त संग्रहालय के अधीक्षक थे। इसके लिए मैं राष्ट्रीय संग्रहालय और आदरणीय अग्रवाल जी का अनुगृहीत हूँ।

मीतल निवास, मथुरा.
मार्गशीर्ष पूर्णिमा, सं० २०१८

—**प्रभुदयाल मीतल**

प्राक्कथन

हिंदी साहित्यिक समालोचना के आरंभिक काल से अब तक हिंदी कवियों में सूरदास का सर्वोपरि महत्व माना गया है; किंतु उनके काव्य का वास्तविक अध्ययन अब से कुछ समय पूर्व ही आरंभ हुआ है। किसी कवि के अध्ययन के लिए उसकी कृतियों के सुसंपादित संस्करण की सबसे पहले आवश्यकता होती है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि सूरदास के जीवन-काल में ही उनकी रचनाओं के हस्त लिखित संग्रह होने लगे थे, जो लिपि-प्रतिलिपि के क्रम से बाद में भी बराबर होते रहे। इस समय जो संग्रह उपलब्ध हैं, वे सूरदास के कुछ समय बाद से लेकर अब तक के भिन्न-भिन्न संवतों में लिपिबद्ध किये गये हैं। वे लिपिकर्ताओं की रुचि और उनके ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं; किंतु उनमें कोई संग्रह ऐसा नहीं है, जिसे सूरदास की समस्त रचनाओं का सर्वांगपूर्ण संकलन कहा जा सके !

यह तो हुई हस्त लिखित प्रतियों की बात; अब सूरदास की मुद्रित रचनाओं पर विचार कीजिये। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी की बहुमुखी प्रवृत्तियों में सूरदास की रचनाओं के संपादन को भी स्थान मिला था; किंतु उनके असामयिक निधन के कारण इस संबंध मे कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी। भारतेन्दु जी के कार्य को उनके आत्मीय श्री राधाकृष्ण दास ने आगे बढ़ाया। उन्होंने सूरसागर का संपादन किया और इसके आरंभ में सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी व्यापक प्रकाश डाला। सूरसागर का यह संस्करण बंबई से प्रकाशित हुआ है। उस समय की उपलब्ध सामग्री को देखते हुए राधाकृष्ण दास जी का उक्त कार्य निस्संदेह बड़ा महत्व-पूर्ण था; किंतु आजकल के अनुसंधान प्रिय पाठकों को इससे संतोष न होना स्वाभाविक है। लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से भी सूरसागर का एक संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें नित्योत्सव और वर्षोत्सव संबंधी उनके कतिपय पदों का संकलन है; अत. इसे 'सूरसागर' की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

ब्रजभाषा साहित्य के धुरंधर विद्वान श्री जगन्नाथदास "रत्नाकर" ने सूरसागर के एक सर्वांगपूर्ण संस्करण का संपादन-कार्य आरंभ किया था, जो उनके आकस्मिक देहावसान के कारण पूर्ण न हो सका। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने रत्नाकर जी की सामग्री के आधार पर श्री नंददुलारे वाजपेयी से संपादित करा कर सूरसागर को दो खंडों में प्रकाशित किया है। यद्यपि

को भी इसका यथेष्ट परिचय नहीं है । जिस सामग्री से वे परिचित हैं, उसक भी उन्होंने गंभीरता पूर्वक अध्ययन नहीं किया है और पूर्व धारणा के कारए उन्होंने उसके विरुद्ध मत प्रकट किया है । दुर्भाग्य से हिंदी साहित्य के कतिपय विद्वानों की कुछ समय से यह धारणा बन गई है कि पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय है, अतः वे प्रमाण रूप से इसे स्वीकार नहीं करते है, जिसके कारण पुष्टि संप्रदायी कवियों के संबंध में उनके निर्णय अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण रह जाते हैं। हिंदी साहित्य के शोधकों में डा० दीनदयाल गुप्त ने उक्त साहित्य का अपेक्षाकृत अधिक अध्ययन किया है और उनका दृष्टिकोण भी सद्भावनापूर्ण है, अतः वे अन्य विद्वानों की अपेक्षा पुष्टि संप्रदायी कवियों का विस्तृत एवं विश्वसनीय विवरण उपस्थित कर सके हैं ।

हम पिछले कई वर्षो से पुष्टि संप्रदाय के अप्रकाशित वार्ता साहित्य एवं सांप्रदायिक साहित्य का अनुसंधान करते रहे हैं। हमने पुष्टि संप्रदायी पुस्तकालयों एवं प्राचीन 'हवेलियों' में संगृहीत प्रचुर सामग्री का विस्तृत अध्ययन किया है । पुष्टि संप्रदायी मंदिरों की सेवा-विधि और कीर्तन-प्रणाली का व्यक्तिगत रूप से अनुभव और मनन करते हुए हमने पुष्टि संप्रदायी विद्वानों के सत्संग का लाभ भी उठाया है । इस प्रकार अपने अनुशीलन के फल स्वरूप समय-समय पर हमने जो सूचनाएँ, निबंध एवं ग्रंथ प्रकाशित किये हैं, उनका हिंदी के गण्यमान्य विद्वानों ने सन्मान किया है। कई वर्षों के परिश्रम के उपरांत अब हमारे निष्कर्ष इस स्थिति पर पहुँच गये हैं कि हम निर्णयात्मक रूप से कुछ कह सकें। हमारे निर्णय विश्वसनीय अंतःसाक्ष्य एवं माननीय वहिःसाक्ष्य पर आधारित हैं, अतः वे ठोस और प्रामाणिक कहे जा सकते हैं। संभव है अन्य विश्वस्त नवीन सामग्री के प्राप्त होने पर हमको इनमें भी कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हो, किंतु अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम नम्रता पूर्वक कह सकते हैं कि हमारे निर्णय अपरिवर्तनीय हैं। ये निर्णय पाँच वर्गों में विभाजित हैं, जिनको हमने प्रस्तुत पुस्तक के १. सामग्री-निर्णय, २. चरित्र-निर्णय, ३. ग्रंथ-निर्णय, ४. सिद्धांत-निर्णय, ५. काव्य-निर्णय नामक पाँच परिच्छेदों में समाविष्ट किया है ।

प्रथम परिच्छेद सामग्री-निर्णय में हमने प्रकाशित एवं अप्रकाशित उस सामग्री की समीक्षा की है, जिस पर हमारा सूरदास विषयक निर्णय आधारित है। यह सामग्री अंतःसाक्ष्य, वहिःसाक्ष्य और आधुनिक सामग्री के रूप में तीन श्रेणियोंमें विभाजित की गई है । अंतःसाक्ष्य में सूरदास के आत्म विषयक

कथनों पर विचार किया गया है । यद्यपि इस प्रकार के कथनों की संख्या अधिक नहीं है, तथापि विशाल-काय सूर-काव्य में खोजने पर ऐसे कतिपय कथन भी मिल जाते हैं, जिनसे सूरदास के जीवन-वृत्तांत का निर्णय करने मे महत्वपूर्ण सहायता मिलती है । हमने ये आत्म-कथन सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर में से संगृहीत किये हैं । हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान सूर-सारावली और साहित्य-लहरी को सूरदास की रचनाएँ मानने में संदेह करते हैं । इन दोनो ग्रंथों के गंभीर अध्ययन के अनंतर हमारा मत है कि सूर-सारावली और साहित्य-लहरी (वंश-परिचय वाले ११८ वें पद के अतिरिक्त) सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ हैं । यद्यपि इन दोनों ग्रंथों में से भी हमने कुछ आत्म-कथनों का संकलन किया है, फिर भी अंतःसाक्ष्य के संबंध में हमारा मुख्य आधार सूरसागर है, जिसके सूरदास कृत होने में किसी को भी संदेह नहीं है । बहिःसाक्ष्य में पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य मुख्य है । हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान इस साहित्य को अप्रामाणिक मानते हैं, अतः हमने श्रावण शु० ७ शुक्रवार सं० १७४६ के प्राचीन उद्धरण से वार्ता साहित्य के प्रारंभ और विकास का इतिहास बतलाया है । यह एक नवीन खोज है, जिससे वार्ता साहित्य की प्रामाणिकता पर निर्णयात्मक रूप से प्रकाश पड़ता है । पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य में चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता एवं भावप्रकाश तथा सांप्रदायिक साहित्य में वल्लभ-दिग्विजय, वार्ता मणि माला, अष्टसखामृत, संप्रदायकल्पद्रुम, भावसंग्रह आदि प्राचीन ग्रंथों के सूरदास संबंधी उल्लेख बहिःसाक्ष्य के रूप में लिये गये हैं । चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर हरिराय जी कृत भावप्रकाश प्राचीन एवं विश्वस्त बहिःसाक्ष्य है । अन्य प्राचीन बहिःसाक्ष्यों में भक्तमाल और इसकी टीकाओं के उल्लेखों पर विचार किया गया है । बहिःसाक्ष्य में हमने वही उल्लेख स्वीकार किये है, जिनकी पुष्टि अंतःसाक्ष्य से भी हो गई है । सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री तीन श्रेणियो में इस प्रकार विभाजित की गई है—१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री, २. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री, ३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री । आधुनिक सामग्री में सूर-काव्य की आलोचना तो महत्वपूर्ण है, किंतु सूरदास का जीवन-वृत्तांत विषयक विवरण अत्यंत अपर्याप्त एवं त्रुटिपूर्ण है । इसके उपरांत हमने यह निर्णय किया है कि सूरदास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कौन सी सामग्री उपयोगी है और कौन सी अनुपयोगी । हमने अपने निर्णय की पुष्टि में युक्ति-युक्त कारण एवं प्रमाण भी देने की चेष्टा की है ।

द्वितीय परिच्छेद चरित्र-निर्णय में अपनी शोध के आधार पर हमने सूरदास का प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित किया है। हिंदी साहित्य संबंधी ग्रंथों में अब तक सूरदास की जीवन-घटनाओं एवं उनके काल-निर्णय के विषय में बहुत कम लिखा गया है। जो कुछ लिखा भी गया है, वह विवाद-ग्रस्त एवं त्रुटिपूर्ण है। सूरदास जैसे महाकवि के जीवन-वृत्तांत की अपूर्णता एवं त्रुटि हिंदी साहित्य के गौरव को क्षति पहुँचाने वाली बात है। विभिन्न क्षेत्रों में सूरदास संबंधी वर्षों के अध्ययन एवं अन्वेषण के अनंतर अब वह समय आ गया है कि उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तात उपस्थित किया जा सके। हमको हर्ष है कि इस परिच्छेद द्वारा हमने इस दिशा में ठोस कदम बढाने की चेष्टा की है। हमने सूरदास की जन्म-तिथि, जाति, उनके जन्मांधत्व शरण-काल, उपस्थिति-काल और देहावसान-काल पर प्रामाणिक रूप से विचार किया है और तत्संबंधी अपने निर्णय उपस्थित किये हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि ये सभी विषय अभी तक विवादास्पद थे। जाति, जन्मांधत्व और अंतिम काल के निर्णय हमने अंत.साक्ष्यो के आधार पर किये हैं, अत: इनमें परिवर्तन हो सकने की संभावना कम है। जन्म-स्थान के संबंध में हमारे पास "अष्टसखामृत" और "भावप्रकाश" के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं है। इस विषय का अंत:साक्ष्य भी अप्राप्य है। सूरदास के अंधत्व के विषय में हमने विस्तार पूर्वक लिखा है। सूरदास के काव्य की पूर्णता और उनके द्वारा किये गये दृश्य जगत् के यथार्थ वर्णनों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य के प्राय: सभी आधुनिक विद्वान उनकी जन्मांधता में विश्वास नहीं करते हैं, किंतु हमने विश्वस्त अंत:साक्ष्य एवं बहि:साक्ष्यो के आधार पर सूरदास को जन्मांध सिद्ध किया है। इस परिच्छेद में हमने जो कुछ लिखा है, आशा है हिंदी साहित्य के विद्वान इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे। यदि उनको हमारा कथन युक्तियुक्त एवं प्रामाणिक ज्ञात हो, तो वे अपने सूर-संबंधी ग्रंथों में आवश्यक परिवर्तन एवं संशोधन करेंगे।

तृतीय परिच्छेद ग्रंथ-निर्णय में सूरदास की रचनाओं के संबंध में निर्णय किया गया है। सूरदास के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथों में से हमने उनके ७ ग्रंथ स्वतंत्र एवं प्रामाणिक माने हैं, जिनमें सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर मुख्य हैं। अब तक अधिकांश लेखकों ने सूर-सारावली को सूरसागर का सूचीपत्र बतलाया है। अब कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना मानने मे भी संदेह करते हैं, किंतु हमारे मतानुसार यह श्री वल्लभाचार्य जी कृत पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रची हुई सूरदास की स्वतंत्र एवं प्रामाणिक

सैद्धांतिक रचना है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरसागर और सारावली में २७ अंतर स्थापित कर सारावली को अप्रामाणिक बतलाने की चेष्टा की है, किंतु हमने उनके तर्कों पर विस्तार पूर्वक विचार करते हुए "कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण" से ही इसे सूरदास की प्रामाणिक रचना सिद्ध किया है। आजकल 'साहित्य-लहरी' के भी सूरदास कृत होने में संदेह किया जाता है, किंतु हमारे मतानुसार संख्या ११८ के वंश-परिचय वाले पद के अतिरिक्त यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है। हमारे अनुसंधान से ज्ञात होता है कि सूरदास ने इसकी रचना अष्टछाप के अन्य प्रमुख कवि नंददास के लिए सं० १६०७ के लगभग की थी, और इसकी पूर्ति उन्होंने सं० १६१७ मे की। इन दोनों ग्रंथों के संबंध में हमारा विवेचन हिंदी साहित्य शोध के क्षेत्र में कुछ नवीनता उत्पन्न करेगा। सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचना है और इसके सूरदास कृत होने में संदेह भी नहीं किया जाता है, किंतु इसके स्वरूप के सबंध में अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ है। सूरसागर के सुसपादित संस्करण का अभाव सभी अनुभव करते हैं, किंतु इसके यथार्थ स्वरूप का निश्चय किये विना इसका प्रामाणिक संपादन हो भी किस प्रकार सकता है! हमने इस संबंध में अपना निर्णय और सुझाव देकर सूरसागर के संपादन कार्य की एक रूप-रेखा प्रस्तुत की है। हमारे मतानुसार इसका एक रूप 'कथात्मक' है, जिसकी रचना सूरदास ने वल्लभाचार्य जी के उपदेशानुसार श्रीमद्भागवत के आधार पर की थी। इसका दूसरा रूप लीलात्मक है, जो दैनिक कीर्तन के रूप में श्रीनाथ जी के सन्मुख गाया गया था। पहले रूप मे वर्णनात्मक और दूसरे रूप में सेवात्मक पदों की अधिकता थी। इन दोनों प्रकार के रचे हुए पद इतने अधिक थे कि उन सबका संग्रह करना सबके लिए कठिन था, अतः संग्रहकर्ताओं ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनका संकलन कर लिया और बाद में लिपिकर्ताओं की रुचि के अनुसार भी उनमें पदों का न्यूनाधिक्य होता रहा। सूरसागर की उपलब्ध प्रतियों में क्रम-भेद होने का यही कारण ज्ञात होता है। सूरसागर का वास्तविक रूप में संपादन होने से पूर्व उनके अधिक से अधिक पदों का संकलन होना चाहिए। फिर भागवत के क्रमानुसार उनका संपादन होना चाहिए, तब कहीं हम सूरसागर के संपादन करने की स्थिति में होंगे। इस पुस्तक में हमने सूरदास कृत लगभग ५०० पदों का उपयोग किया है। उक्त पदों में से बहुत से पद सूरसागर की मुद्रित प्रतियो मे नहीं मिलेंगे। इनको हमने कीर्तन संग्रहों में से संकलित किया है। सूरदास के अप्रचलित पदों का संग्रह करते समय इनका भी कुछ उपयोग हो सकेगा।

सूरसागर का स्वरूप निश्चित कर हमने उन रचनाओं पर भी विचार किया है, जो सूरदास की स्वतंत्र कृतियाँ मानी जाती हैं, किंतु वास्तव में वे सूरसागर के ही अंतर्गत हैं। सूरसागर का संपादन करते समय इन रचनाओं को उसमें यथास्थान सम्मिलित करना चाहिये। सूरदास की तीन प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त उनकी चार छोटी किंतु स्वतंत्र रचनाओं पर भी विचार किया गया है। सूरदास के पदों में इसी नाम के कुछ अन्य कवियों के पद भी मिल गये हैं, जिनको पृथक् करने की अत्यंत आवश्यकता है। हमने सूरदास के प्रामाणिक पदों की परीक्षा के संबंध में भी कुछ संकेत किया है, जो प्रक्षिप्त पदों के पहिचानने में सहायक हो सकता है। इस परिच्छेद के अंत मे हमने सूरदास कृत लाख-सवालाख पदों की किंवदंती पर भी विचार किया है। सूरदास के रचना-काल और रचना-क्रम की गणना द्वारा हमने निर्णय किया है कि यह किंवदंती सत्य हो सकती है।

चतुर्थ परिच्छेद सिद्धांत-निर्णय में हिंदी पाठकों के लिए कुछ नवीन सामग्री प्रस्तुत की गयी है। पुष्टि संप्रदायी कवि होने के कारण सूर-काव्य मे बल्लभाचार्य जी के सिद्धांत, उनकी भक्ति-भावना और सेवा-प्रणाली के तत्वों का समावेश होना स्वाभाविक है; किंतु उनका स्पष्ट दिग्दर्शन कराने की अभी तक बहुत कम चेष्टा हुई है। हमने शुद्धाद्वैत सिद्धांत के कतिपय प्रमुख तत्वों का विवेचन करते हुए यह बतलाया है कि इनका सूरदास की रचनाओं मे किस प्रकार उल्लेख हुआ है। इसके अनंतर पुष्टिमार्गीय भक्ति और सेवा-विधि का विवेचन किया गया है। बल्लभाचार्य जी की भक्ति-भावना को न समझने के कारण सूरदास की शृंगार-भक्ति पूर्ण रचनाओं पर कभी-कभी अन्य संप्रदायों का प्रभाव बतलाया जाता है; किंतु मूल ग्रंथो के उद्धरणों से हमने सिद्ध किया है कि बल्लभाचार्य जी को माधुर्य भक्ति भी ग्राह्य थी, जिसका प्रभाव सूरदास की शृंगारिक रचनाओं पर पड़ा है। हमने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर पुष्टि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली पर प्रकाश डाला है और सूरदास के तत्संबंधी प्रचलित पदों के अतिरिक्त बहुत से बहुमूल्य अप्रचलित पदों को भी उद्धृत किया है। इस प्रकार हमारा विश्वास है कि यह परिच्छेद पुष्टि संप्रदाय का ज्ञान प्राप्त करने वाले पाठकों को अत्यंत उपयोगी और रोचक ज्ञात होगा।

पंचम परिच्छेद काव्य-निर्णय में सूरदास के काव्य की आलोचना की गयी है। इस संबंध में अब तक जितना और जैसा लिखा जा चुका है, उससे अधिक और उत्तम लिखने की हममें योग्यता भी नहीं है। हमारा विचार

पहले इस परिच्छेद को लिखने का नहीं था, किंतु हमारे कुछ मित्रों का सुझाव था कि विषय की पूर्णता के लिए इस परिच्छेद को लिखना भी आवश्यक है। जब लिखना आरंभ किया, तब इस विषय की सामग्री इतनी बढ़ गयी कि उसका समावेश इस पुस्तक में संभव ज्ञात नहीं हुआ। इसलिए इस परिच्छेद में सूर-काव्य संबंधी कुछ आवश्यक विषयों पर ही विचार किया गया है। सभव है पाठकों को इसमें भी कुछ काम की बातें मिल जावें। सूर-काव्य की विशेषताओं का विवेचन करते हुए हमने गो० तुलसीदास की कुछ रचनाओं पर सूरदास का प्रभाव बतलाया है। इस संबंध में हमने दोनों महाकवियो की रचनाओं के आवश्यक उद्धरण भी दिये हैं। इस परिच्छेद में हम सूर-सगीत पर भी विस्तार पूर्वक लिखना चाहते थे। इसके लिए हमने संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारों से परामर्श किया और सूरदास के अनेक पदों को राग-रागनियों के अनुसार क्रमबद्ध किया। हमको ज्ञात हुआ कि यह कार्य अत्यत श्रमसाध्य एव समयसाध्य है, जिसकी पूर्ति होने तक इस पुस्तक का प्रकाशन रोकना उचित नहीं है। वास्तव में यह एक स्वतंत्र कार्य है, जिसे संगीत शास्त्र का कोई अनुभवी विद्वान ही कर सकता है। हमने इस विषय का संकेत मात्र कर दिया है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी संक्षिप्त रूप से लिख कर हमने यह परिच्छेद समाप्त किया है।

पुस्तक के अंत मे एक परिशिष्ट और दो अनुक्रमणिकाएँ है। परिशिष्ट मे इस पुस्तक में आये हुए अधूरे पदो को पूर्ण रूप में पद-संख्या के संकेत सहित दिया है। अनुक्रमणिका में प्रथम नामानुक्रमणिका और दूसरी ग्रंथानुक्रमणिका है। इनमें क्रमशः इस पुस्तक में उल्लिखित व्यक्तियों एवं ग्रंथों के नामों की अकारादि क्रम से सूचियाँ हैं।

अंत में इस पुस्तक की लेखन-कथा और लेखन-शैली के संबंध में भी कुछ कहना आवश्यक है। हम दोनों लेखकों में से एक गुजराती भाषा-भाषी और दूसरे हिंदी भाषा-भाषी है। एक का संबंध कांकरोली से और दूसरे का मथुरा से रहा है। हम दोनों ने विगत कई वर्षों से पृथक् क्षेत्रों में अष्टछाप के कवियों का अनुसंधान एवं अध्ययन किया है और तत्संबंधी अपनी रचनाएँ प्रकाशित की है। साक्षात्कार का सुयोग मिलने के पूर्व ही हम उक्त रचनाओ के कारण एक दूसरे से परिचित हो गये थे और पत्र-व्यवहार द्वारा अपने विचारो का आदान प्रदान करते रहे थे। अंत में हमने मथुरा में अपने सूर-संबधी अध्ययन कार्य का सामंजस्य कर पारस्परिक सहयोग से यह पुस्तक प्रस्तुत की है। अपने शोध के निष्कर्षों की तरह हमने इस पुस्तक की लेखन-शैली मे भी

सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। ऐसा करने पर भी यदि कहीं पर लेखन-शैली में एक-रूपता और भाषा में एक सा प्रवाह ज्ञात न हो तो इसका कारण दो भिन्न भाषा-भाषी लेखकों की रचना समझ कर पाठक हमको क्षमा कर सकते हैं। यहाँ पर हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस ग्रंथ के निर्णय शुद्ध साहित्यिक शोध के आधार पर किये गये हैं। इनमें सांप्रदायिक आग्रह की गंध भी नहीं है। विद्वान आलोचकों से निवेदन है कि वे इसी दृष्टि से हमारे निर्णयों पर विचार करें।

इस पुस्तक की रचना में जिन प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रंथों से सहायता ली गयी है, उनमें से प्रमुख सहायक ग्रंथों की सूची पुस्तक के आरंभ में दे दी गयी है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ ग्रंथों तथा लेखों का उपयोग किया गया है। हस्त लिखित सामग्री के लिए पुष्टि संप्रदायी प्राचीन पुस्तकालयों एवं मंदिरों से तथा कतिपय अप्रचलित पदों के लिए संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारों से हमें बहुमूल्य सहायता मिली है। हम इन सब के अत्यंत अनुगृहीत हैं और उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम अपने आदरणीय डा० धीरेन्द्र वर्मा महोदय के भी अत्यंत आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का परिचय लिखने की कृपा की है।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी सं० २००६] — **लेखक**

द्वितीय संस्करण के संबंध में

हर्ष की बात है, 'सूर-निर्णय' के प्रथम संस्करण का हिंदी जगत् में यथेष्ट आदर हुआ। हिंदी के सर्वमान्य विद्वानों और उच्च कोटि के सामयिक पत्रों ने लेखकों के परिश्रम की सराहना कर इस ग्रंथ का गौरव बढ़ाया तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन और विभिन्न विश्व विद्यालयों ने हिंदी की सर्वोच्च परीक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तक निश्चित कर इस ग्रंथ की उपयोगिता स्वीकार की। लेखक इन सब महानुभावों के अत्यंत कृतज्ञ हैं।

हिंदी जगत् में हमारी सामग्री और मान्यताओं की काफी चर्चा हुई, किंतु हमको कुछ ऐसे सुझाव प्राप्त नहीं हुए, जिनके आधार पर हम अपने मत में संशोधन करने की आवश्यकता समझते। इस बीच में कई विद्वानों की सूर संबंधी कुछ कृतियाँ भी देखने में आईं; किंतु उनमें भी कोई ऐसी सामग्री हाथ नहीं लगी, जो हमारी मान्यताओं के विरुद्ध हो। ऐसी स्थिति में यह संस्करण जहाँ-तहाँ कुछ साधरण से परिवर्तन के बाद ही प्रकाशित किया जा रहा है।

मार्गशीर्ष शु० ११ सं० २००८] **लेखक**

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद
सामग्री-निर्णय

विषय

द्वितीय परिच्छेद
चरित्र-निर्णय

विषय ... पृष्ठ संख्या

*

तृतीय परिच्छेद
ग्रंथ-निर्णय

*

चतुर्थ परिच्छेद
सिद्धांत-निर्णय

विषय — पृष्ठ संख्या

*

पंचम परिच्छेद

काव्य–निर्णय

विषय				पृष्ठ संख्या

*

परिशिष्ट

*

अनुक्रमणिका

सहायक ग्रंथों की सूची

संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
१.	अणुभाष्य (संस्कृत) ...	ब्रह्मसूत्र भाष्य	वल्लभाचार्य जी
२.	सुबोधिनी " ...	भागवत टीका ...	"
३.	पुरुषोत्तम सहस्रनाम (संस्कृत)	... ...	"
४.	तत्वदीप निबंध (")	... ...	"
५.	षोडश ग्रंथ (")	... ...	"
६.	विद्वन्मंडन (")	... ...	विट्ठलनाथ जी
७.	शृंगार रस मंडन (")	... ...	"
८.	वल्लभ दिग्विजय (")	... ...	यदुनाथ जी
९.	शिक्षा पत्र (")	... ...	हरिराय जी
१०.	वार्ता मणिमाला (")	... ...	श्रीनाथ भट्ट
११.	हस्त लिखित वार्ता पुस्तक सं० १७४६ में लिपिबद्ध एवं	सरस्वती भंडार, कांकरोली में सुरक्षित	
१२.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता हस्त लिखित एवं मुद्रित ...		गोकुलनाथ जी
१३.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लीला भावना वाली) ...		हरिराय जी
१४.	निज वार्ता, घरू वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र		"
१५.	संप्रदाय कल्पद्रुम	... ...	विट्ठलनाथ भट्ट
१६.	भाव संग्रह	... ...	द्वारकेश जी
१७.	प्राचीन वार्ता रहस्य (द्वि. भा.)	विद्याविभाग, कांकरोली	द्वारकादास परीख
१८.	खट् ऋतु वार्ता	चतुर्भुजदास कथित	"
१९.	वार्ता साहित्य मीमांसा (गुजराती)	... ...	"
२०.	श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता	...	मोहनलाल पंड्या
२१.	सूरसागर	बेंकटेश्वर प्रेस, बंबई	राधाकृष्णदास
२२.	सूरसागर	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	
२३.	सूरसागर	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
२४.	संक्षिप्त सूरसागर	... ...	बेनीप्रसाद
२५.	सूरदास के पद	हस्त लिखित	निजी संग्रह
२६.	कीर्तन संग्रह	प्रकाशित एवं हस्तलिखि ...	
२७.	सूर-सारावली	(अग्रवाल प्रेस, मथुरा)	प्रभुदयाल मीतल
२८.	साहित्य-लहरी	(साहिय संस्थान, मथुरा)	प्रभुदयाल मीतल
२९.	पंच मंजरी	(रसमंजरी, रूपमंजरी) ...	नंददास
३०	भक्ति रस बोधिनी	...	प्रियादास

संख्या	ग्रंथ	परिचय	रचयिता
२१.	भक्तमाल-भक्तविनोद	... ...	मियाँसिंह
३२.	राम-रसिकावली	... ...	रघुराज सिंह
३३.	भक्त-नामावली	... ...	ध्रुवदास
३४.	नागर-समुच्चय	... ...	नागरीदास
३५.	मूल गोसांई चरित्र	... ...	बेणीमाधव दास
३६.	तुलसी-ग्रंथावली (द्वितीय खंड)		रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
३७.	तुलसीदास	... ...	माताप्रसाद गुप्त
३८.	भ्रमरगीत-सार	... ...	रामचंद्र शुक्ल
३९.	सूर-पंचरत्न	...	भगवानदीन, मोहनवल्लभ पंत
४०.	सूर-समीक्षा	... ...	नरोत्तमदास स्वामी
४१.	सूर-मुक्तावली	... ...	हरदयालुसिंह
४२.	हिंदी साहित्य का इतिहास	... ...	रामचंद्र शुक्ल
४३.	हिंदी साहित्य	... ...	श्यामसुंदर दास
४४.	हिंदी साहित्य का इतिहास	... ...	रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
४५.	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	. ...	रामकुमार वर्मा
४६.	हिंदी नवरत्न	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ ...	मिश्रबंधु
४७.	सूरदास (अंग्रेजी)	... ...	जनार्दन मिश्र
४८.	सूर-साहित्य	... ...	हजारीप्रसाद द्विवेदी
४९.	भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास	...	नलिनीमोहन सान्याल
५०.	सूर-साहित्य की भूमिका	...	रामरतन भटनागर, वाचस्पति त्रिपाठी
५१.	सूरदास : एक अध्ययन	... ...	रामरतन भटनागर
५२.	सूर-सौरभ	... ...	मुंशीराम शर्मा
५३.	सूरदास	... ...	ब्रजेश्वर वर्मा
५४.	अष्टछाप-परिचय	... ...	प्रभुदयाल मीतल
५५.	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	... ...	दीनदयालु गुप्त
५६.	महाकवि सूरदास	... ...	नंददुलारे वाजपेयी
५७.	भारतीय साधना और सूर-साहित्य	... ...	मुंशीराम शर्मा
५८.	सूर और उनका साहित्य	... ...	हरवंशलाल शर्मा
५९.	सूर की काव्य-कला	... ...	मनमोहन गौतम
६०.	सूर की भाषा	... ...	प्रेमनारायण टंडन
६१.	सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य	... ...	शिवप्रसाद सिंह
६२.	सामयिक पत्र (दिव्यादर्श, ब्रजभारती, सम्मेलन पत्रिका, नवीन भारत आदि)		

राय

सूरदास

[जन्म सं० १५३५ • देहावसान सं० १६४०]

सूर-निर्णय

★

प्रथम परिच्छेद
सामग्री-निर्णय

★

हिंदी के अमर गायक, कवि एवं भक्त महात्मा सूरदास अपनी रचनाओं के कारण जग-विख्यात् हैं, किंतु अन्य प्राचीन महाकवियों की तरह उनका भी क्रमबद्ध जीवन-वृत्तांत उपलब्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि सांसारिक बातों के प्रति उदासीन होने के कारण उन भक्त कवियों ने अपने भौतिक जीवन के संबंध में स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से कुछ भी नहीं लिखा है।

जब से उन महाकवियों के काव्य का विशेष अध्ययन आरंभ हुआ है, तब से उनके विश्वसनीय और क्रमबद्ध जीवन-वृत्तांत की वैज्ञानिक शोध का कार्य भी आरंभ हो गया है। किसी कवि की रचनाओं के अंत:साक्ष्य और उसके समकालीन एवं परवर्ती लेखकों की रचनाओं के वहि:साक्ष्य उसके जीवन-वृत्तात की शोध के प्रमुख साधन माने जाते हैं। सूरदास की क्रमबद्ध जीवन-घटनाएँ प्रस्तुत करने के लिए भी इन्हीं साधनों का अनिवार्य रूप से उपयोग किया जाता है।

सूरदास संबंधी आधार-सामग्री का इस प्रकार विभाग किया जा सकता है—

(१) **अंत:साक्ष्य**—सूरदास के आत्म-विषयक कथन, जो सूरसारावली, साहित्य-लहरी, सूरसागर एवं कवि कृत अन्य स्फुट पदों में उपलब्ध हैं।

(२) **वहि:साक्ष्य**—समकालीन एवं परवर्ती प्राचीन लेखकों एवं कवियो की रचनाओं—जैसे वार्ता साहित्य, बल्लभ दिग्विजय, संस्कृत वार्ता-मणिमाला, भक्तमाल आदि—में सूरदास संबंधी उल्लेख।

(३) **आधुनिक सामग्री**—उपर्युक्त साधनों द्वारा प्राप्त सामग्री की आधुनिक विद्वानों द्वारा आलोचना।

उपर्युक्त सामग्री की सहायता से सूरदास का क्रमबद्ध एवं प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित करने से पूर्व हम इस आधार-सामग्री की परीक्षा करना चाहते हैं, ताकि यह ज्ञात हो सके कि सूरदास की निर्णयात्मक समीक्षा के लिए यह सामग्री किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकती है

१. अंतःसाक्ष्य

यद्यपि सूरदास ने अपनी प्रचुर रचनाओं में अपने संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं लिखा है, तथापि उनके कथनों में कहीं-कहीं पर ऐसे उल्लेख अवश्य आ जाते हैं, जिनको हम उनके आत्म-विषयक कथन के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार के उल्लेखों के लिए सूरदास कृत सूरसारावली, साहित्य-लहरी, सूरसागर एवं अन्य स्फुट पद विचारणीय हैं।

सूरसारावली—यह होली के वृहद् मान के रूप में एक बड़ी रचना है, जो ११०७ छंदों में समाप्त हुई है। इसको प्रायः सूरसागर का सूचीपत्र कहा जाता है, किंतु यह सूरसागर से पृथक् एक स्वतंत्र रचना है। आजकल के कुछ विद्वान इसको सूरदास की कृति नहीं मानते हैं, किंतु हम इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार करते हैं। इस संबंध में हम अपना मत विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठों से 'ग्रंथ-निर्णय' प्रकरण में लिखेंगे। यहाँ पर हमको केवल यह बतलाना है कि इसमें कौन-कौन से अंतःसाक्ष्य उपलब्ध होते हैं।

महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पूर्व सूरदास की मानसिक स्थिति का उल्लेख—

करम-जोग पुनि ज्ञान-उपासन, सब ही भ्रम भरमायौ।
श्री बल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ॥११०२॥

श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् ही उन्होंने लीला विषयक पदों का गायन किया था; इसका उल्लेख—

ता दिन तें हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बंद॥११०३॥

उन्होंने जिन लीलाओं का गायन किया था, उन्हीं के सार रूप में सूरसारावली की रचना की थी; इसका उल्लेख—

ताकौ सार सूरसारावलि, गावत अति आनंद॥११०३॥
सरस संवतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै॥११०७॥

उन्होंने अपनी ६७ वर्ष की आयु में सूरसारावली की रचना की थी इसका उल्लेख

साहित्य-लहरी—यह दृष्टिकूट पदों का एक अत्यंत जटिल एवं क्लिष्ट काव्य ग्रंथ है। इसके विषय में भी प्रायः ऐसा समझा जाता है कि इसके पद सूरसागर में से संकलित किये गये हैं, किंतु वास्तव में यह भी एक स्वतंत्र रचना है। इसके संबंध में भी कुछ विद्वानों की सम्मति है कि यह सूरदास की कृति नहीं है, किंतु हम इसे भी सूरदास की ही रचना मानते हैं। इस संबंध में अपना विस्तृत कथन हम आगामी पृष्ठों में सूरदास के ग्रंथों का विवरण लिखते हुए ग्रंथ-निर्णय परिच्छेद में उपस्थित करेंगे। यहाँ पर हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि इसके कौन-कौन से कथन हम सूरदास की जीवन-घटनाओं के अंतःसाक्ष्य रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

'साहित्य-लहरी' का रचना-काल और उसकी रचना के हेतु का उल्लेख—

> **मुनि पुनि रसन के रस लेख।**
> **दसन गौरीनंद कौ लिखि, सुबल संबत पेख॥**
> **नंदनंदन मास, छै तें हीन त्रितिया, बार—**
> **नंदनंदन जनम तें है बान, सुख-आगार॥**
> **त्रितिय रिच्छ, सुकर्म जोग, बिचारि 'सूर' नवीन।**
> **नंदनंदन दास हित, 'साहित्य-लहरी' कीन॥१०८॥**

साहित्य संस्थान, मथुरा द्वारा प्रकाशित 'साहित्य-लहरी' की समाप्ति उपर्युक्त पद पर हो जाती है। इस ग्रंथ की अन्य प्रतियों में सूरदास के वंश-परिचय वाला एक और पद भी मिलता है, जिसमें सूरदास की वंश-परंपरा का विस्तृत उल्लेख हुआ है। सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनके संबंध में इतना इतिवृत्त और कहीं नहीं मिलता है, इसलिए 'साहित्य-लहरी' एवं इसके उक्त पद को प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक मानने वाले प्रायः प्रत्येक लेखक ने इसका उल्लेख किया है। जिन प्रतियों में यह पद है, उनकी समाप्ति उसी पद पर हुई है, किंतु उससे पूर्व १०८ वें पद में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि एवं उसकी रचना का उद्देश्य बतलाया जा चुका है। वंश-परिचय वाले पद के पश्चात् दो उपसंहारों में भी अनेक कूट पद दिये गये हैं। 'साहित्य-लहरी' के पद तो सूरसागर में नहीं मिलते हैं, किंतु उपसंहार के पद उसी से ही संकलित किये गये हैं। साहित्य संस्थान की प्रति में वंश-परिचय वाला पद परिशिष्ट (२) में दिया गया है।

'साहित्य-लहरी' के उक्त वंश-परिचय वाले पद का मुख्यांश इस प्रकार है—

> **प्रथम ही प्रथ जाग तें, भे प्रगट अद्भुत रूप।**
> **ब्रह्मराव बिचारि ब्रह्मा नाम राख अनूप**

तासु बंस प्रसंस में, भौ चंद चारु नवीन ।
तासु बंस अनूप, भौ हरचंद अति विख्यात ।।
आगरे रहि गोपचल में रह्यौ ता सुत बीर ।
पुत्र जनमे सात, ताके महा भट गंभीर ।।

× ×

भयौ सातौ नाम सूरजचंद मंद निकाम ।।
सो समर करि साहि सें, सब गये विधि के लोक ।
रह्यौ सूरजचंद दृग तें हीन भरि वर सोक ।।

× ×

प्रबल दच्छिन विप्र कुल तें शत्रु ह्वै है नास ।

× ×

मोहि मनसा इहै, ब्रज को बसै सुख चित थाप ।
थपि गुसाईं करी मेरी, आठ मध्ये छाप ।।
विप्र प्रथ के जाग कौ है, भाव भूरि निकाम ।
'सूर' है नँदनंद जू को, लियौ मोल गुलाम ।।

इस पद का सारांश इस प्रकार है—

"आरंभ में पृथु के यज्ञ से एक अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ । ब्रह्मा ने विचार कर उसका नाम ब्रह्मराव रखा । उसके प्रशंसनीय वंश में चंद हुआ । उसके वंश में हरचंद विख्यात व्यक्ति हुआ । उसके वीर पुत्र ने आगरा में रह कर गोपाचल में निवास किया । उसके सात महावीर पुत्र हुए । सातवें का नाम सूरजचंद है । उसके छै पुत्र बादशाह से युद्ध करते हुए परलोक वासी हो गये । मैं सातवाँ नेत्रहीन होने के कारण रह गया । भगवान् श्री कृष्ण ने मुझे वरदान दिया कि दक्षिण के प्रबल विप्र कुल द्वारा तेरे शत्रुओं का नाश होगा । मेरे मन में ब्रजवास की इच्छा हुई और गोस्वामी विट्ठलनाथ ने मेरी अष्टछाप में स्थापना की । मैं पृथु के यज्ञ का ब्राह्मण हूँ । 'सूर' नंदनंदन जी का मोल लिया गुलाम है ।"

यदि यह पद सूरदास रचित है, तो उनके वंश-परिचय आदि के लिए यह निःसंदेह बड़ा महत्वपूर्ण है; किंतु इस पद में जहाँ इतिहास विरुद्ध कथन एवं कई शंकाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ इसकी पुष्टि अन्य अंतःसाक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यों से भी नहीं होती है, बल्कि विश्वसनीय बाह्य साक्ष्य इसके विरुद्ध ही प्राप्त होते हैं । हमारे मतानुसार 'साहित्य-लहरी' सूरदास की रचना होते हुए भी इसका यह पद सूरदास रचित नहीं है । किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की है- अतः यह प्रक्षिप्त एवं है हमारा मत निम्न कारणों पर आधारित है

१—सूरदास ने छोटी-बड़ी कई रचनाएँ की हैं, किंतु उन्होंने अपने संबंध में इतना विस्तृत और स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं लिखा है। उन्होंने अपनी वंश-परंपरा और जाति आदि के प्रति उदासीनता ही प्रकट की है, बल्कि एक तो पद में उन्होंने भगवद्भक्ति के लिए अपनी जाति को छोड़ देने का भी कथन किया है[1]। ऐसी दशा मे अपने वंश का ऐसा विस्तृत वर्णन कर 'विप्र प्रथ के जाग कौ है भाव भूर निकाम' द्वारा गर्व पूर्वक अपने को ब्राह्मण कहना सूरदास की प्रकृति और उनकी रचना-शैली के विरुद्ध है।

२—इस पद में प्रयुक्त 'दक्षिण के प्रबल विप्रकुल' का अभिप्राय निश्चय पूर्वक पेशवाओं से है, जो सूरदास से प्रायः दोसौ वर्ष पश्चात् हुए थे। इस कथन के कारण 'मिश्रबंधु' और शुक्लजी आदि हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने इस पद को प्रक्षिप्त माना है। जो विद्वान 'दक्षिण के विप्रकुल' का अभिप्राय पेशवाओं की अपेक्षा महाप्रभु बल्लभाचार्य जी से, और 'शत्रुओं' का अभिप्राय मुसलमानों की अपेक्षा भक्ति में बाधा डालने वारे काम-क्रोधादि से बतलाते है[2], वे अर्थ की खींचातानी करते हैं। पद के आद्योपांत पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह अर्थ संगत नहीं है। अपने छै भाइयों की मृत्यु के कारण उनके शत्रु मुसलमान थे, जिनके नाश की वे कामना करते थे। यह समस्त पद सूरदास के भौतिक जीवन से संबंध रखता है, अतः इसकी समस्त पंक्तियों का अर्थ भी भौतिक ही करना चाहिए। समस्त पद का भौतिक और केवल एक पंक्ति का आध्यात्मिक अर्थ करना असंगत है।

३—इस पद में बतलाया गया है कि श्रीकृष्ण के दर्शन होने के अनंतर सूरदास की इच्छा ब्रजवास करने की हुई। वहाँ जाने पर गोसाईं विट्ठलनाथ ने उनकी अष्टछाप में स्थापना की। 'चौरासी वार्ता' से ज्ञात होता है कि ब्रजवास करने के पूर्व उन्होंने अपना निवास स्थल मथुरा-आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान को बनाया था। वहीं पर उन्होंने श्री बल्लभाचार्य जी से दीक्षा ली थी। इस पद में सूरदास के गुरु बल्लभाचार्य जी का उल्लेख न होकर गो० विट्ठलनाथ का उल्लेख होने से वह इसे निश्चित रूप से किसी अन्य व्यक्ति की रचना सिद्ध करता है। सूरदास के शरणागत होने के समय तो गोसाईं विट्ठलनाथ का जन्म भी नहीं हुआ था। इस घटना से लगभग ३५ वर्ष पश्चात् गो० विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना की थी।

---

[1] मन बच, क्रम सत भाउ कहत हौं, मेरे स्याम धनी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी भगति लगि तजी जाति अपनी॥

[2] सूर सौरभ प्रथम भाग पृ० २० सूरसागर पद १०७ वे० प्र०

४—ग्रंथ के अंत में उसके समाप्त होने की तिथि और उसकी रचना का उद्देश्य लिखा जाता है, किंतु 'साहित्य लहरी' के पद सं० १०६ में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि और उसकी रचना का हेतु वर्णित होने पर भी उसके बाद के ११८ वें पद में इस प्रकार का कथन संगत ज्ञात नहीं होता।

५—इस पद को अप्रामाणिक सिद्ध करने का एक और भी कारण है, जिस पर अभी तक किसी भी विद्वान आलोचक का ध्यान नहीं गया है। 'साहित्य लहरी' के पूर्वोक्त १०६ वें पद में इसका रचना-काल बताया गया है। इस पद में प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ लगाने में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इसका अर्थ (०), कुछ एक (१) और कुछ दो (२) लगाते हैं। इस प्रकार 'साहित्य-लहरी' का रचना-काल भिन्न-भिन्न विद्वानों के मतानुसार सं० १६०७, १६१७ और १६२७ बतलाया जाता है। उपर्युक्त पद में प्रयुक्त 'गोसाईं' शब्द साहित्य-लहरी के रचना-काल के विरुद्ध पड़ता है। बल्लभ संप्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६३४ के पश्चात् ही विट्ठलनाथ जी 'गोसाईं' कहलाने लगे थे, इससे पूर्व वे 'दीक्षित' अथवा 'प्रभुचरण' संज्ञाओं से प्रसिद्ध थे। विट्ठलनाथ जी को 'गोसाईं' उपाधि संभवत: अकबर बादशाह द्वारा प्रदान की गयी थी। ऐसी दशा में अधिक से अधिक सं० १६२७ पर्यंत रची हुई 'साहित्य-लहरी' का गोसाईं शब्द निश्चित रूप से उक्त पद को अप्रमाणिक सिद्ध कर देता है।

६—इस पद में दी हुई सूरदास की वंशावली और उनकी जीवन घटनाओं का उल्लेख इसी रूप में श्री हरिराय जी कृत लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' में नहीं है। श्री हरिराय जी की यह भावना-कृति सं० १७५२ में लिपिबद्ध 'अष्टसखान की वार्ता' के नाम से कांकरौली विद्या विभाग द्वारा छापी जा चुकी है और अब वह संपूर्ण रूप में तीन जन्म की लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' के नाम से प्रथम बार अग्रवाल प्रेस, मथुरा द्वारा प्रकाशित हुई है। यदि इस पद में दी हुई वंशावली प्रामाणिक होती और वह श्री हरिराय जी से पूर्व स्वयं सूरदास द्वारा कथित होती, तब श्री हरिराय जी को उसके विरुद्ध कथन करने का कोई कारण नहीं था।

७—इस पद की अप्रमाणिकता का सबसे मुख्य कारण यह है कि यह पद दृष्टिकूट शैली का नहीं है। 'साहित्य-लहरी' का प्रत्येक पद दृष्टिकूट है यहाँ तक कि उसका रचना-काल विषयक पद भी इसी शैली है फिर समस्त ग्रंथ की शैली के विरुद्ध इस पद की अप्रामाणिकता निश्चित है

उपर्युक्त कारणों से 'साहित्य-लहरी' का यह पद अप्रमाणिक सिद्ध हो जाता है, अतः इसे अंतःसाक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह पद 'साहित्य-लहरी' की प्रति में किस प्रकार सम्मिलित हो गया ? इसके उत्तर में हम भी डा० दीनदयाल गुप्त के इस अनुमान का समर्थन हैं—

'ज्ञात होता है कि यह पद सरदार कवि तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी से पहले 'साहित्य-लहरी' के किसी टीकाकार अथवा लिपिकार ने मिलाया था[१]।'

सूरसागर एवं स्फुट पद—सूरदास की सबसे प्रमुख रचना सूरसागर है। सूरसारावली, साहित्य लहरी तथा कतिपय अन्य छोटी रचनाओं के अतिरिक्त सूरदास द्वारा रचित समस्त पद-साहित्य सूरसागर के अंतर्गत मान लिया गया है। हम सूरसागर की रचना-प्रणाली और उसके निश्चित स्वरूप के संबंध मे आगामी पृष्ठों में सूरदास के ग्रंथ प्रकरण में लिखेंगे। यहाँ पर उसकी मुद्रित प्रतियों के आधार पर हम अंतःसाक्ष्य के उल्लेखों पर विचार करना चाहते हैं। जो पद वर्तमान छपी हुई प्रतियों में प्राप्त नहीं होते, उनको यहाँ पर स्फुट पद मान लिया गया है। इन स्फुट पदों की प्रामाणिकता की परीक्षा भी आगामी पृष्ठो में सूरसागर के साथ की जावेगी।

अंत.साक्ष्य के रूप में निम्न लिखित पद उल्लेखनीय हैं—

उच्च जातीयता सूचक उल्लेख—

१. मेरे जिय ऐसी आय बनी।
'सूरदास' भगवंत-भजन लगि, तजी जाति अपनी ।।

२. बिकानी हौं हरि-मुख की मुसकानि।
गई जाति, अभिमान, मोह, मद, पति, परिजन पहिचान ।।

जन्मांधता सूचक उल्लेख—

१. किन तेरो गोविंद नाम धर्यौ।
'सूर' की बिरियाँ निठुर ह्वै बैठे, जनम अंध कर्यौ ।।

२. नाथ मोहि अब की बेर उबारौ।
करम हीन, जनम को अंधौ, मोतें कौन नकारौ ।।

३. हरि बिन संकट में को काकौ।
रह्यौ जात एक पतित, जनम कौ आँधरो 'सूर' सदा कौ ।।

१ अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय पृष्ठ ९२

गृह-त्याग का समय-निर्देश और आरंभिक जीवन संबंधी उल्लेख—

१. प्रभु ! मैं सब पतितन कौ राजा ।
आयौ अबेरौ, चलौ सबेरौ, लैकर अपने साजा ।।

२. मन ! तू मूरख क्यों कर रह्यौ ।
पहलौ पन खेलन में खोयौ, वृथा जनम गयौ ।।

स्वामित्व सूचक उल्लेख—

१. हौं हरि सब पतितन कौ नायक ।
सिम्टि जहाँ-तहाँ तें कोऊ, आय जुरे इक ठौर ।।

२. प्रभु मैं सब पतितन कौ टीकौ ।
मरियत लाज 'सूर' पतितन में कहत सबै मोहि नीकौ ।।

शरण में आने से पूर्व की रचना का आभास—

१. जियरा कौन नींद करि सोयौ ।
'सूर' हरि कौ सुमिरन करिलै, झिलिजा जातें (भयौ) बिछोयौ ।।

शरणागति सूचक उल्लेख—

१. श्री वल्लभ ! अब की बेर उबारौ ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं, बिनु एक सरन तुम्हारौ ।।

२. मन रे ! तू भूल्यौ जनम गँवावै ।
'सूरदास' वल्लभ उर अपने, चरन कमल चित लावै ।।

३. मन रे ! तें आयुष वृथा गँवाई ।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्री वल्लभ सुखदाई ।।
'सूरदास' सरनागति हरि की, और न कछू उपाई ।।

शरण-काल सूचक उल्लेख—

श्री वल्लभ ! दीजै मोहि बधाई ।
चिरजीवो अक्का जी कौ सुत, श्री विट्ठल सुखदाई ।

प्राप्ति सूचक उल्लेख

चक उल्लेख—

यामैं कहा घटैगो तेरौ ।
नंदनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहै चेरौ ।
सर्ब समर्पन 'सूर' स्याम कौं, यहै साँचौ मत मेरौ ।।

का स्पष्ट उल्लेख—

हरि मैं तुम सौं कहा दुराऊँ ।
जानत को पुष्टि-पथ मोसौं, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ।।
मारग-रीति उदर के काजैं, सीखि सकल भरमाऊँ ।
अति आचार, चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ।।
नाम-महिमा ऐसी जो जानौं ।
मर्यादादिक कहैं, लौकिक सुख लहैं,
पुष्टि कौं पुष्टि-पंथ निश्चय जो मानौं ।।

उच्चता का उल्लेख—

हौं पतित-सिरोमनि सरन परयौ ।
यह ऊँचौ संतन कौ मारग, ता मारग में पैंड धरयौ ।।

एवं माता-पिता की विमुखता—

ब्रज बसि का के बोल सहौं ।
तुम बिन स्याम और नहिं जानौं, सकुचनि तुमहिं रहौं ।।
धिक माता, धिक पिता विमुख तुव, भावै तहाँ बहौं ।।

दाबन, मथुरा-गमन सूचक उल्लेख—

ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी ।
मोहन नारि गोकुल की ठाढ़ी, बोलत अमृत बानी ।।
वृंदाबन एक पलक जो रहिये ।।
'सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी, भाग्य बिना कहाँ तें पइये ।।

जी का इष्ट विषयक उल्लेख—

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी ।
श्रीनाथ सारंगधर कृपा करि मोहि,
सकल अघ हरन हरि ।

श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन का उल्लेख—

मेरी तौ गति-पति तुम, अनतहिं दुख पाऊँ ।
'सूर' कूर आँधरौ, मैं द्वार परयौ गाऊँ ॥

निवास-स्थान और ढाढ़ी विषयक उल्लेख—

नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोवरधन तें आयौ ।
हौं तौ तिहारे घर कौ ढाढ़ी, 'सूरदास' मेरौ नाँउ ॥

सख्यता सूचक उल्लेख—

१. तुम ही मोकों ढीठ कियौ ।
प्रभु ! तुम मेरी सकुचि मिटाई, जोई-जोई माँगल पेलि ॥

२. आजु, हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै तुमहीं, कै हमहीं माधौ, अपने भरोसें लरिहौं ॥

प्रकृति सूचक उल्लेख—

(दीनता) १. हरि ! मैं तुम सौं कहा दुराऊँ ।
तुम जानत अंतर की बातें, जो-जो उर उपजाऊँ ॥

२. हरि-भक्तन कौं गर्व न करनौं ।
यह अपराध, परम पद हू तें उतर, नरक में परनौं ।
हौं धनवंत, ये भिक्षुक, यह कबहू चित्त न धरनौं ॥

(सत्संग) करहु मन ! हरि-भक्तन कौ संग ॥

गुरु-निष्ठा सूचक उल्लेख—

१. भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ ।
'सूर' कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ॥

२. हरि-हरि-हरि-हरि सुमिरन करो । हरि-चरनारबिंद उर धरो ॥
हरि गुरु एक रूप नृप जान । तामें कछु संदेह न आन ॥
गुरु प्रसन्न हरि प्रसन्न जोई । गुरु के दुखित दुखित हरि होई ॥

३. हरि-हरि-हरि सुमिरन करो । हरि चरनारबिंद उर धरो ॥
श्रीमद् बल्लभ प्रभु के चरन । तिनकों गहो सुदृढ़ करि सरन ॥
विट्ठलनाथ कृष्ण सुत जाके सरन गहे दुख नासहि ताके ।

य

ं सूचक उल्लेख—

बिनती करत मरत हौं लाज।
तीनों पन भरि बहोरि निबाह्यौ, तोऊ न आयौ बाज॥
मोसों बात सकुच तजि कहियै।
तीनौ पन मैं ओर निबाही, इहै स्वाँग को काछे॥

विषयक उल्लेख—

कृष्ण भक्ति करि कृष्णहिं पावै।
कृष्णहिं तें यह जगत प्रगट है, हरि में लय ह्वै जावै॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों यह, हरि-लीला जग देखै।
तौ तिहिं दुख-सुख निकट न आवै, ब्रह्म रूप करि लेखै॥
हरि हैं तिहूँ लोक के नायक, सकल भली सो करि हैं॥
'सूरदास' यह ज्ञान होय जब, तब सुख सों नर तरि हैं॥

राधिका-गेह हरि देह बासी। और त्रियन घर तनु प्रकासी
सुनत सुत मन अति हरषायौ।
जग प्रपंच हरि रूप लहै जब, दोष भाव मिट जैहै॥

अरे मन मूरख, जनम गँवायौ।
यह संसार सुआ सेंमर ज्यों, सुंदर देखि लुभायौ॥
चाखन लाग्यौ रूई उड़ि गई, हाथ कछू नहिं आयौ॥

व्रज ही मैं बसै आपुनहिं बिसरायौ।
प्रकृति-पुरुष एक करि जानहु, बा तन भेद करायौ॥
द्वैत न जीव एक हम तुम दोउ, सुख कारन उपजायौ॥

ा की अभेदता सूचक उल्लेख—

जै गोविंद माधौ मुकुंद हरि, कृपासिंधु कल्यान कंस अरि।
रामचंद्र राजीवनयन वर, सरन साधु श्रीपति सारंगधर॥

नान विषयक उल्लेख—

नंद जू! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि मथुरा तें आयौ।
लगन सोधि ज्योतिष कों गनिकै, चाहत तुम्हें सुनायौ॥

न विषयक उल्लेख—

मिलै गोपाल सोई बिन मौकौ।
भद्रा भलो भरनी भय हरनी, चलत भेष भद्र चौंको।

भागवत स्वरूप सूचक उल्लेख—

१ निगम कल्पतरु पक्व फल, सुक मुख तें जु दयौ ।

२. निगम कल्पतरु सीतल छाया ।
द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुण तत्व, व्यापै नाँहि माया ।।

३. श्री भागवत सकल गुन-खानि ।
सर्ग, विसर्ग, स्थान रु पोषण, उति, मन्वंतर जानि ।
ईस, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि ये दस लक्षन होय ।।

सुबोधिनी का उल्लेख—

कहा चाकरी अटको जन की ।
करम ज्ञान आसय सब देखे, वहाँ ठौर नाँहि पाँव धरन की ।
श्री सुकदेव वचन आसय, सुनो सुबोधिनी टीका जिनकी ।।

गुरु-प्रसाद से भागवत-ज्ञान की प्राप्ति—

१. धन्य सुक मुनि, भागवत बखान्यौ ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ ।

२. गुरु बिनु ऐसी कौन करै ।
भवसागर तें बूड़त राखे, दीपक हाथ धरै ।।

खड़ी बोली की रचना-शैली—

१. मैं योगी जस गाया रे बाला ।
तेरे सुत के दरसन कारन, मैं कासी से धाया रे बाला ।।

२. बरजो जसोदा जी कहाना ।
ये क्या जानें रस की बतियाँ, क्या जानें खेल जहाना ।।

३. हे मैया ! मतवाला योगी, द्वारे मेरे आया है ।
देखो मैया ! तेरा बालक, जिन मोय चटक लगाया है ।।

सूरसागर की मुद्रित एवं अमुद्रित प्रतियों में कुछ ऐसे भी पद प्राप्त होते हैं, जो सूर विषयक इतिहास के परिचायक होते हुए भी प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं । ऐसे पदों के अंतःसाक्ष्य से सूरदास के अनुसंधान में ८ मत बनाया जा सकता है, अत उनके संबंध म विशेष सावधानी की है

निम्न लिखित पद के अंत:साक्ष्य से सूरदास के जाट जातीय होने की कल्पना की जा सकती है—

हरि जू ! हौं यातें दुख पात्र ।
श्री गिरिधरन-चरन-रति ना भई, तजि विषया-रस मात्र ॥
हुतौ आढच तब कियौ असद व्यय, करी न ब्रज बन-जात्र ।
पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र ॥
भवन सँवारि, नारि-रस लोभ्यौ, सुत-बाहन-जन-भ्रात ।
महानुभाव पद निकट न परसे, जान्यौ न कृत-विधात्र ॥
छल-बल करि जित-तित हरि पर-धन, धायौ सब दिन-रात्र ।
सुद्धासुद्ध बहु बोझ वहेउ सिर, कृषि जु करी लै दात्र ॥
हृदय कुचील, काम-भू-तृषना, जल-कलिमल है पात्र ।
ऐसे कुमति जाट 'सूरज' कौं, प्रभु बिन कोऊ न धात्र ॥

यह पद सूरसागर की मुद्रित प्रति में है, किंतु कांकरोली सरस्वती भंडार की हस्त लिखित प्रति में नहीं है। सूरदास के प्रामाणिक पदों के आधार पर जब इस पद की परीक्षा की जाती है, तब निम्न बातें ज्ञात होती हैं—

(१) सूरदास के किसी भी पद के अंतिम शब्द 'पात्र' 'मात्र' 'धात्र' जैसे कठोर उच्चारण वाले हमारे देखने में नहीं आये।

(२) सूरदास के किसी भी पद से उनकी धनाढचता तथा नारी, पुत्र, भवन, वाहन आदि की विद्यमानता सिद्ध नहीं होती है।

(३) सूरदास के पदों से खेती के दृष्टांत होते हुए भी स्वयं उनके द्वारा खेती करने की बात ज्ञात नहीं होती है।

(४) सूरदास की सार्थक शब्द-योजना की शैली को देखते हुए इस पद की आरंभिक टेक के 'हरि' और 'दु:ख-पात्र' शब्द परस्पर विरुद्ध हैं।

उपर्युक्त कारणों से यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि यह पद सूरदास रचित नहीं है, अत: यह प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक है। सूरदास की छाप के कुछ पद ऐसे भी मिलते है, जिनसे बल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त उनके अन्य संप्रदाय के अनुयायी होने की भी कल्पना की जा सकती है। सूरदास की रचना-शैली से उन पदो की तुलना करने पर वे भी प्रक्षिप्त एव अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं

हम इस प्रकार के दो पद देकर यह बतलाना चाहते हैं कि आवश्यक सावधानी बिना अंत:साक्ष्य द्वारा भी किस प्रकार भ्रमात्मक धारणा की पुष्टि हो सकती है।

निम्न लिखित पद से सूरदास के विट्ठलविपुल के सेवक होने की कल्पना की जा सकती है—

मथुरा दिन-दिन अधिक बिराजै ।
तेज-प्रताप राय केसौ कौ, तीन लोक में गाजै ॥
कोटिक तीरथ जहँ चलि आवें, मधि विश्रांत बिराजै ।
करि अस्नान प्रात जमुना कौ, जनम-मरन भय भाजै ॥
विट्ठलविपुल विनोद बिहारिन, ब्रज कौ बसिबौ छाजै ।
'सूरदास' सेवक तिनही के, कहत सुनत गिरिराजै ॥

सार्थक शब्द-योजना सूरदास के काव्य का प्रमुख गुण है, अतः उनके प्रामाणिक पदों का प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण अर्थ का सूचक है। उनके पदो मे निरर्थक अथवा भरती के शब्द ढूँढ़ने पर भी नही मिलते। उपर्युक्त पद की जाँच जब हम इस दृष्टि से करते हैं, तब निम्न बातें ज्ञात होती हैं—

(१) इस पद की अंतिम आधी पंक्ति 'कहत सुनत गिरिराजै' निरर्थक शब्द-योजना है, क्यों कि इसका कोई संगत अर्थ नहीं है। इसलिए सूरदास की शैली के विरुद्ध होने के कारण यह पद अप्रामाणिक है।

(२) इसी प्रकार 'सूरदास सेवक तिनही के' वाली पंक्ति भी सूरदास की रचना प्रणाली से मेल नहीं खाती है। सूरदास ने अपनी किसी भी रचना में इस प्रकार का स्पष्ट कथन नहीं किया है। स्वयं बल्लभाचार्य जी के लिए भी उन्होंने इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि उनके लिए उन्होंने गुरु सूचक शब्दों का प्रयोग किया है।

(३) विट्ठलविपुल जी वृंदावन के विख्यात संत और सुप्रसिद्ध संगीताचार्य श्री हरिदास जी के शिष्य और उनके उत्तराधिकारी थे। यदि सूरदास को बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पूर्व विट्ठलविपुल जी का शिष्य माना जाता है, तब यह ऐतिहासिक काल-क्रम और उनके स्वामित्व के बाह्य साक्ष्य के विरुद्ध पड़ता है।

(४) बल्लभ संप्रदाय में आने से पूर्व यदि उनको हरिदासी संप्रदाय का शिष्य माना जाता है, तो हमको ऐसा प्रबल कारण ढूँढ़ना होगा, जिससे उनको एक वैष्णव संप्रदाय का त्याग कर दूसरे वैष्णव संप्रदाय में आने को बाध्य होना पड़ा। जहाँ तक हमारा सूर विषयक अध्ययन है, हमको उनके पदों के अंत:साक्ष्य से ऐसा कोई कारण दिखलायी नहीं देता है।

(५) इस प्रकार संप्रदाय-परिवर्तन से सूरदास के विचारों की अस्थिरता प्रकट होती है, जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। सूरदास की जीवन-घटनाओं पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वे स्थिर विचार और दृढ़ आग्रह के व्यक्ति थे। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य—"मारग रोकि परयौ हठ द्वारै, पतित-सिरोमनि सूर" से भी यही सिद्ध होता है।

इसी प्रकार निम्न लिखित पद भी प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक सिद्ध होता है—

कह्यौ भागवत सुक अनुराग। कैसें समुझै बिनु बड़ भाग।
श्री गुरु सकल कृपा करी॥
"सूर" आस करि बरन्यौ रास। चाहत हौं वृन्दाबन-वास।
श्री राधावर इतनी करि कृपा॥
निस-दिन स्याम सेऊँ मैं तोहि। इहै कृपा करि दीजै मोहि।
नव निकुंज सुख-पुंज में॥
हरिवंसी-हरिदासी जहाँ। हरि करुना करि राखहु तहाँ।
नित बिहार आभार दै॥
कहत सुनत बाढ़त रस-रीति। बक्ता-स्रोता हरिपद-प्रीति।
रास-रसिक गुन गाइ हौं[1]॥

इस पद की अप्रामाणिकता के निम्न लिखित कारण हैं—

(१) सूरदास के किसी भी पद में उनके नाम की छाप आ जाने के पश्चात् इतनी पंक्तियाँ लिखी हुई नहीं मिलती हैं।

(२) हरिवंशी और हरिदासी दोनों भिन्न-भिन्न मत हैं और दोनों की लीला भावनाओं में भी अंतर है, अतः दोनों का एकीकरण असंगत है।

(३) सूरदास के पुष्टिमार्ग की रास विषयक भावना उक्त दोनों संप्रदायों से भिन्न है, अतः उनके साथ रहने की अभिलाषा असंगत ज्ञात होती है।

(४) यदि यहाँ भूतल के वृंदाबन से तात्पर्य लिया जाय तो पुष्टिमार्ग की मान्यता के अनुसार चंद्र सरोवर ही सारस्वत कल्प का वृंदाबन है, जहाँ उस समय रास हुआ था। सूरदास इसी कारण वहाँ रहते थे, अतः श्वेतवाराह कल्पीय वृंदाबन और उसकी लीला से उनको कोई प्रयोजन नहीं था। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से भी अपने परम इष्ट श्रीनाथ जी की सेवा छोड़ कर सूरदास वृंदाबन में हरिवंशी और हरिदासी संप्रदाय वालों के साथ रहने की अभिलाषा किस प्रकार कर सकते थे!

[1] सूरसागर ना० प्र० सभा पद १७९८

२. वहिःसाक्ष्य

वहिःसाक्ष्य के रूप में सूरदास संबंधी उल्लेखों का सब से अधिक संग्रह बल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य में उपलब्ध होता है। इस साहित्य में 'चौरासी वैष्णव की वार्ता', 'निज वार्ता' और उन पर श्री हरिराय जी कृत 'भाव' नामक टिप्पणी मुख्य रचनाएँ हैं। इनके द्वारा सूरदास के जीवन-वृत्तात की जितनी सामग्री प्राप्त होती है, उतनी अन्य समस्त साधनों के सम्मिलित कर देने से भी नहीं होती है। इस लिए वार्ता साहित्य के पक्ष एवं विपक्ष में लिखने वाले सभी साहित्यिक विद्वानों ने सूरदास के चारित्रिक अनुसंधान के लिए उक्त सामग्री का अनिवार्य रूप से उपयोग किया है। हमने भी सूरदास के चरित्र-निर्माण के लिए उक्त सामग्री को प्रधान माध्यम के रूप में स्वीकार किया है, अतः उसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता के संबंध में यहाँ पर कुछ विवेचन करना आवश्यक है।

वास्तविक बात यह है कि हिंदी साहित्य के विद्वानों ने बल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य का अभी तक अनुसंधान पूर्वक गंभीर अध्ययन नहीं किया है। यही कारण है कि अपने अपर्याप्त ज्ञान के कारण कुछ विद्वान वार्ता साहित्य को अनुपयोगी एवं अप्रामाणिक सिद्ध करने लगते हैं। हमने कई वर्षों से इस साहित्य की परिश्रम पूर्वक शोध की है और तत्संबंधी अल्प ज्ञान के आधार पर हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि इसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता में संदेह करना व्यर्थ है। इस साहित्य की यथार्थ शोध करने पर ऐसी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है, जो प्राचीन हिंदी साहित्य के इतिहास के संशोधन एवं उसके नव निर्माण में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। वार्ता साहित्य संबंधी भ्रम के निराकरण के लिए हम उसके आरंभ का इतिहास बतलाना चाहते हैं।

वार्ता साहित्य का प्रारंभ और विकास

कांकरोली सरस्वती भंडार के हस्त लिखित ग्रंथों में हिंदी बंध संख्या १०१×१ में १२८ प्रसंगों वाली एक वार्ता पुस्तक सुरक्षित है, जिसकी अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—

"सं० १७४६ वर्षे श्रावण सुदी ७ शुकरे पोथी लिखी छे, प्रती गोविंददास ब्राह्मण नी पोथी लख्यु छे"

इस पुष्पिका से सिद्ध है कि यह वार्ता पुस्तक सं० १७४६ में ब्राह्मण की प्रति से लिपिबद्ध की गयी थी इस पुस्तक के एक उल्लेख से

यह सिद्ध होता है, कि गोबिंददास ब्राह्मण की प्रति श्री गोकुलनाथ जी के समय मे लिखी गई थी। वह उल्लेख इस प्रकार है—

"श्री आचार्य जी के ससुर के घर ते श्रीनाथ[1] जी पधारे। श्री अक्काजी के साथ पाँव धारे सो प्रथम सेवा श्रीनाथजू की श्री आचार्यजू करते सो श्रीगुसाईं जी ने करी। सो श्रीगोकुलनाथजू माथे सेवा श्रीनाथजू बिराजत है। बात अनिर्वचीय है।"

इस उद्धरण की वर्तमान काल की क्रिया 'बिराजत है' से ज्ञात होता हे कि पुस्तक लिखने के समय श्री गोकुलनाथ जी विद्यमान थे। श्री गोकुलनाथ जी का समय सं० १६०८ से १६९७ तक है। इस प्रति के एक प्रसंग से वार्ता साहित्य के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, अतः उसका आवश्यक अंश यहाँ पर दिया जाता है—

एक समय गोवर्द्धनदास परम भागवतोत्तम उज्जैन के कृष्ण भट्ट के घर आए। सो कृष्ण भट्ट ने आगौ भलौ कीनौ। भोजन करवायौ। भोजन करि बैठे तब भट्ट जी ने कह्यौ कछु सुनायो......रात्रि दिवस वैष्णवन की वार्ता करें। सो करते करते तीन दिन तीन रात बितीत भई। चौथे दिवस देह को सुधि भई तब भट्टानी ने उनको स्नान करवायौ, महाप्रसाद लिवायौ। सो आज्ञा माँगि कें अपने देस कों चले। तब कृष्ण भट्ट ने ए बात लिखीं। सो प्रति दिन इन कों पाठ करें। और कोऊ भगवदी वैष्णव आवें तासों कहें। यों करते भट्ट जी को सरीर थक्यौ। तब गोबिंद भट्ट बेटा सों कह्यौ बाबा! ए पोथी अरु घर की सोंज सब गोकुल पठइयो। तदउपरांत गोबिंद भट्ट श्री गोकुलनाथजू के सेवक......[2]

सो ऐसे करत बहुत वर्ष बीते तब नेत्र बल घट्यौ। तब विचार कियौ......श्री भागवत श्रीसुबोधिनी टीका टिप्पणी सब पोथी अरु भेंट वैष्णव जब चले तब उनकों सोंपी; कही श्री वल्लभ (श्रीगोकुलनाथजी का नाम है) के आगें धरियो। अरु कहो बाप की वस्तु बेटा पावें। वे वैष्णव चले सो श्री गोकुल आये। श्री गोकुलनाथजू के आगें राखी भेंट अरु पोथी। पत्र श्री महाप्रभु (गोकुलनाथ जी) ने बाँच्यौ। तब

---

१. यहाँ पर श्रीनाथ जी से अभिप्राय ठाकुर गोकुलनाथजी से है।

२. इस उद्धरण की पूर्ति के लिए काँकरौली से प्रकाशित 'दिव्यादर्श' मासिक की फाइल देखनी चाहिए

हृदौ भरि आयौ । अरु कही यह निवेदन । इतनी कही तब पोथी श्री हस्त सों खोली । तब बीच छोटी चौपरी निकसी तब बांची । बाँचिकें आँखि सों लगाई अरु हृदौ भरि आयौ । सो नित ग्रंथ पाठ करते । एक वार्ता अरु दोइ । बाँधिकें पेटी में धरिके तारौ मारिकें भोजन कों पधारें ।

यों करत बहुत बरस बीते । तब नेत्र कौ प्रकार भयौ । श्रीरायजू सों कही जो पोथी पेटी में है सो लावो । तब श्रीरायजू ने पेटी खोलिकें पोथी हाथ में दीनी । लेकें नेत्र सों लगाई । फेरि रायजू कों दीनी । रायजू ने पेटी में धरी सो नित्य करें ।

सो एक दिवस रायजू ने देखी सो नीकी लागी तब इनके प्रिय श्रीगोपालजू हते सो बात रायजू ने कही हमारे वैष्णव की बात है। तब गोपालजू ने कही जो देखिए तब इन नाँही कही । वह देखी न जाय अन्नाजी बहुत जतन करि राखत हैं । तारे में है । और मो पास माँगत है तब आनि देत हूँ । फिरि कहत हैं जो धरी, तब कहूँ जो हाँ जू, तब भोजन कों पाँउ धारत है । तब फिरि गोपालजू ने कही कि तुम एक बात करो । जब उनकों देत हो तब तुमकों वे फिरि देत हैं, तब इतनी करो जो और में धरिकें पेटी कौ तारौ दीजो । अरु वे पूछें तारौ दीयौ तब कहिजो दीयौ । तब कही जो भले । फिरि जब दूसरे दिन श्रीगोकुलनाथजी माँगी तब रायजू ने आय दीनी । तब श्रीजू नेत्र सों लगाय फेरि दीनी तब रायजू और में धरि भोजन को पधारे । श्रीजू तो भोजन करिकें पौढ़े । पाछें रायजू तो गोपालजू के घर पधारे । तब पोथी गोपालजू कों दीनी । तब पोथी बाँचि बाँचि कें गद्गद कठ भए पाछें नारायणदास लेखक कों बुलायौ । तब पोथी लिखवाई । सो उनने दो प्रति कीनी । एक उनको दीनी दूसरी लेखक पास रही । सो गोपालजू रायजू ने जानी नाँही । सनेही जी के आगे कहें । सो वाके एक और सनेही रहे सो वाने उनकों कही । तब उन कह्यौ यह सिखाय देहु । तब उनने लिख दीनी । एसे पाँच सात प्रति भई । तब एक प्रति धनजी भाई चोपरा के तिन देखी । तब श्रीजू के आगे बात करी । तब श्रीजू चौंकि खोज कियौ । वे सब बुलाए । परस्पर पूछे पाछे, जानी जो रायजू कौ काम है । तब कह्यौ गोप्य वस्तु प्रगट भई भगवत इच्छा मानी ।"

इस उद्धरण से वार्ता साहित्य का आरंभिक इतिहास ज्ञात होता है और इससे तत्संबधी कई शकाओं का भी हो जाता है इससे निम्न लिखित महत्वपूर्ण बात ज्ञात होती हैं

(१) गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक उज्जैन निवासी परम विद्वान कृष्णभट्ट ने संप्रदाय में उस समय तक प्रचलित वार्ताओं को सर्वप्रथम लेखबद्ध किया था। वे उन वार्ताओं का स्वयं पाठ करते थे और आगत भगवदीय वैष्णवो मे उनकी चर्चा करते थे। उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि गोबर्धनदास और कृष्णभट्ट जैसे उद्‌भट विद्वानों में जिन वार्ताओं की चर्चा निरंतर तीन दिन और तीन रात्रि तक हुई, वे वार्ताएँ यथेष्ट संख्या में होनी चाहिएँ और उनका संबध किन्हीं परमादरणीय व्यक्तियों से होना चाहिए। इससे ज्ञात होता है कि वे वार्ताएँ महाप्रभु बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी के सेवको की थी, जिनका ज्ञान उनको किसी विश्वस्त सूत्र से अथवा स्वयं अपने अनुभव से हुआ होगा। वार्ताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी के अनेक सेवक गो० विट्ठलनाथ जी के समय में भी विद्यमान थे और गो० विट्ठलनाथजी के सेवक तो उक्त दोनों भगवदीय वैष्णवों—गोबर्धनदास और कृष्णभट्ट—के समकालीन ही थे।

(२) कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध वार्ताओं की पोथी उनके अनंतर उनके पुत्र गोविंदभट्ट द्वारा श्री गोकुलनाथ जी को अर्पित की गई थी। श्री गोकुलनाथ जी अपने अंतरंग सेवकों में उन वार्ताओं के दो-एक प्रसंगों की चर्चा प्रति दिन किया करते थे। इसके उपरांत वे उक्त पोथी को बड़ी सावधानी से ताले में बंद कर देते थे। उपर्युक्त उल्लेख में वार्ताओं की उस प्रति को 'छोटी चोपरी' लिखा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वह पोथी श्रीमद्‌भागवत अथवा सुबोधिनी जैसे ग्रंथों की अपेक्षा छोटी थी। उसे १०-२० पन्नों की छोटी पुस्तक नहीं समझनी चाहिए। यदि वह इतनी छोटी होती, तो उसके प्रसगों की चर्चा अहर्निश तीन दिनों तक कैसे होती रहती!

(३) श्री गोकुलनाथ जी के पुत्र श्री विट्ठलेशराय ने अपने पिता से छिपा कर उक्त पोथी की प्रतिलिपि कराई और उस प्रति के आधार पर फिर अनेक प्रतियाँ तैयार हुईं। इस प्रकार जिन वार्ताओं की चर्चा पहिले संप्रदाय के अतरंग व्यक्तियों तक ही सीमित थी, वह बाद में संप्रदाय के सामान्य भक्तो मे भी प्रचलित हुई। नाभा जी कृत भक्तमाल एवं उस समय की अन्य रचनाओ मे उक्त वार्ता पुस्तकों का नामोल्लेख न देखकर जो विद्वान उनकी प्राचीनता मे सदेह करने लगते हैं, उनको यह ज्ञात होना चाहिए कि तब तक उन वार्ताओ का ज्ञान संप्रदाय के भी कुछ अंतरंग व्यक्तियों को ही था संप्रदायेतर अन्य व्यक्तियों का उनका ज्ञान न होना कोई की बात नही थी

कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध वार्ताओं की जिस प्रति का ऊपर उल्लेख हुआ है, उसमें 'चौरासी' अथवा 'दोसौ बावन' का क्रम नहीं था। श्री गोकुलनाथ जी ने उन क्रमरहित वार्ताओं को श्री आचार्य जी और श्री गोसाईं जी के सेवकों के अनुसार क्रमबद्ध किया था। वे सुबोधिनी की कथा के अनंतर कृष्णभट्ट की पोथी के आधार पर उक्त वार्ताओं का विस्तार पूर्वक कथन किया करते थे।

श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित एवं 'चौरासी' और 'दोसौ बावन' के रूप में विभाजित वार्ताओं को बाद में श्री हरिराय जी ने संकलित किया। श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी द्वारा कही हुई वार्ताओं का और भी विस्तार किया था। गोकुलनाथ जी द्वारा कहे हुए प्रसंगों में जहाँ कुछ न्यूनता अथवा अपूर्णता दिखलाई दी, वहाँ पर श्री हरिराय जी ने अपनी 'भाव' नामक टिप्पणी लिख कर उनकी पूर्ति की थी। इस प्रकार आचार्य जी एवं गोसाईं जी के समय में जो वार्ताएँ संप्रदाय के कुछ व्यक्तियों तक सीमित थीं, वे कृष्ण भट्ट द्वारा लेखबद्ध होकर गोकुलनाथ जी के समय में प्रसिद्ध हुई थीं। बाद में श्री हरिराय जी द्वारा विस्तार प्राप्त कर उनका लोक में प्रचार हुआ था।

यह वार्ता-साहित्य के आरंभ और उसके विकास का इतिहास है, जिसे जान लेने पर उसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता में संदेह नहीं रहता है। इस वार्ता साहित्य में सूरदास संबंधी वाह्य साक्ष्य के लिए चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता और उन पर हरिरायजी कृत भावप्रकाश प्रमुख रचनाएँ हैं। अब क्रमशः उक्त रचनाओं पर विचार किया जाता है—

चौरासी वैष्णवन की वार्ता—वार्ता साहित्य में सूरदास संबंधी उल्लेखों के लिए 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' प्रमुख है, जो आचार्यजी के सेवकों का आदर्श उपस्थित करने के लिए श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित हुई है। इसकी प्राचीनता की पुष्टि श्री गोकुलनाथ जी रचित चौरासी वैष्णवों की संस्कृत नामावली, श्री यदुनाथ जी कृत 'वल्लभ दिग्विजय' (सं० १६५८ में रचित) और श्री गोसाईं जी के सेवक अलीखान पठान कृत ८४ वैष्णवों के नामों वाले पद आदि अनेक प्रमाणों से होती है।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता एवं अन्य मूल वार्ताओं में भक्तों के प्रासंगिक चरित्रों का कथन किया गया है, जिनका विदशीकरण और जिनकी पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश द्वारा की है। मूल चौरासी वार्ता में सूरदास संबंधी उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होते हैं

निवास स्थान का उल्लेख—

'सो गऊघाट आगरे और मथुरा के बीचों बीच है। सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतो।'

स्वामी होने का उल्लेख—

'सो सूरदास जी स्वामी आप सेवक करते। सूरदास जी भगवदीय-हैं''' ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते।'

शरण-काल सूचक उल्लेख—

'सो श्री आचार्य जी महाप्रभु गऊघाट ऊपर उतरे। सो सूरदास जी के सेवक देखि कें सूरदास जी सों जाय कही जो आज श्री आचार्य जी महाप्रभु आप पधारे हैं, जिनने दक्षिण में दिग्विजय कियो है, सब पंडितन कों जीते हैं, भक्तिमार्ग स्थापन कीयो है।'

'पाछे समयानुसार भोग सराय अनोसरो करिकें महाप्रसाद लेकें, श्री आचार्य जी महाप्रभु गादी ऊपर विराजे।'

संप्रदाय-प्रवेश सूचक उल्लेख—

'तब श्री महाप्रभु जी नें प्रथम सूरदास जी कों नाम सुनायो, पाछें समर्पण करवायो और फिर दसमस्कंध की अनुक्रमणिका कही'''

लीला-गायन और भागवत के अनुसार पद-रचना का उल्लेख—

'तब सूरदास जी नें भगवतलीला वर्णन करी। '''पाछे सूरदास जी नें बहुत पद किये। '''पाछे जो पद कीये सो श्री भागवत प्रथम स्कंध तें द्वादस स्कंध तांई किये।'

अंधत्व का उल्लेख—

'तब श्री आचार्य जी महाप्रभून नें अपने श्री मुख सों कह्यौ जो सूरदास श्री गोकुल कौ दर्शन करौ। सो सूरदास जी नें श्री गोकुल कों दंडवत करी।'

'तब सूरदास जी सों कह्यौ, जो सूरदास ऊपर आउ स्नान करिकें श्रीनाथ जी कौ दर्शन करि।'

'देशाधिपति ने पूछी जो सूरदास जी! तुम्हारें लोचन तौ देखियत नाहीं। सो प्यासे कैसें मरत हैं और बिन देखें तुम उपमा कों देत हो, सो तुम कैसें देत हो?

श्रीनाथ जी के कीर्तन का आदेश विषयक उल्लेख—

'तब श्री महाप्रभू जी अपने मन में विचारे जो श्रीनाथ जी के यहाँ और तो सब सेवा मंडान भयौ और कीर्तन कौ मंडान नाँही कियौ है, तातें सूरदास जी कों दीजिये।'

सहस्त्रावधि पद रचना और सूरसागर का उल्लेख—

'सूरदास जी नें सहस्त्रावधि पद किये हैं, ताकों सागर कहियै सो जगत में प्रसिद्ध भये।'

अकबर-भेंट का उल्लेख—

'सो सूरदास जी के पद देशाधिपति नें सुने सो सुनिकें यह विचारौ जो सूरदास जी काहू विधि सों मिलें तौ भलौ। सो भगवदिच्छा तें सूरदास जी मिले। तब सूरदास जी नें देशाधिपति के आगे कीर्तन गायो।'

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'बहुर सूरदास जी श्रीनाथजीद्वार आयकें बहुत दिन ताईं श्रीनाथ जी की सेवा कीनी। बीच-बीच में श्रीगोकुल श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन कों आवते।'

गुरु और ईश्वर में अभेदता सूचक उल्लेख—

'सूरदास जी बोले जो मैं तौ सब श्री आचार्य जी महाप्रभून को ही जस वर्णन कियौ है, कछू न्यारौ देखूं तौ न्यारौ करूँ।'

देहावसान काल सूचक उल्लेख—

'सो राजभोग आरती करिकें श्री गुसाईं जी गिरिराज तें नीचे उतरे सो आप परासौली पधारे। भीतरिया सेवक रामदास जी प्रभृत और कुंभनदास जी और श्री गुसाईं जी के सेवक गोविंदस्वामी चत्रभुजदास प्रभृत और सब श्री गुसाईं जी के साथ आये। तब श्री गुसाईं जी ने पूछो जो सूरदास जी नेत्र की वृति कहाँ है ? तब सूरदास जी ने एक पद और कह्यौ। इतनों कहत ही सूरदास जी नें या शरीर को त्याग कियौ।'

निज वार्ता—यह वार्ता श्री गोकुलनाथ जी कथित है और उस पर श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश भी उपलब्ध है। इसके एक उल्लेख से सूरदास जी की जन्म-तिथि इस प्रकार ज्ञात होती है—

'सो सूरदास जी जब श्री आचार्य जी महाप्रभु कौ प्राकट्य भयौ है, तब इनको जनम भयौ है सो श्री आचार्य जी सों ये दिन दस छोटे हुते

भाव प्रकाश—श्री गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं की पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपनी 'भाव' नामक टिप्पणियों द्वारा की है। जिस प्रकार प्रियादास ने अपनी टीका द्वारा नाभाजी कृत भक्तमाल का विस्तार किया है, उसी प्रकार श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं का विशदीकरण किया है

श्री हरिराय जी कृत 'भाव' में उनकी संस्कृत रचना 'शिक्षापत्र' के कई उद्धरण उपलब्ध होते हैं। इससे जाना जा सकता है कि 'भाव' की रचना शिक्षापत्र की रचना के पश्चात् हुई है। शिक्षापत्र के आंतर उल्लेखों से उसकी रचना का समय सं० १७०० से १७२८ तक सिद्ध होता है, अतः भावप्रकाश का समय इसके पश्चात् का हो सकता है। श्री हरिरायजी का समय सं० १६४८ से १७७२ तक है, अतः भावप्रकाश का रचनाकाल सं० १७२८ से १७७२ तक होना चाहिए। सं० १७५२ की लिखी हुई भावप्रकाश की प्रति संप्रदाय में उपलब्ध है। उससे भी उक्त समय की पुष्टि होती है। भावप्रकाश की रचना शैली और उसके सैद्धांतिक उल्लेखों से उसके रचयिता श्री हरिराय जी सिद्ध होते हैं। इसकी वाह्य पुष्टि हरिरायजी के संबंधी, सेवक और समकालीन काका वल्लभ जी (जन्म सं० १७०३) रचित चौरासी वैष्णवों के लीलात्मक नाम वाले वृहद् गुर्जर धौल से होती है।

मूल चौरासी वार्ता में सूरदास का उल्लेख तब से आरंभ होता है, जब वे गोघाट पर रहा करते थे। वहाँ पर रहते हुए ही वे महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के सेवक हुए थे। इसके पूर्ववर्ती प्रसंगों की शृंखला श्री हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश में मिलायी है। श्री हरिराय जी के कथन से सूरदास संबंधी उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

जन्म स्थान और जाति विषयक उल्लेख—

'सो सूरदास जी दिल्ली के पास चारि कोस उरे में एक सीहीं गाम है, ...सो ता गाम में एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रगटे।'

जन्मांधता का उल्लेख—

'सो सूरदास जी के जन्मत ही सों नेत्र नांही हैं।

शकुन विषयक उल्लेख—

'सो जो कोई पूछें, तिनकों सगुन बतावें, सो होइ।'

स्वामी विषयक उल्लेख—

सो सुरदास स्वामी कहवाये बहौत मनुष्य इनके सेवक भये '

गायन कला के ज्ञान का उल्लेख—

'सो सूरदास विरह के पद सेवकन कों सुनावते। सो सब गायवे के बाजे कौ सरंजाम सब भेलौ होय गयौ।'

'सूरदास कौ कंठ बहौत सुंदर हतौ। गान विद्या में चतुर··· ।'

ग्राम-त्याग और गऊघाट-निवास का उल्लेख—

'या प्रकार सूरदास तलाब पें पीपर के वृक्ष नीचें बरस अठारह के भये। तब सूरदास उहाँ तें चले···सो यह विचारिकें सूरदास मथुरा और आगरे के बीचों बीच गऊघाट है, तहाँ आयकें···रहे।

आचार्य जी द्वारा दीक्षा एवं ज्ञान-प्राप्ति का उल्लेख—

'तब श्री आचार्य जी नें कृपा करिकें सूरदास कों नाम सुनायौ। ता पाछें समर्पन करवायौ। पाछें आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास कों सुनाये।···सो सगरी श्री सुबोधिनी जी कौ ज्ञान श्री आचार्य जी नें सूरदास के हृदय में स्थापन कियो। तब भगवतलीला जस वर्णन करवे कौ सामर्थ्य भयौ।···ता पाछें श्री आचार्य जी नें सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम सुनायौ।'

भागवत के अनुसार पद-रचना का उल्लेख—

'तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदास नें प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादस स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये।'

सूरसागर का उल्लेख—

'और सूरदास कों जब श्री आचार्य जी देखते तब कहते जो आवो सूरसागर!···'

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'अब श्री आचार्य जी आप अन्तर्ध्यान लीला किये और श्री गुसाईं जी कों करनौ है। सो पहले भगवदीयनकूं नित्य लीला में स्थापन करिकें आपु पधारेंगे।'

नामों का उल्लेख—

'सो इन सूरदास जी के चारि नाम हैं। श्री आचार्य जी आप तौ 'सूर' कहते।···और श्री गुसाईं जी आप 'सूरदास' कहते।···और तीसरौ इनकौ नाम 'सूरजदास' है। श्री गोवर्धननाथ जी ने पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदास जी कों करि दिये। तामें 'सूरस्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदास जी के चारि नाम प्रकट भये। सो सूरदास जी के कीर्तन में चारों नाम कहे हैं'

वल्लभ-दिग्विजय—इस ग्रंथ की रचना गो० विट्ठलनाथजी के छठे पुत्र श्री यदुनाथ जी ने सं० १६५८ में की थी। यदुनाथ जी का जन्म सं० १६१५ में हुआ था,[1] इसलिए वे सूरदास के देहावसान के समय प्राय: २५ वर्ष के थे। सूरदास के समकालीन होने के कारण उनका उल्लेख विशेष प्रामाणिक है। श्री ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे स्वीकार करते हुए भी किंचित अनिश्चितता इस प्रकार प्रकट की है—

"इस ग्रंथ का रचना-काल देखते हुए इसकी प्रामाणिकता में संदेह का स्थान कम है; यदि वास्तव में यह ग्रंथ इसी संवत् का तथा श्री यदुनाथ का ही रचा हुआ है[2] "

इस ग्रंथ की प्रामाणिकता निश्चित है। इसके रचना-काल का उल्लेख इसकी पुष्पिका में हुआ है[3] और इसके यदुनाथ जी कृत होने की स्पष्ट सूचना इसके ७१ वर्ष बाद रचे गये 'संप्रदाय कल्पद्रुम' से प्राप्त होती है[4]।

इस ग्रंथ के एक एक उल्लेख से सूरदास के शरण-काल और उनकी जाति विषयक महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। उसमें कहा गया है कि अड़ैल से ब्रज जाते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य ने एक सारस्वत ब्राह्मण सूरदास पर कृपा की थी। वह उल्लेख इस प्रकार है—

"ततोऽलर्कपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो ब्रजसमागमने सारस्वत सूरदासो ऽनुगृहीतः"[5]।

संस्कृत वार्ता-मणिमाला—इस ग्रंथ के रचयिता श्रीनाथ भट्ट मठपति तैलंग ब्राह्मण थे। उनके रचे हुए संस्कृत भाषा के अनेक ग्रंथ संप्रदाय में प्राप्त हैं। उनकी ब्रजभाषा की पद रचनाएँ भी अब उपलब्ध हुई हैं।

---

१. श्री वल्लभ-वंशवृक्ष

२. सूरदास, पृ० ३३

३. वसुबाणरसेन्द्वब्दे तपस्य सितके रवौ।
चमत्कारिपुरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत सोमजा तटे॥

४. श्री वल्लभ दिग्विजय करि, श्री यदुनाथ सुजान।
परंपरा वर्णन जु प्रभु, कीनेहु भूपति मान॥

५ वल्लभ दिग्विजय पृ० ५०

उनके एक पद के आधार पर वे गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक सिद्ध होते हैं*, अतः वे सूरदास के प्रायः समकालीन होने चाहिए। उनकी रचना में महाप्रभुजी और गुसाई जी के अतिरिक्त किसी अन्य गोस्वामी बालक का उल्लेख नहीं मिलता है; यहाँ तक कि श्री गोकुलनाथ जी का भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। इससे भी उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

इस ग्रंथ मे उस समय उपलब्ध वार्ताओं के अनेक प्रसंगों का संस्कृत पद्य मे अनुवाद किया गया है। इससे जहाँ वार्ताओं की महत्ता ज्ञात होती है, वहाँ उनकी प्राचीनता भी सिद्ध होती है। ब्रजभाषा रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद होना उस समय के लिए एक विशेष बात थी। यह ग्रंथ ३७०७ श्लोकों में पूर्ण हुआ है और इसमें ११५ वार्ता प्रसगों का कथन किया गया है। इस ग्रंथ की दो विशाल-काय हस्त प्रतियाँ काँकरोली विद्या विभाग के सरस्वती भंडार में सुरक्षित हैं। इसकी आरंभिक १६ वार्ताएँ 'प्राचीन वार्ता रहस्य' प्रथम एवं तृतीय भाग में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस ग्रंथ की ५८ वीं वार्ता सूरदास से संबंधित है। उस वार्ता के निम्न लिखित उल्लेख से सूरदास की जन्मांधता और उनके ब्राह्मण होने की सूचना प्राप्त होती है—

"जन्मांधो सूरिदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः।"

भक्तमाल—इस ग्रंथ की रचना एक रामोपासक भक्त कवि नाभाजी ने की है। उन्होंने अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती अनेक भक्तों का परिचयात्मक वर्णन किया है। गोसाई विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी के संबंध में लिखते हुए उन्होंने 'श्री गिरिधर भ्राजमान' शब्दों का प्रयोग किया है। इस वर्तमान काल की क्रिया से सिद्ध होता है कि भक्तमाल की रचना गिरिधर जी के आचार्यत्व-काल में हुई थी। श्री गिरिधर जी के आचार्यत्व का समय सं० १६४२ से १६७७ तक है, अतः भक्तमाल की रचना का समय सं० १६६० के लगभग ज्ञात होता है।

---

* प्रगटे श्री विट्ठल ब्रज के नाथ।
पंच सब्द धुनि बजत बधाई, निज जन भये सनाथ॥
मंगल कलस लिए ब्रज भामिनि, गावत गीत सु गाथ।
सकल मनोरथ भये नाथ के निज पद धरे जु माथ

हिंदी के प्राय: सभी विद्वानों ने भक्तमाल को प्रामाणिक एवं सांप्रदायिक पक्षपात से रहित माना है । उन्होंने अधिकांश भक्तों का जिस प्रकार कथन किया है, उससे यही धारणा बनाई जा सकती है; किंतु अनुसंधान करने पर उनके कतिपय उल्लेख भ्रमात्मक भी सिद्ध होते हैं। भक्तमाल में राजा आशकरण को रामभक्त कील्हदेव का शिष्य लिखा गया है, किंतु राजा आशकरण रचित पद, उनके सेव्य ठाकुर और उनके भानजे के वंशजों का इतिहास उक्त कथन को भ्रमात्मक सिद्ध करते हैं । राजा आशकरण के राम विषयक पद प्राप्त नहीं हैं और न कील्हदेव के उल्लेख वाले पद ही प्राप्त होते हैं । इसके विरुद्ध वल्लभ संप्रदाय की वात्सल्य भक्ति भावना के उनके अनेक पद प्रसिद्ध हैं, जो सम्प्रदाय के प्रमुख मंदिरों में सदा से गाये जाते हैं* । एक पद में तो उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने को विट्ठलनाथ जी का सेवक लिखा है× ।

इसके अतिरिक्त राजा आशकरण के सेव्य स्वरूप 'मोहन नागर', जिनका उल्लेख उनके प्रत्येक पद में प्राप्त होता है, वल्लभ संप्रदायी गोस्वामियों के ठाकुर हैं। उनके 'मोहन' ठाकुर गुजरात के धोलका ग्राम में और उनके 'नागर' ठाकुर बंबई में वल्लभ संप्रदाय के मंदिर में विराजमान है । राजा आशकरण के भानजे के वंश में आज तक जितने राजा कृष्णगढ की गद्दी पर हुए है, वे सब के सब वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी होते रहे है। इन सब कारणों से नाभाजी का आशकरण संबंधी कथन भ्रमात्मक सिद्ध होता है।

भक्तमाल में इसी प्रकार के और भी कतिपय कथन हैं, जो अनुसंधान करने पर भ्रमात्मक सिद्ध होते हैं, किंतु अप्रासंगिक होने के कारण उनका यहाँ पर उल्लेख नहीं किया गया है।

---

* १. यह नित्य नेंम यसोदाजू मेरें, तिहारे लाल लड़ावन कों ।
नित्य उठ पालने झुलाऊँ, सकट-भंजन जस गावन कों ।।

२. या गोकुल के चौंहटे, रंग राची ग्वालिन ।
मोहन खेलैं फाग, नैन सलौने री रंग राची ग्वालिन ।।

× ज श्री कृपाल

नाभाजी ने सूरदास के संबंध में केवल एक छप्पय लिखा है, जिसमें उनके कवित्व की प्रशंसा की गयी है और जिससे सूरदास की जन्मांधता का भी संकेत मिलता है। वह छप्पय इस प्रकार है—

उक्ति-चोज-अनुप्रास-बरन, अस्थिति अति भारी ।
बचन प्रीति निर्बाह अर्थ, अद्‌भुत तुक धारी ।।
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि-लीला भासी ।
जनम-करम गुन-रूप, सबै रसना परकासी ।।
बिमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि करै ।
सूर-कवित सुन कौन कवि, जो नहिं सिर-चालन करै ।।

भक्तमाल की टीकाएँ एवं अन्य रचनाएँ—नाभाजी के उपरांत अनेक कवियों ने उनकी शैली का अनुकरण करते हुए भक्तमाल के कथनों का विस्तार किया है । इस प्रकार की रचनाओं में प्रियादास की कृति विशेष उल्लेखनीय है, किंतु आश्चर्य की बात है कि उसमें सूरदास पर कुछ नहीं लिखा गया है । महाराज रघुराजसिंह कृत 'राम-रसिकावली' और कवि मिया-सिंह कृत 'भक्तविनोद' में सूरदास का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है । नाभाजी कृत भक्तमाल में दिये हुए कई सूरदासों की जीवन-घटनाएँ उक्त टीकाओं में इस प्रकार आपस में मिल गई हैं कि उनके कथन अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय हो गये हैं, अतः बाह्य साक्ष्य के लिए उनका उपयोग नहीं किया गया है ।

ध्रुवदास कृत 'भक्त-नामावली' में भी अनेक भक्तों का संक्षिप्त कथन किया गया है । उसमें सूरदास का भी अत्यंत संक्षिप्त उल्लेख है, जिसमें उनकी भक्ति-भावना की प्रशंसा की गयी है । कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावंतसिंह उपनाम 'नागरीदास' कृत 'पद-प्रसंग-माला' में भी सूरदास संबंधी उल्लेख हैं । उक्त ग्रंथ के 'प्रसंगों' में सूरदास संबंधी कुछ अप्रामाणिक कथन भी हैं, अतः वह अग्राह्य हैं ।

आईने अकबरी, मुंतखिब उल तवारीख, मुंशियात अबुलफजल और मूल गोसाईं चरित में भी सूरदास संबंधी उल्लेख मिलते हैं, किंतु वे भी अप्रामाणिक होने के कारण यहाँ पर बाह्य साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किये गये हैं । आगामी पृष्ठों में यथा स्थान आवश्यकता होने पर उनकी आलोचना की जावेगी

अष्टसखामृत—यह ग्रंथ वृंदाबन निवासी प्राणनाथ कवि का र
है। इसकी प्रति सं० १७६७ की लिखी हुई बंबई के बड़े मंदिर में है
ग्रथ के परिचयात्मक दोहाओं से ज्ञात होता है कि इसका रचयिता वल्
दाय का अनुयायी था और वह गो० विट्ठलनाथ जी, श्री गोकुलनाथ
अष्टसखाओं का समकालीन था[२]। इसके रचे हुए गोकुलनाथ जी
ा प्रसंग विषयक कवित्त भी प्राप्त होते हैं।

इस ग्रंथ का सूरदास विषयक उल्लेख इस प्रकार है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सोहो—सर—जलजात।
सारसुती—द्रुज तरु—सुफल, सूर भगत विख्यात।।
सूर सूर हू तें अधिक, निस दिन करत प्रकास।
जाकी मति हरि—चरन में, ताकों देत बिलास।।
बाहिर नैन—विहीन सो, भीतर नैन विलास।
तिन्हें न जग कछु देखिबौ, लखि हरि रूप निहाल।।
बाहिर अंतर सकल तम, करत ताहि छन दूर।
हरि—पद—मारग लखि परत, यातें साँचे सूर।।
स्याम—सुधा—मधुरस—पगी, रसना सूर सहाय।
'प्रान' मनहिं थिर देत करि, हरि—अनुराग बढ़ाय।।
रूप—माधुरी हरि लखी, देखे नहिं अन लोक।
हरि गुन रस—सागर कियो, हरन सकल जग सोक।।
सारद बैठी कंठ तेहि, निस दिन करत किलोल।
हरि—लीला—रस पद कथत, नित नए सूर अमोल।।

नवीन भारत, १९ मई सन् १९४८ में प्रकाशित लेख 'महाकवि सूरद
'गोकुलेस मथुरेस प्रभु, पद गहि हरन कलेस।
अष्टसखामृत अब रचत, भक्त—दास 'प्रानेस'।।
हरिबल्लभ बल्लभ प्रभु, विट्ठलेस पद धूरि।
धरो सीस जिनकी कृपा, पाई जीवन मूरि।।
जिनकी कृपा कटाक्ष सूँ, बसि वृंदाबन धाम।
'प्राननाथ' धनि धनि भयौ, सब विधि पूरन काम।।
जनम-जनम ब्रज भू मिलै, जनम-जनम विट्ठलेस।
जनम-जनम आठौं सखा गोकुलनाथ ब्रजेस।।

> कहा बड़ाई करि सकै, जाको प्रगट प्रकास ।
> श्री बल्लभ के लाड़िले, कहियत सूरजदास ॥
> वर बल्लभ सेयौ नहीं, गायौ गुन नहिं सूर ।
> 'प्रान' जप्यौ नहीं नाम हरि, ताके मुख में धूर ॥

इस उल्लेख में सूरदास के जन्म-स्थान सीहीं, उनकी जाति सारस्वत ब्राह्मण और उनके अंधत्व का परिचय प्राप्त होता है ।

संप्रदाय कल्पद्रुम—यह ग्रंथ श्री हरिराय जी के सेवक विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा ब्रजभाषा पद्य में लिखा गया है । इस ग्रंथ के रचयिता विट्ठलनाथ भट्ट गो० विट्ठलनाथ की पुत्री यमुना के पुत्र जगन्नाथ पंडितराज के ज्येष्ठ भ्राता गोपीनाथ के पौत्र थे । उन्होंने कृष्णगढ़ के राजा मानसिंह के लिए उक्त ग्रन्थ की रचना सं० १७२९ में की थी ।

इस ग्रन्थ में श्री आचार्य जी और श्री गोसाईं जी की जीवन-घटनाओं का वर्णन किया गया है । प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं को तिथि-संवत् सहित देने की प्रथा प्रायः नहीं थी, किंतु इस ग्रंथ में वर्णित अनेक प्रसंगों के तिथि-संवत् दिये हुए हैं । इस दृष्टि से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है, किंतु इसके कतिपय संवत् विश्वसनीय नहीं हैं । ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रंथकार ने अपने समय से पूर्व की घटनाओं के संवत् निर्धारित करने में अधिक सावधानी से काम नहीं लिया है, किंतु उसके समय की घटनाओं के संवत् प्रामाणिक हैं ।

इस ग्रंथ के निम्न लिखित उल्लेख से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपनी तृतीय यात्रा की समाप्ति पर सूरदास को शरण में लिया था

> सूरदास कों सरन लै, तीर्थराज प्रभु आय ।
> भू प्रदक्षिणा पूर्ण किय, ब्रह्मभोज करवाय[1] ॥

जमुनदास कृत धौल—श्री हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती भाषा का एक प्राचीन धौल प्राप्त है, जिसमें सूरदास का विस्तृत परिचय दिया गया है । जमुनादास और उसकी रचनाएँ बल्लभ-संप्रदाय में प्रसिद्ध हैं । उसके रचे हुए सर्वोत्तम आदि के पद मंदिरों में गाये जाते हैं । इस धौल की प्रामाणिकता प्राचीन हस्त प्रतियों और उसके व्यापक प्रचार से सिद्ध है । इस धौल की अंतिम प्रति से ज्ञात होता है कि कवि ने सूरदास विषयक कथन श्री हरिराय जी द्वारा श्रवण करने के उपरांत लिखा है । इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि उसका कथन हरिराय जी कृत भावप्रकाश के अनुकूल है—

---

१ कल्पद्रुम पृ० ४२

श्री सूरदास जी परम भक्त शिरोमणि, आ रहेता ते तो दिल्ली सीही ग्राम जो।
बालपने थी हरिभक्ति करता सदैव, आ अंतर कामां जानती राखे हाम जो ।।

प्रगट्याए तो ब्रह्म सारस्वत कुलमां, आ नेत्र विहीणे दरिद्र पिता ना धाम जो।
कटु वचन सुणी ने घर थी चालिया, ते आवी पहोंच्या एक तलावनी ठाम जो ।।

रह्या बार वर्ष लगी त्यां निर्भे थई, पण हरि मिलन नी चिंता मननी मांह्य जो।
एक दिवसे अति विरह चित्त जे थयो,त्यारे कृपा करीने प्रगट्या श्रीहरित्यांह्य जो ।।

नेत्र दई ने आप्यां दर्शन श्रीनाथ जी, आ वर माँगवाने कह्यु छे तेनी बाप जो।
ए समये नाँ दर्शन थी मुदित थई, आ अंतरदृष्टि ए हरिलीला ने माँगे जो ।।

त्यारे अति प्रसन्न बदने श्रीनाथ जी, आ कहे, सुनो मम बाल सखा प्रवीन जो।
हवे शीघ्र ब्रजमंडल माँ जाओ तमे, त्याँ थी जो श्री बल्लभ ने अधीन जो ।।

ते वारे दर्शन आपीश हुँ तने, ने देखाडीश मम लीला ना परकार जो।
ए समये विनती सूरदासे की धी, प्रभु ! केम जाणु हुँ श्रीबल्लभनो आय जो ।।

त्यारे कृपा करी ने श्रीनाथ जी, आ कहे छे त्याँ श्रीबल्लभ केरां रूप जो।
दक्षिण ब्राह्मण वेष सदा एउनो रहे, आ स्याम बरन ने दिव्य तेज अनूप जो ।।

ए परिक्रमण करीने पृथ्वी पावन करे,आ विहिणपादुका-चरन सुवासित जान जो।
रूप बटुक सदा छे एहुनां, आ तारा श्री ए दिवस दस महान जो ।।

एम कहीने प्रभु त्यारे अंतरध्यान थया, आ त्यारे तेमने प्रगट्यो विरह अपार जो।
पछी आज्ञा प्रभुनी माथे धरी, आ चाली आव्या मथुरा थई गौघाट जो ।।

त्या रहीने कीरतन हरिनां बहु करयां,ने ध्यान करयां श्रीबल्लभजी महाराज जो।
एम करतां दक्षिण थी प्रभु आवी आ,ने शरणे लीधा छे भक्त शिरोमणि राज जो।।

सहस्रनाम रची हरि लीला भासित करी, आकीधा मनोरथ पूरण नंदकुमार जो।
पछी त्याँ थी प्रभु श्री गोकुल आवीया, आ संगे लाव्या सूरदासने ते वार जो ।।

अहीं बाल-लीला नां सुख आपी ने, आ लाप्या तेमने श्री गोवर्धन सुखधाम जो।
त्यां आत्मनिवेदनने सोंप्या छे श्रीनाथ जी,आ आपी सेवा कीर्तननी अष्टयाम जो ।।

पछी देखाड्यु रूप श्रीगोवर्द्धन क्षेत्रनु, आ सारस्वतकल्पनुं वृंदावन शुभनाम जो।
त्यारे त्यां रही शरणे पद रचना करी,आ सवालक्ष ते निज जन मन अभिराम जो।।

पछी श्री गुसांईजी ए थाप्या अष्टछापमा,आ अष्टसखामध्य राज शिरोमनि रूपजो
प्रथम ते वरणन शा करे आ तुच्छ वदन जो श्रीहरिराय महाभूप जो

भाव संग्रह—श्री द्वारकेश जी भावना वालों ने इसकी रचना की है, जिनका समय सं० १७५१ से सं० १८०० के आस-पास है। इसमें सूरदास की जन्म तिथि, जाति और उनके जन्म स्थान का निम्न उल्लेख मिलता हैं —

"सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते। लीला में उनकौ स्वरूप कृष्ण-सखा, चंपकलता सखी, श्री जी के वाक् कौ स्वरूप, गिरिराज के चंद्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण, सोहीं गाम के वासी।"

वैष्णवाह्निक पद—इसकी रचना गो० श्री गोपिकालंकार जी उपनाम 'मट्टू जी' जतीपुरा निवासी ने की है। उनका जन्म सं० १८७९ में हुआ था। उन्होंने अपनी रचनाएँ 'रसिकदास' के नाम से की है। सूरदास के यशोगान विषयक उनकी कई रचनाएँ उपलब्ध है। एक पद में उन्होंने सूरदास की जन्म तिथि का इस प्रकार उल्लेख किया है—

> प्रगटे भक्त-सिरोमनि राय।
> **माधव सुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ अधिक सुखदाय।।**
> **संवत पंद्रह्य पेंतीस वर्षे कृष्ण सखा प्रगटाय।**
> **करि हैं लीला फेरि, अधिक सुख मन मनोरथ पाय।।**
> **श्री वल्लभ, श्री विट्ठल, श्री जी रूप एक दरसाय।**
> **'रसिकदास' मन आस पूरन ह्वै, सूरदास भुव आय।।**

जनश्रुतियाँ—सूरदास के जीवन-वृत्तांत से ज्ञात होता है कि वे अपने समय मे ही यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उनके देहावसान के अनंतर उनकी ख्याति और भी बढी। इसके कारण अनेक प्रकार की जन-श्रुतियाँ उनके संबध मे लोक में प्रचलित हो गई थीं। उनमें से कई जन-श्रुतियों की पुष्टि वहि:साक्ष्य हो जाती है और कई जनश्रुतियाँ अन्य सूरदासों से संबंधित होने के कारण अप्रमाणिक सिद्ध हो गई हैं। सूरदास पर लिखने वाले कई लेखकों ने सूर संबंधी सामग्री में इन जनश्रुतियों को भी सम्मिलित किया है, किंतु हमने इनको सामग्री के रूप में स्वीकार नहीं किया है। प्रामाणिक जनश्रुतियों का संबंध सूरदास के अंत:साक्ष्य एवं वाह्य साक्ष्य से है, अत: उनके मूल तत्वों का विवेचन उक्त साक्ष्यों के साथ हो चुका है। अप्रामाणिक एवं निराधार जनश्रुतियों के संबंध में लिखना अनावश्यक समझा गया है

३. आधुनिक सामग्री

अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के रूप में सूरदास संबंधी जो प्राचीन सामग्री उपलब्ध है, उसका अनुसंधान करने पर आधुनिक विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वही आधुनिक सामग्री के रूप में प्राप्त हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये समस्त निष्कर्ष निर्भ्रांत एवं विश्वसनीय ही हों, अतः इनके संबंध में मतभेद होना स्वाभाविक है। फिर भी सूर संबंधी अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए प्रत्येक लेखक को अपने अग्रजों द्वारा प्रस्तुत सामग्री से बहुमूल्य सहायता मिलती रही है। हमने भी इस सामग्री का यथा स्थान उपयोग किया है। जहाँ हमारा मत इसके अनुकूल नहीं हो सका है, वहाँ हमने उसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री,
२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर विषयक सामग्री,
३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री।

अब हम इस सामग्री का संक्षिप्त परिचय देकर यह देखना चाहते हैं कि सूर संबंधी समीक्षात्मक निर्णय करने में यह किस प्रकार सहायक हो सकती है।

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री

सूरसागर—अब तक प्रकाशित सूरसागर के समस्त संस्करणों में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण सबसे बड़ा और अच्छा है। स्व० बा० जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' ने बड़े परिश्रम और अध्यवसाय पूर्वक इसकी सामग्री एकत्र की थी और इसका संपादन भी किया था, किंतु उनके असामयिक निधन के कारण यह कार्य उनके समय में पूरा न हो सका। फिर सभा ने श्री नंददुलारे वाजपेयी से इस कार्य की पूर्ति कराकर सूरसागर को दो बड़े खंडों में प्रकाशित किया है। सभा के इस संस्करण में सूरदास के जीवन-वृत्तान्त और इस ग्रंथ की संपादन-शैली के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है, जो इसकी एक कमी है; किंतु प्रामाणिक अंतःसाक्ष्य के लिए यह बड़ा उपयोगी है। वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई का संस्करण पुराने संस्करणों में अच्छा है। इसका संपादन बा० राधाकृष्णदास ने किया था। उन्होंने इसकी भूमिका में सूरदास का विस्तृत जीवन वृत्तांत भी लिखा है। जिस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ था उस समय वह वृत्तांत निःसंदेह महत्वपूर्ण माना जाता था

किंतु अब नवीन अनुसंधानों के कारण उसका महत्व कम हो गया है। राम रसिकावली एवं भक्तविनोद की जिस सामग्री का उन्होंने उपयोग किया है, वह स्वयं इस समय महत्वपूर्ण नहीं रही। सूरसागर का एक अन्य संस्करण नवलकिशोर प्रेस लखनऊ का है, जिसमें सूरदास के जीवन-वृत्तांत की सामग्री उपलब्ध नहीं है, किंतु सूर संबंधी अंत:साक्ष्य के लिए इसका भी महत्व है। सूरसागर के दो संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। एक का संपादन श्री वियोगी हरि ने और दूसरे का डा० बेनीप्रसाद ने किया है। उक्त विद्वान संपादकों ने सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी प्रकाश डाला है, किंतु उनके कथन से किसी महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन नहीं होता है।

सूर-संकलन—सूरदास के काव्य का परिचय देने के लिए उनकी कविता के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनमें ला० भगवानदीन कृत 'सूर-पंचरत्न' और 'सूर संग्रह', श्री नंददुलारे वाजपेयी कृत 'सूर-संदर्भ' और 'सूर-सुषमा', श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'सूर-पदावली', श्री नरोत्तमदास स्वामी कृत 'सूर-साहित्य-सुधा', श्री हरदयालुसिंह कृत 'सूर-मुक्तावली' मुख्य हैं। इन संग्रह ग्रंथों की प्रस्तावना में सूरदास के संबंध में भी लिखा गया है। जहाँ तक सूरदास के जीवन-वृत्तांत का संबंध है, इन संग्रह ग्रंथों से कोई विशेष महत्व की बात ज्ञात नहीं होती है; किंतु उनमें सूरदास के काव्य और उनकी भाषा के संबंध में महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं। 'सूर-पंचरत्न' की भूमिका स्वरूप 'अंतर्दर्शन' मे सूरदास के काव्य और उनकी भाषा की विस्तृत आलोचना की गई है। इसी प्रकार 'सूर-मुक्तावली' के 'प्राक्कथन' और उसकी 'भूमिका' में भी विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया है। सूरदास के भ्रमरगीत विषयक पदों का एक अच्छा संकलन 'भ्रमरगीत-सार' के नाम से श्री रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित और साहित्य सेवा सदन, काशी द्वारा प्रकाशित हुआ है। शुक्ल जी उद्भट समालोचक थे। उन्होंने इस ग्रंथ के आरंभ में सूरदास के काव्य की विद्वतापूर्ण एवं सारगर्भित आलोचना की है, जो इस प्रकार की सामग्री में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सूरदास कृत पदों के तीन संकलन इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक द्वारा भी प्रस्तुत हुए हैं, जिनके नाम 'सूर विनय-पदावली', 'सूर राम चरित्र' तथा 'सूर बालकृष्ण पदावली' हैं। उनमें सूर - काव्य की विशिष्टता का विवेचन भी किया गया है। सूर-साहित्य के अनुशीलन के लिए यह समस्त सामग्री महत्वपूर्ण है जिस पर हम यथा स्थान विचार करेंगे

साहित्य-लहरी—इस ग्रंथ का एक संस्करण श्री महादेवप्रसाद कृत टीका सहित पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय द्वारा प्रकाशित हुआ है। साहित्य-लहरी जैसे क्लिष्ट काव्य की टीका प्रस्तुत कर श्री महादेवप्रसाद ने महत्वपूर्ण कार्य किया है; किंतु उन्होंने अपने 'वक्तव्य' में सूरदास के संबंध में कुछ भ्रमात्मक बातें लिखी हैं। श्री गोकुलनाथ जी का नाम 'गुसाईं गोकुलनाथ जी' लिखते हुए उन्होंने बतलाया है कि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण और उनको रामदास का पुत्र तथा रुनकता नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ लिखा गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि लेखक ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को स्वयं नहीं देखा है, अन्यथा वे इस प्रकार का कथन नहीं करते। सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखने वाले श्री गोकुलनाथ जी नहीं, बल्कि श्री हरिराय जी थे, जिन्होंने चौरासी वार्ता पर भावप्रकाश लिखते हुए सूरदास का विस्तृत जीवन-वृत्तांत प्रस्तुत किया है। रामदास का पुत्र होने और रुनकता में उनके जन्म लेने की बात न तो श्री गोकुलनाथ जी ने लिखी है और न श्री हरिराय जी ने। इसके साथ ही विल्वमंगल वाली पुरानी कथा को भी इस ग्रंथ के टीकाकार ने सूरदास से संबधित करने में 'हिचकिचाहट' नहीं की है। इस ग्रंथ के प्रस्तावना-लेखक श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने जहाँ साहित्य-लहरी के काव्य पक्ष का विद्वतापूर्ण विवेचन किया है, वहाँ सूरदास के जन्म, वंश, अंधत्व और निधन संबंधी वही पुराना मत प्रकट किया है, जो नवीन अनुसंधान से भ्रमात्मक सिद्ध हो चुका है। यदि इस ग्रंथ में साहित्य-लहरी की टीका के अतिरिक्त 'वक्तव्य' आदि लिखने का कष्ट न किया जाता, तो अच्छा होता।

'साहित्य-लहरी' का नवीन संस्करण इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है, जो 'साहित्य संस्थान' मथुरा द्वारा सं० २०१८ में प्रकाशित हुआ है। इसमें कूट पदों के प्रामाणिक पाठ, पाठांतर, शब्दार्थ, भावार्थ, प्रसंग, काव्यांग-विवेचन, शोधपूर्ण टिप्पणी, परिशिष्ट और अनुक्रमणिकाओं के साथ ८० पृष्ठों की वृहत् भूमिका भी दी गई है। भूमिका में अन्य आवश्यक बातों के विवेचन के साथ अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त अन्य आठ सूरदासों के जीवन-वृत्तांत की समीक्षा भी है और उनमें से प्रत्येक को साहित्य-लहरी का रचयिता होने की संभावना पर विचार किया गया है। इस ग्रंथ के सुप्रसिद्ध वंश-परिचय वाले पद की आलोचना करते हुए यह निर्णय किया गया है कि वह अष्टछापी सूरदास से संबंधित नहीं है। इस रचना के संबंध में अधिक लिखना हमारे लिए उचित न होगा

सूर-सारावली—सूरदास की यह रचना पृथक् ग्रंथ के रूप में उपलब्ध नहीं थी। इससे इसके अध्ययन मे बड़ी असुविधा होती थी। इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक ने इसका एक सुसंपादित संस्करण भी प्रस्तुत किया है, जिसे अग्रवाल प्रेस, मथुरा ने सं० २०१४ में प्रकाशित किया था। इसके आरंभ में ६४ पृष्ठों की वृहत् भूमिका है, जिसमें सूरदास की इस सैद्धांतिक रचना के महत्व का विवेचन करते हुए इसके रचयिता विषयक विवाद पर भी प्रकाश डाला गया है। स्वयं अपनी रचना होने के कारण इस ग्रंथ के संबंध मे भी हमें अधिक लिखने का अधिकार नहीं है।

२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री

खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी प्रामाणिक सामग्री के प्राप्त होने की आशा की जा सकती है, किंतु ये साधन अभी तक अपूर्ण सिद्ध हुए है। खोज संबंधी अधिकांश कार्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। ब्रज साहित्य मंडल द्वारा ब्रज में, राजस्थान विद्यापीठ द्वारा राजस्थान में और विहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा विहार में भी खोज का कार्य हुआ है। इनकी खोज रिपोर्टों के देखने से ज्ञात होता है कि उनमें सूरदास संबंधी सामग्री का बहुत कम उल्लेख है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में सूरसागर की कई प्रतियों के अतिरिक्त सूरदास की कुछ अन्य रचनाओं का विवरण दिया गया है, किंतु यह सामग्री नितांत अपर्याप्त है। यदि खोज का कार्य व्यवस्थित रूप से बड़े परिमाण में किया जाय, तो सूर संबंधी सामग्री यथेष्ट परिमाण में मिलने की आशा की जा सकती है।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में महाकवि सूरदास का उल्लेख होना अनिवार्य है। उनमें सूर संबधी सामग्री भी मिलती है, किंतु वह जैसी प्रामाणिक होनी चाहिए थी, वैसी नहीं है। इसका कारण यही हो सकता है कि सूर संबंधी अध्ययन अभी अपूर्ण है और तत्संबंधी अनेक बाते अभी विवादग्रस्त हैं। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी आधुनिक सामग्री प्रचुर परिमाण में मिलती है। इस सामग्री का थोड़ा-बहुत विवेचन होना आवश्यक है।

हिंदी साहित्य के इतिहास की आरंभिक सामग्री फ्रेंच लेखक गार्सँद तासी लिखित 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुस्तानी' नामक फ्रेंच ग्रंथ, शिवसिंह सेंगर लिखित 'सरोज' और उसी के आधार पर सर जार्ज ए० ग्रियर्सन लिखित 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान' नामक अंगरेजी ग्रंथ मे

उपलब्ध है । इन ग्रंथों मे प्रमुख हिंदी कवियों का उल्लेख होने से प्रसंगवश सूरदास का भी विवरण दिया गया है, किंतु यह अपर्याप्त एवं अप्रामाणिक है। तासी के उल्लेख का आधार 'आईन-ए-अकबरी' है, जिसका सूरदास संबधी कथन स्वयं अप्रामाणिक है। 'शिवसिंह सरोज' में भी सूरदास का संक्षिप्त एव अप्रामाणिक वृत्तांत दिया हुआ है। इस ग्रंथ का निम्न लिखित उल्लेख विचारणीय है—

"इनका बनाया सूरसागर ग्रंथ विख्यात है। हमने इनके पद ६० हजार तक देखे हैं। समग्र ग्रंथ कहीं नहीं देखा।"

सूरदास ने लाख-सवालाख पदों की रचना की थी, यह जनश्रुति परंपरा से चली आ रही है; किंतु इतना अनुसंधान होने पर भी अब तक ८—१० हज़ार से अधिक पद उपलब्ध नहीं हुए हैं। इस संबंध में हम अपने विचार आगामी पृष्ठों में उपस्थित करेंगे।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मिश्रबंधु कृत मिश्रबंधु विनोद', श्री रामनरेश त्रिपाठी कृत 'हिंदी का संक्षिप्त इतिहास', श्री रामचंद्र शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० श्यामसुंदर दास कृत 'हिंदी भाषा और साहित्य', प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत हिंदी और उसके साहित्य का विकास', श्री सूर्यकांत शास्त्री कृत 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', श्री ब्रजरत्न दास कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० रामकुमार वर्मा कृत 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', मिश्रबंधु कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', श्री गुलाबराय कृत हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास', और श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'हिंदी साहित्य' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमें से प्रमुख इतिहास ग्रंथों के विषय में आगे लिखा जाता है।

'मिश्रबंधु विनोद' और 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (मिश्रबंधु)

हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० मिश्रबंधुओ को हिंदी साहित्य के प्रथम व्यवस्थित इतिहास लिखने का श्रेय प्राप्त है। प्रथम प्रयास होने के कारण उसमें भ्रम और भूलों का रह जाना सर्वथा स्वाभाविक था, इसलिए उनके सूरदास संबंधी विवरण में भी कई त्रुटियाँ मिलती हैं। उनका लिखा हुआ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' 'विनोद' की रचना के प्राय: २६ वर्ष पश्चात् सं० १९९६ में गंगा पुस्तक माला द्वारा प्रकाशित हुआ किंतु उसमें भी सूरदास संबंधी विवरण अपरिष्कृत रूप मे विनोद जसा ही दिया गया है इससे यह समझा ज

सकता है कि या तो इसके लेखक अपने पूर्व मत पर दृढ़ थे, अथवा उनको नवीन अनुसंधानों का पता नहीं था। उन्होंने सूरदास के पिता का नाम रामदास, जन्म संवत् १५४० और निधन संवत् १६२० लिखा है। उन्होंने सूरदास के ग्रंथो में 'नल-दमयंती' का भी नामोल्लेख किया है। उन्होने ८ वर्ष की अवस्था में सूरदास का मथुरा में निवास लिखा है[1]। ये सब बातें यथेष्ट परिवर्तन और संशोधन की अपेक्षा रखती हैं।

हिंदी साहित्य का इतिहास (**पं० रामचंद्र शुक्ल**) हिंदी के समस्त इतिहास ग्रंथों में शुक्ल जी का इतिहास सबसे अधिक प्रसिद्ध और कदाचित सबसे अधिक श्रेष्ठ है। शुक्ल जी ने सूरदास के काव्य और उनकी भक्ति-भावना की बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। यह आलोचना भ्रमरगीत-सार और सूरदास नामक ग्रंथों में छप चुकी है। सूरदास के जीवन-वृत्तांत के संबंध मे शुक्ल जी द्वारा कोई महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता है। उन्होंने इस संबध में मिश्रबंधुओं का अनुकरण किया है। उन्होंने भी सूरदास के जन्म एव निधन काल के संवत् क्रमशः १५४० और १६२० अनुमानित किये हैं। उन्होंने सूरदास के शरण-काल का संवत् अनुमानतः १५८० लिखा है[2]। नवीन सामग्री के अनुसंधान से ये सभी संवत् अप्रामाणिक सिद्ध हो गये है।

हिंदी भाषा और साहित्य (**डा० श्यामसुंदर दास**)—हिंदी का यह भी प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ है। जिसमें भाषा और साहित्य का काल-क्रमानुसार वर्णन किया गया है। बाद में भाषा और साहित्य के अनुसार इसे दो स्वतंत्र ग्रंथों में विभाजित कर दिया गया। 'हिंदी साहित्य' नामक ग्रंथ में विभिन्न कालीन परिस्थितियों का बड़ा गंभीर विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ मे सूरदास का विवरण अपेक्षाकृत कम दिया गया है। उन्होंने सूरदास के जन्म-काल के संबंध में लिखा है—

"परंपरा के अनुसार इनका जन्म-काल सं० १५२९ माना जाता है[3]।"

किंतु उन्होंने उक्त 'परंपरा' का स्पष्टीकरण नहीं किया। उन्होने सूरदास को जन्मांध स्वीकार नहीं किया है।

---

१. 'मिश्रबंधु विनोद' (प्रथम संस्करण सं० १९७०) पृष्ठ २७० और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (प्रथम संस्करण सं० १९९६) पृष्ठ ६७

२. 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (संशोधित संस्करण, संवत् २००२) पृष्ठ १३८, १३९।

३ हिंदी साहित्य चतुर्थ संस्करण संवत् २००३ पृष्ठ १८५

हिंदी साहित्य का इतिहास (डा० रसाल)—यह हिंदी साहित्य का विशाल-काय इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल हैं। इसमें लेखक ने हिंदी के इतिहास की विभिन्न प्रवृत्तियों का योग्यता और विस्तार पूर्वक कथन किया है। सूरदास के संबंध में उन्होंने लिखा है—

"आपकी भी पूर्ण तथा यथार्थ जीवनी हमें प्राप्त नहीं। ८४ वैष्णवों की वार्ता के अनुसार आपका जन्म-स्थान रुनकता (रेणुका क्षेत्र) है, किंतु कोई-कोई दिल्ली निकटस्थ सीही ग्राम को भी आपका जन्म-स्थान कहते हैं। वार्ता में इन्हें सारस्वत ब्राह्मण श्री रामदास जी का पुत्र कहा गया है। भक्तमाल में इनका ब्राह्मण होना तथा ८ वर्ष में इनका उपवीत होना लिखा है[1]।"

उपर्युक्त कथन में पर्याप्त संशोधन की आवश्यकता है, जैसा कि हम आगामी पृष्ठों में सिद्ध करेंगे। अन्य इतिहास ग्रंथों की तरह इसमें भी सूरदास का जन्म-काल संवत् १५४० और निधन-काल सं० १६२० लिखा गया है।

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा) यह हिंदी साहित्य का नवीन और महत्वपूर्ण इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामकुमार वर्मा हैं। यह इतिहास अभी पूर्ण नहीं हुआ है, किंतु भक्ति-काल तक का विवरण होने से इसमें सूरदास का वर्णन आ गया है। अन्य इतिहास ग्रंथों की अपेक्षा इसमें सूरदास संबंधी सामग्री अधिक विस्तार पूर्वक दी गयी है। इस सामग्री में सूरदास के जीवन-वृत्तांत, उनके ग्रंथ और काव्य-महत्व का विवेचन किया गया है। जीवन-वृत्तांत की आलोचना वाह्य साक्ष्य के आधार पर की गयी है। 'साहित्य-लहरी' के वंश परिचय वाले पद तथा मुंशी देवीप्रसाद और बा० राधाकृष्णदास के उल्लेखों के कारण इसके लेखक सूरदास को भाट जातीय मान सकते थे, किंतु उक्त पद में 'विप्र' और 'ब्रह्मराव' दोनों विरोधी शब्दों का उल्लेख होने से उनको भी उक्त पद की प्रामाणिकता मे संदेह है[2]। वाह्य साक्ष्य में सबसे अधिक महत्व चौरासी वार्ता को दिया गया है, जिसको उन्होंने प्रामाणिक ग्रंथ माना है[3]। वाह्य साक्ष्य की अन्य सामग्री आईन-ए-अकबरी, मुंतखिब उल तवारीख, मुंशियात अबुलफजल और

१, हिंदी साहित्य का इतिहास (प्रथम संस्करण, सं० १९८८) पृष्ठ २९०

२. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण) पृ० ६०५

३ पृ० ६११

गोसाईं चरित पर इस ग्रंथ में विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। उन्होंने सूरदास के नाम अबुलफज़ल के पत्र को प्रामाणिक मानकर "सूरदास की मृत्यु श्रावण संवत् १६४२ के बाद[१] मानी है। नवीन अनुसंधान से सिद्ध हो गया है कि अबुलफज़ल ने जिसे पत्र लिखा था, वह कोई अन्य सूरदास था, अत सूरदास की मृत्यु सं० १६४० के बाद मानने का कोई कारण नहीं है। उन्होंने महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के निधन संवत् १५८७ के आधार पर लिखा है—

"सूरदास का आविर्भाव काल संवत् १५८७ के बाद ही मानना उचित है[२]।"

यदि 'आविर्भाव' से लेखक का अभिप्राय सूरदास की प्रसिद्धि से है, तब भी उसका कथन प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है, क्यों कि वार्ता के अनुसार महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के समय में ही सूरदास यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे और महाप्रभु जी स्वयं "आओ सूरसागर !" कह कर सूरदास सन्मान करते थे। सूरसागर के रचना-काल के संबंध में उन्होंने लिखा है—

"सूरसागर का रचना-काल संवत् १५८७ के बाद ही होना चाहिए, जिस समय सूरदास श्री बल्लभाचार्य से दीक्षित हुए। दीक्षित होने से पहले वे 'घिघयाते' थे, बाद में भगवद् लीला वर्णन करने में समर्थ हुए। इसी भगवद् लीला वर्णन करने में उन्होंने सूरसागर की रचना की[३]।"

लेखक का उक्त मत भ्रमात्मक है। सूरदास सं० १५८७ में बल्लभाचार्य जी से दीक्षित नहीं हुए थे, बल्कि वे इससे प्रायः २० वर्ष पूर्व सं० १५६७ मे ही दीक्षित हो चुके थे। सं० १५८७ बल्लभाचार्य जी का निधन संवत् है, तब सूरदास सूरसागर के अधिकांश भाग की रचना कर चुके थे।

सूरदास के ग्रंथों का परिचय देते हुए उन्होंने उनके कुल १६ ग्रंथों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"इस प्रकार कुल मिलाकर सूरदास के नाम से १६ ग्रंथ हैं। इनमें से सूरसागर ही पूर्ण प्रामाणिक है। अन्य ग्रंथ सूरसागर के ही अंश हैं, या सूरसागर की कथावस्तु के रूपांतर। कुछ ग्रंथ तो अप्रामाणिक भी होंगे[४]।"

---

१. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण) पृ० ६१६
२. ,, ,, ,, ,, ,, पृ० ६२२
३ पृ० ६२२
४ ,, पृ० ६२०

हिंदी साहित्य—(**डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी**)—यह हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास है, जिसमें उसके उद्भव और विकास का विवेचन किया गया है। डा० द्विवेदी कृत 'हिंदी साहित्य की भूमिका' अत्यंत विद्वतापूर्ण प्रौढ ग्रथ है। उसके यशस्वी लेखक से यह आशा करना स्वाभाविक था कि उनका यह ग्रंथ शुक्ल जी के बाद उनके इतिहास की कमी को पूरा करेगा; किंतु दुर्भाग्य वश ऐसा नहीं हुआ। ऐसा मालूम होता है, द्विवेदी जी ने इसे बहुत जल्दी में लिखा है; अतः इसमें 'हिंदी साहित्य की भूमिका' की सी प्रौढ़ता दिखलाई नहीं देती है। सूरदास के संबंध में उनका कथन अपूर्ण ही नहीं, त्रुटि-पूर्ण भी है। उन्होंने लिखा है—

"चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार इनका जन्म स्थान रुनकता या रेणुका क्षेत्र है। ये मथुरा और वृंदावन के बीच गऊघाट पर रहते थे[1]।"

चौरासी वैष्णवन की वार्ता में सूरदास के जन्म स्थान का उल्लेख नहीं हुआ है। हरिराय जी कृत भावना वाली वार्ता में इसका उल्लेख है, किंतु उसमें दिल्ली के निकटवर्ती सीहीं ग्राम को उनका जन्म-स्थान लिखा गया है। सूरदास जी जिस गऊघाट पर रहते थे, वह मथुरा और वृंदावन के बीच में नहीं है, बल्कि मथुरा और आगरा के बीच में है।

उन्होंने सूरदास के जन्मांध होने की बात प्रामाणिक नहीं मानी है। इस संबंध में उनका कथन है—

"सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता[2]।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि सूरदास को जन्मांध मानने वालों ने यह कभी नहीं कहा कि सूरदास का साहित्य स्वयं उनका लिखा हुआ है। वे तो कीर्तन के लिए गायन करते थे। उनका गाया हुआ साहित्य अन्य व्यक्तियों ने लिपिबद्ध किया था। डा० द्विवेदी जी ने अनुमान किया है कि सूरदास सन् १५२३ ई० के आस-पास बल्लभाचार्य जी के संपर्क में आये होंगे; किंतु वे इससे बहुत पहिले ही बल्लभाचार्य जी के सेवक हो चुके थे। उन्होंने कृष्ण-दास के अधिकारी होने से सूरदास को श्रीनाथ जी के मंदिर से हटने और परासोली चले जाने की बात लिखी है। उन्होंने सूरदास द्वारा सारावली का

१- हिंदी साहित्य (प्रथम संस्करण- सन् १९५२)- पृ० १७२

२ " प्रथम संस्करण पृ० १७५

निर्माण सूरसागर की रचना के बाद माना है[1]। कहना नहीं होगा, इन सभी बातों में संशोधन की आवश्यकता है।

हिंदी साहित्य के अन्य इतिहास—उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ अन्य इतिहास ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं। इनमें सूरदास संबंधी उल्लेख पुराने ग्रंथों के पिष्टपेषण मात्र है; अतः संशोधनीय है। भारतीय हिंदी परिषद् और काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने विविध विद्वानों के सहयोग से हिंदी साहित्य के बृहद् इतिहास निर्माण की योजनाएँ बनाई हैं। उनके द्वारा इसके कुछ खंड प्रकाशित भी हो गये हैं। भारतीय हिंदी परिषद् ने 'हिंदी साहित्य'—द्वितीय खंड प्रकाशित किया है। इसमें 'कृष्ण-भक्ति साहित्य' परिच्छेद के अंतर्गत सूरदास का उल्लेख किया गया है। उसमें सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर कुछ भी नहीं लिखा गया, यद्यपि इसके राम काव्य विषयक परिच्छेद में गो० तुलसीदास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला गया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास १६ भागों मे निकालने की योजना है। अब तक इसके ३ भाग प्रकाशित हुए हैं। सूरदास का उल्लेख भक्ति साहित्य विषयक जिस भाग में होगा, वह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। देखना है, इस बृहद् आयोजन में सूरदास के साथ कितना न्याय किया जाता है।

३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री

भारतेन्दु बा० हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य में सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत करने का कार्य आरंभ किया था। उनके पश्चात् बा० राधाकृष्णदास, मुशी देवीप्रसाद और बा० जगन्नाथदास रत्नाकर ने इस कार्य को और भी आगे बढ़ाया। हिंदी साहित्य के इतिहास की तरह इस कार्य को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय भी मिश्रबंधुओं को है। उन्होंने 'मिश्रबंधु विनोद' और 'हिंदी नवरत्न' लिख कर हिंदी कवियों की अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री को प्रथम बार सुंदर रूप में उपस्थित किया। इस विषय के वे आरंभिक प्रयत्न थे, अतः उनमें वैज्ञानिक शैली का अभाव दिखलाई देता है। जब उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए इस प्रकार के साहित्य की माँग हुई, तब सूर संबंधी आलोचना और अध्ययन को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने की ओर विद्वानों का ध्यान गया। सुप्रसिद्ध समालोचक श्री रामचंद्र शुक्ल

---

१ हिंदी साहित्य प्रथम पृ० १७५ १७६

ने तुलसीदास और जायसी के अतिरिक्त सूरदास पर वैज्ञानिक आलोचना लिखी। सूर संबंधी वैज्ञानिक अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० धीरेंद्र वर्मा को है। वर्मा जी ने अपने विद्यार्थियों को इस दिशा में प्रेरित कर सूर संबंधी साहित्य को प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत करा दिया है। उनकी चेष्टा का ही यह परिणाम है कि विश्वविद्यालयों के अध्यापक, शोधक और आलोचक अब सूर-साहित्य प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील हैं। इस साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

हिंदी नवरत्न (**श्री मिश्रबंधु**)—इस ग्रंथ में हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नौ महाकवियों का परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक विस्तृत विवरण है, जिसमे तुलसीदास के पश्चात् सूरदास को स्थान दिया गया है। यद्यपि 'विनोद' की अपेक्षा इसमें सूरदास का विस्तृत उल्लेख है, तथापि कवि के महत्व को देखते हुए अन्य कवियों की तुलना मे सूरदास का अपेक्षाकृत कम वर्णन लिखा गया है। जो कुछ लिखा गया है, वह पुरानी मान्यताओं पर आधारित है, जैसा कि इस पुराने ग्रंथ में होना स्वाभाविक था। अब नवीन शोध के आधार पर संशोधन होना आवश्यक है।

सूरदास (**डा० जनार्दन मिश्र**)—इस अंगरेजी ग्रंथ में सूरदास के जीवन, ग्रंथ, उनके गुरु श्री बल्लभाचार्य और उनके धार्मिक सिद्धांतों का आलोचनात्मक विवरण दिया गया है। यद्यपि विद्वान लेखक ने इसके लिखने में यथेष्ट परिश्रम किया है, तथापि वे कोई महत्वपूर्ण नवीन सामग्री उपस्थित नहीं कर सके हैं।

सूर-साहित्य (**पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी**)—इस ग्रंथ के रचयिता हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान और प्रौढ़ लेखक हैं। उन्होंने सूर-साहित्य के धार्मिक पक्ष की विद्वत्तापूर्ण एवं विवेचनात्मक आलोचना की है, किन्तु उन्होंने सूर के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों का समीक्षात्मक विवरण नहीं दिया है। उन्होंने सूर-साहित्य के काव्य पक्ष पर भी विशेष प्रकाश नहीं डाला है। द्विवेदी जी जैसे प्रकांड विद्वान इस विषय पर विस्तार पूर्वक लिखते तो अच्छा था।

भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास (**श्री नलिनीमोहन सान्याल**)—इस ग्रंथ में सूरदास के काव्य की समालोचना की गई है। सूरदास का जीवन-चरित्र अत्यंत संक्षिप्त रीति से केवल ५ पृष्ठों में लिखा गया है। इसमें लेखक ने प्रायः मिश्रबंधुओं के मत का अनुकरण किया है। सूरदास के ग्रंथों के विषय में इस पुस्तक में कुछ भी नहीं लिखा गया है

इस पुस्तक में सूरसागर के काव्य-महत्व पर संक्षिप्त एवं सरल रीति से प्रकाश डाला गया है। इसमें वात्सल्य, माखनचोरी, संयोग शृंगार, रासलीला, भ्रमरगीत विषयक सूरदास के काव्य-सौष्ठव का परिचय दिया गया है।

सूर : एक अध्ययन (**श्री शिखरचंद्र जैन**)—सूर-साहित्य के विद्यार्थी को साधारण ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है, किंतु इसमें सूर संबंधी आलोचना एवं अध्ययन की कोई महत्वपूर्ण सामग्री नहीं है।

सूर-साहित्य की भूमिका (**डा० रामरतन भटनागर और श्री वाचस्पति त्रिपाठी**)—दो विद्वान लेखकों ने इस आलोचनात्मक ग्रंथ की रचना की है। सूर संबंधी अन्य पुस्तकों की अपेक्षा इस पुस्तक में महत्वपूर्ण सामग्री अधिक परिमाण में उपलब्ध है। आरंभ में लेखकों ने सूरदास की जीवनी पर प्रकाश डाला है। बाह्य साक्ष्य के रूप में 'साहित्य-लहरी' के वंश-परिचय वाले पद और 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' पर विचार करते हुए उन्होंने चौरासी वार्ता को प्रामाणिक मान कर साहित्य-लहरी के उक्त पद को अविश्वसनीय माना है[1]। उन्होंने सूरदास को जन्मांध न मान कर वृद्धावस्था में उनके नेत्र-विहीन हो जाने का अनुमान किया है। उन्होंने सूरदास का जन्म संवत् १५४० और जन्म-स्थान ब्रज प्रदेश लिखा है[2], किंतु इसका निश्चित प्रमाण नहीं दिया है। उन्होंने श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण-संवत् १५७६ को सूरदास का शरण-काल बतलाया है[3], जो कि अनुसंधान से अप्रामाणिक सिद्ध हो गया है।

सूरदास के ग्रंथों का विवेचन करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है—

"केवल सूरसागर ही प्रामाणिक ग्रंथ हैं। अन्य ग्रंथ या तो उन्होंने लिखे ही नहीं, या ये सूरसागर के ही अंग हैं[4]।"

उन्होंने डा० धीरेन्द्र वर्मा के लेख के आधार पर भागवत और सूरसागर की विस्तार पूर्वक तुलना करते हुए, सूरसागर के अधिकांश भाग को भागवत के आंशिक अनुवाद के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने लीला-गायन विषयक पदों की अपेक्षा विनय के पदों को सूरदास की मौलिक रचना और सूरसागर का प्रधान भाग माना है। सूरसागर की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है—

---

१. सूर-साहित्य की भूमिका (द्वितीय संस्करण सं० २००२), पृ० ११
२. " " " पृ० १८
३ " " " पृ० १८
४ " " पृ० २२

"अंत में हमें यह कहना है कि सूरसागर के मौलिक और महत्वपूर्ण भाग प्रथम स्कंध के वे पद हैं, जो विनय के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा संपूर्ण दशम स्कंध पूर्वार्द्ध और अन्य स्कंधों में बिखरे हुए भक्ति, गुरु-महिमा आदि विषयों के पद हैं। वास्तव में ये ही अंश सूरसागर के प्रधान अंग कहे जा सकते हैं, जो मौलिकता, रसात्मकता और भक्ति भावना के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं[1] ।"

हम लेखक के इस मत से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। हम विनय आदि के पदों को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उन्हें सूरदास की सर्वोत्तम रचना और उन्हे सूरसागर के प्रधान अंग के रूप स्वीकार करने में असमर्थ हैं। सूरसागर और भागवत का क्या संबंध है, एवं सूरसागर के प्रधान अंग कौन से पद हैं, इस संबंध में हम अपने विचार आगामी पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

इस ग्रंथ में लेखकों ने अनेक विषयों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है, किंतु निर्णयात्मक प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव दिखलायी देता है। उन्होंने अधिकांश विषयों को संदिग्धता के पारावार में डूबते उतराते हुए छोड़ दिया है।

सूर : जीवनी और ग्रंथ (**डा० प्रेमनारायण टंडन**)—इस छोटी सी पुस्तिका में सूरदास के जीवन वृत्तांत और उनके ग्रंथों का विवरण दिया गया है। इसमें विद्यार्थियों के उपयोग के लिए सूर संबंधी पुरानी बातें एक स्थान पर संकलित कर दी गयी हैं। इससे सूरदास के संबंध में कोई महत्वपूर्ण बात ज्ञात नही होती है।

सूर–सौरभ (**डा० मुंशीराम शर्मा**)—यह पुस्तक दो भागों में समाप्त हुई है। सूरदास के संबंध में यह महत्वपूर्ण रचना हैं। इसके विद्वान लेखक ने सूर संबंधी अनेक विषयों पर मौलिक एवं क्रांतिकारी विचार प्रकट किये हैं। इस ग्रंथ के लेखक से हम लोगों का जिन बातों पर मतभेद है, उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। उनके मत का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) उन्होंने 'सारावली' और साहित्यलहरी' दोनो को सूरदास की रचनाएँ माना है और साहित्यलहरी के वंश-परिचय वाले पद को भी उन्होंने प्रामाणिक माना है। उक्त पद को प्रामाणिक मानते हुए भी वे सूरदास को भाट न मानकर ब्राह्मण मानते हैं[2] ।

---

१ सूर-साहित्य की भूमिका (द्वितीय संस्करण सं० २००२) पृष्ठ ४३

२ सूर सौरभ प्रथम भाग पृ० १३ ३२

(२) 'सारावली' के 'सरसठ बरस' वाले कथन के आधार पर वे सूरदास की ६७ वर्ष की आयु में उक्त ग्रंथ की रचना न मान कर उस आयु मे बल्लभाचार्य जी द्वारा दीक्षित होने की बात लिखते हैं[१] ।

(३) वे सूरदास के पिता का नाम रामदास और उसके मुसलमान हो जाने की कल्पना करते है[२] ।

(४) वे सुबल संवत् के कारण 'साहित्य लहरी' का रचना-काल सं० १६२७ और सरस संवत् के आधार पर सूरदास का जन्म सं० १५१५ मानते हैं[3] ।

(५) उनका मत है कि बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पहले सूरदास गृहस्थ थे । वे पहले शैव, तत्पश्चात् स्वामी हरिदास के शिष्य हुए थे[४] ।

(६) वे सं० १६२८ के पश्चात् सूरदास का जीवित रहना स्वीकार नही करते हैं[५] ।

सूरदास (**डा० ब्रजेश्वर वर्मा**)—यह ग्रंथ सूरदास पर लेखक की 'थीसिस' के रूप में लिखा गया है । डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार यह 'महाकवि सूरदास की जीवनी तथा काव्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है ।' यह ग्रंथ है भी बड़ा महत्वपूर्ण, किंतु हम इसकी अनेक बातो से पूर्णतया सहमत नहीं हैं । वे 'सूरदास की जाति और जन्मभूमि के विषय मे श्री हरिराय जी का विवरण निस्संकोच एवं निर्णयात्मक रूप में' स्वीकार नही करते हैं[६] । सूरदास और बल्लभाचार्य का समवयस्क होना असंभव मान कर उनको सूरदास की जन्म तिथि वैशाख शु० ५ सं० १५३५ संतोषजनक ज्ञात नहीं होती है[७] । उन्होंने 'सूरसागर' और 'सारावली' की रचना शैली में २७ अंतर स्थापित कर सारावली को सूरदास की रचना स्वीकार नहीं किया है[८] । वे 'साहित्य लहरी' को भी सूरदास की रचना नहीं मानते हैं[९] ।

---

१. सूर सौरभ, प््रथम भाग, पृ० ५, ५३
२. ,, ,, पृ० १३, ६४, द्वितीय भाग पृ० ३४
३. ,, ,, पृ० ८
४. ,, ,, पृ० ३८,३९,४०,४१,४४ द्वितीय भाग पृ० ४८
५. ,, ,, पृ० ६०
६. सूरदास, पृ० ३१
७. ,, पृ० ४४
८ पृ० ७५ ८३
९ , पृ० ९६

सूरदास : एक अध्ययन (श्री रामरतन भटनागर)—'सूर साहित्य की भूमिका' के पश्चात् भटनागर जी की सूर संबंधी यह दूसरी रचना भी महत्वपूर्ण है। इसे सूरदास का अध्ययन न कह कर 'सूरसागर' का अध्ययन कहना चाहिए, क्योंकि उसी के आधार पर सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्यांकन किया गया है। इसमें सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों की प्रामाणिकता की जाँच नहीं की गयी है। इसमें उन्होंने पुरानी बातों को दुहराते हुए तद्विषयक 'निर्णयात्मक खोज' न कर सकने का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है[१]।

अष्टछाप—परिचय (प्रभुदयाल मीतल)—इस ग्रंथ में अष्टछाप के आठों कवियों का आलोचनात्मक जीवन-वृत्तांत और उनके काव्य का संकलन किया गया है। अष्टछाप के मुकुटमणि होने के कारण इसमें सूरदास पर विशेष रूप से लिखा गया है। इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक की रचना होने के कारण इस पर कुछ कहने का हमको अधिकार नहीं है। यहाँ पर केवल यह बतलाना है कि इसमें उल्लिखित सूर संबंधी मत इस ग्रंथ के सर्वथा अनुकूल है।

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (डा० दीनदयाल गुप्त)—यह अपने विषय की अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोगी रचना है। इसे डा० गुप्त ने 'थीसिस' के रूप में कई वर्ष पहले लिखा था, किंतु यह पुस्तक के रूप में बाद में प्रकाशित हुई है। यह लेखक के प्रचुर परिश्रम और गंभीर अध्ययन का परिणाम है। वल्लभ संप्रदाय और वार्ता साहित्य की जिन रचनाओं के आधार पर हमने अपने निष्कर्ष निकाले हैं, उनमें से अधिकांश का उपयोग डा० गुप्त जी ने भी किया है; फिर भी कई विषयों में हमारा उनसे मतभेद है। हमने आगामी पृष्ठों में यथास्थान इस मतभेद का उल्लेख किया है। इस विशाल-काय ग्रंथ में सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया है और 'थीसिस' की निर्दिष्ट सीमाओं के कारण इसमें सूरदास के काव्य पर तो कुछ भी नहीं लिखा गया है। यह सब होने पर भी इसमें सूरदास संबंधी प्रचुर सामग्री का समावेश है। यहाँ पर कुछ ऐसी बातों पर प्रकाश डाला जाता है, जिनसे हमारा मतभेद है—

(१) उन्होंने वल्लभाचार्य जी की प्रथम यात्रा में विद्यानगर का शास्त्रार्थ और कनकाभिषेक होना लिखा है, जब कि ये दोनों कार्य उनकी तृतीय यात्रा में हुए थे[२]।

---

१ सूरदास एक अध्ययन पृ० २४७

२ अष्टछाप परिचय द्वितीय संस्करण पृ० ६

(२) उन्होंने वल्लभाचार्य जी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी का देहावसान सं० १५६५ में लिख कर उनके जीवन-काल में ही उनके एक मात्र पुत्र पुरुषोत्तम जी के देहावसान का उल्लेख किया है[1], जब कि गोपीनाथ जी का निधन-संवत् १५९९ है और पुरुषोत्तम जी का देहावसान अपने पिता के पश्चात् सं० १६०६ में हुआ था[2]।

(३) श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश को प्रामाणिक मान कर भी वे सूरदास को जन्मांध स्वीकार नहीं करते हैं। उनका मत है कि सूरदास के "जन्मांध होने के प्रमाण उनकी रचनाओं में नहीं मिलते[3]।" सूरदास के काव्य-कौशल के कारण अन्य लेखकों ने उनकी वृद्धावस्था में नेत्र विहीन होने का अनुमान किया है, किंतु इस ग्रंथ में वे उनकी बाल्यावस्था में ही अंधे होने की कल्पना करते हैं[4]।

महाकवि सूरदास (**श्री नंददुलारे वाजपेयी**)—इस ग्रंथ में सूरदास की जीवनी, भक्ति-भावना और उनके काव्य की संक्षिप्त विवेचना की गई है। इसकी रचना विद्यार्थियों के उपयोग की दृष्टि से हुई है। जीवनी विषयक परिच्छेद में प्रायः सूर-निर्णय के मत का समर्थन किया गया है।

भारतीय साधना और सूर-साहित्य (**डा० मुंशीराम शर्मा**) - यह ग्रंथ डा० शर्मा जी के शोध-प्रबंध के रूप में लिखा गया है। इसमें भारतीय साधना की पृष्ठभूमि में सूरदास के काव्य और उसमें वर्णित उनकी भक्ति-भावना का गंभीर विवेचन किया गया गया है। इसके अंतिम परिशिष्ट मे 'सूर संबंधी साहित्य' का संक्षिप्त परिचय देते हुए हमारे 'अष्टछाप-परिचय' और 'सूर-निर्णय' ग्रंथों में व्यक्त मत की भी आलोचना की गई है। हमने अपने ग्रंथों में 'सूर-सौरभ'-कार के जिन विचारो से मतभेद प्रकट किया है, उन्ही का समर्थन पुनः डा० शर्मा जी ने किया है।

सूर और उनका साहित्य (**डा० हरबंशलाल शर्मा**)—इस शोध-प्रबंध में सूर और उनके साहित्य का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ के ११ अध्याय और २ परिशिष्टों में सूरदास संबंधी सभी विषयों का

---

१. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ७५

२. अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृ० २०, २१, २३

३. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० ८२

४. " पृ० २०२

समावेश हो गया है। इसके प्रथम अध्याय में सूरदास के जीवन-चरित्र की वही सामग्री स्वीकार की गई है, जिसका उल्लेख इस ग्रंथ में हुआ है। उनके निष्कर्ष भी प्रायः इस ग्रंथ के अनुसार ही हैं।

सूर की काव्य-कला (डा० मनमोहन गौतम)—यह ग्रंथ सूर-काव्य के शोधपूर्ण अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह अपने विषय की सर्वांगपूर्ण रचना है, जिसमें सूर-काव्य का प्रथम बार इतना विशद विवेचन हुआ है। इसमें भी सूरसागर, सारावली और साहित्य-लहरी सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ मानी गई हैं; अतः यह ग्रंथ हमारे मतानुकूल है।

सूर की भाषा (डा० प्रेमनारायण टंडन)—इस शोध-प्रबंध में सूरदास की भाषा का प्रथम बार वैज्ञानिक अध्ययन उपस्थित किया गया है; अतः यह अपने विषय की महत्वपूर्ण रचना है। सूरदास की भाषा के उदाहरण प्रायः सूरसागर से लिये गये हैं; किंतु सारावली और साहित्य-लहरी का भी आवश्यकतानुसार उपयोग किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में सारावली और साहित्य-लहरी की प्रामाणिकता को पूर्णतया अस्वीकार नहीं किया गया; चाहे लेखक का मत इनके संबंध में कुछ और ही हो।

सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (डा० शिवप्रसाद सिंह)—इस शोध-प्रबंध में सूर संबंधी एक अछूते, किंतु आवश्यक विषय का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके जाने बिना अब तक सूरदास की भाषा और उनके साहित्य की परंपरा समझने में बड़ी उलझन मालूम होती थी। यद्यपि वह उलझन अभी तक पूरी तरह सुलझी नहीं है, क्यों कि सूर पूर्व काल की यथेष्ट सामग्री अब भी अनुपलब्ध है; फिर भी इस ग्रंथ से उस दिशा में समुचित मार्ग-प्रदर्शन हुआ है।

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त सूर विषयक और भी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनसे जाना जा सकता है कि अब तक सूरदास संबंधी अध्ययन कितना आगे बढ़ चुका है। इसे उत्तरोत्तर बढ़ाने के लिए अब सामग्री का अभाव नहीं रहेगा।

द्वितीय परिच्छेद

चरित्र-निर्णय

नाम —

सूरदास की प्रचलित और प्रसिद्ध रचनाओं में उनके पाँच नाम मिलते हैं—सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम । इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं सूरसुजान, सूरसरस, सूरजश्याम और सूरजश्याम सुजान नाम भी मिलते हैं । यहाँ पर यह विचारणीय है कि ये सभी नाम एक हीं व्यक्ति के हैं, अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के । डा० जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रंथ 'सूरदास' में सूरज, सूरजदास और सूरश्याम के नाम से मिलने वाले पदों को प्रक्षित बतलाया है । इसका यह अभिप्राय है ये नाम सूरदास से अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के हैं । उन्होंने अपने उक्त मत के समर्थन में कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं दिया है[1] । डा० दीनदयाल गुप्त इस मत के विरुद्ध उपर्युक्त नामों को सूरदास के ही नाम मानते हैं । उनका कथन है कि—

"उक्त छाप के पद बल्लभ-संप्रदायी प्राचीन संग्रहालयों में भी उपलब्ध होते हैं और उन पदों में सूर के सांप्रदायिक विचारों की छाप है[2] ।"

डा० मुंशीराम शर्मा ने इन नामों पर विस्तार पूर्वक विचार किया है । उनका मत है कि ये सभी नाम महाकवि सूरदास के ही हैं। इनका मत है—

"पद-रचना में जहाँ जैसा उपयुक्त जान पड़ा और पद के अनुकूल बैठ गया, वहाँ वैसा ही नाम उन्होंने प्रयुक्त कर दिया है । सुजान, सरस आदि शब्द भी भाव भरित उमंग की लपेट में इसी प्रकार प्रयुक्त हो गये हैं । जो लीला ही सरस हो और सुजान श्याम से संबंध रखने वाली हो, उसमें ऐसे शब्दों का आ जाना स्वाभाविक है[3] ।"

डा० शर्मा जी ने 'सूरसागर' और 'साहित्य-लहरी' के ऐसे पदों को उद्धृत किया है, जिनकी टेक एक सी है, किंतु उनमें नाम भिन्न-भिन्न हैं । इससे उन्होंने यह अनुमान किया है—

---

१. सूरदास, पृष्ठ ७

२. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ १९६

३. सूरसौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५०

"सूर के पद विभिन्न गायकों के हाथों में पड़ कर अपने मूल रूप से कुछ भिन्न भी हो गये हैं । संभव है इन गायकों ने अपनी रुचि के अनुकूल उनमें सूर के प्रसिद्ध उपनामों में से कहीं सूर, कहीं सूरदास, कहीं सूरश्याम और कहीं सूरसुजान उपनाम रख दिये हों। पद की पंक्ति को थोड़ा इधर-उधर कर देने से ये सभी उपनाम उसमें खप जाते हैं। इसके अतिरिक्त सूरसागर में कई स्थलों पर एक क्रमबद्ध प्रसंग के ही भीतर सूर, सूरज, सूरश्याम आदि उपनाम के पद आते हैं, जैसे दशमस्कंध के पृष्ठ २०६ पर 'यज्ञपत्नी' शीर्षक कथानक में[१] ।"

भाषा और भावों के साम्य के कारण हम भी इन सभी छाप वाले पदों को एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि उनका मूल नाम क्या था? साहित्य-लहरी के पूर्वोक्त पद से ज्ञात होता है कि उनका मूल नाम सूरजचंद था । फिर भगवान श्रीकृष्ण ने उनका नाम सूरजदास एवं सूर रखा[२] । साहित्य-लहरी के इस पद की अप्रामाणिकता के कारण इसका कथन पूर्णतया माननीय नहीं है, फिर भी इससे सूरदास के इन नामों की एकता तो सिद्ध होती ही है। हमारा अनुमान है कि उनका नाम 'सूरज' था। सूरज का लघु रूप सूर है। फिर वैष्णवता के कारण सूरज, सूरजदास अथवा सूरश्याम नाम पड़ गये। सूरजचंद नाम का कहीं पर भी प्रयोग नहीं हुआ है, इसलिए भी साहित्य-लहरी का कथन उचित ज्ञात नहीं होता है।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी, गोकुलनाथ जी एवं अष्टसखाओं के समकालीन वृंदाबन निवासी प्राणनाथ कवि ने स्वरचित 'अष्टसखामृत' में लिखा है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सोहीं सर जल-जात ।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात ॥
कहा बड़ाई कर सकै, जाको प्रकट प्रकास ।
श्री बल्लभ के लाड़िले, कहियत सूरजदास ॥

---

१. सूरसौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५१, ५२
२. भयौ सातौ नाम सूरजचंद मंद निकाम ॥
× × ×
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुस्याम ॥
साहित्य लहरी' पद सं० ११८

इससे ज्ञात होता है कि उनका नाम सूरजदास था, किंतु लोक में वे सूर के नाम से विख्यात हुए। उनकी रचनाओं में उनके मुख्य नाम ५ मिलते हैं— सूरज, सूरजदास, सूर, सूरदास और सूरश्याम; किंतु लोक में और उनकी कविताओं में सूर अथवा सूरदास नाम ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका कारण हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश में इस प्रकार बतलाया है—

"श्री आचार्य जी आप तो 'सूर' कहते। जैसे सूर होय सो रण में सों पाछौ पाँव नाँहि देय, जो सबसों आगे चले। तैसेई सूरदास जी की भक्ति दिन-दिन चढ़ती दिसा भई। तासों श्री आचार्य जी आप 'सूर' कहते।

और श्री गोसाईं जी आप 'सूरदास' कहते। सो दास भाव में कबहू घटे नाँही। ज्यों ज्यों अनुभव अधिक भयौ, त्यों त्यों सूरदास जी को दीनता अधिक भई। सो सूरदास जी कों कबहूँ अहंकार मद नाँही भयो। सो 'सूरदास जी' इनको नाम कहे।"

उक्त उद्धरणों से ज्ञात होगा कि श्री बल्लभाचार्य जी और गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा सूर एवं सूरदास नामों से संबोधन किये जाने से उनके ये दोनों नाम ही लोक में अधिक प्रसिद्ध हो गये। सूरदास ने भी अपनी रचनाओं मे इन्हीं दोनों नामों का विशेष प्रयोग किया है।

जन्म भूमि और निवास स्थान—

'साहित्य-लहरी' के वंश-परिचय वाले पद में सूरदास के पिता का निवास स्थान आगरा के निकटवर्ती 'गोपाचल' लिखा गया है[1]। किंतु इससे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि सूरदास का जन्म स्थान भी वही था। सूरदास की रचनाओं की भाषा और परंपरागत जन श्रुतियों के आधार पर कुछ विद्वान उनका जन्म स्थान ब्रज प्रदेश में मानते हैं। उनकी मान्यता का आधार मियाँसिंह कृत 'भक्त-विनोद' का निम्न लिखित कथन भी हो सकता है—

"मथुरा प्रांत विप्रवर गेहा। भो उत्पन्न भक्त हरि नेहा॥"

मूल चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पहले सूरदास आगरा-मथुरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते थे उक्त वार्ता में भी को उनका ज म स्थान नहीं

गया है। श्री मुंशीराम शर्मा साहित्य-लहरी के 'गोपाचल' को चौरासी वार्ता का 'गऊघाट' मानते हैं[1]। उनका कथन अनुमान और नाम-साम्य पर आधारित है। इसके अतिरिक्त साहित्य-लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण गोपाचल को महत्व नहीं दिया जा सकता। हिंदी के कुछ माननीय इतिहासकारों ने भ्रम वश रुनकता को सूरदास का जन्म स्थान लिख दिया था। रुनकता वार्ता में उल्लिखित गऊघाट के निकट स्थित है, इसीलिए शायद उक्त विद्वानों को भ्रम हो गया था, किंतु उन्होंने अपनी रचनाओं के नवीन संस्करणों में उसे दूर कर दिया है[2]। हमारे विचार से गोपाचल, रुनकता और गउघाट को सूरदास के जन्म स्थान मानने का तो कोई प्रमाण मिलता ही नहीं है, मथुरा प्रांत अथवा ब्रजमंडल के किसी स्थान को भी किसी प्रामाणिक सूत्र के अभाव में उनका जन्म स्थान नहीं माना जा सकता।

श्री हरिराय जी ने चौरासी वार्ता के भावप्रकाश में सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती 'सीहीं' नामक ग्राम बतलाया है। डा० राधाकृष्णदास ने सीहीं को मथुरा प्रांत के अंतर्गत लिखा था, किंतु उनका यह कथन भ्रमात्मक है। हरिराय जी ने सीहीं की स्थिति बतलाते हुए कहा है—

"दिल्ली के पास चार कोस उरे में एक सीहीं ग्राम है, जहाँ परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सर्प यज्ञ कियो है[3]।

हरिराय जी के इस कथन की पुष्टि उनके पूर्वज गोसाईं विट्ठलनाथ जी एवं गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि के निम्नलिखित कथन से भी होती है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीहीं सर जल-जात।
सारसुती-दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात[4]॥

ऐसी दशा में हम सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती सीहीं नामक ग्राम को मानने के लिए विवश हैं। हिंदी के माननीय इतिहासकार भी अब इसी मत को प्रामाणिक मानने लगे हैं[5]।

---

१. सूर-सौरभ, प्रथम भाग, पृ० १८, १९
२. डा० श्यामसुंदरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के नवीन संस्करण।
३. 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में 'अष्टसखान की वार्ता' पृ० २
४ अष्टसखामृत।
५ डा० श्यामसुंदरदास कृत हिंदी साहित्य' चतुर्थ संस्करण पृ० १८५

हरिराय जी के कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी छै वर्ष की आयु तक सीहीं ग्राम में रहे। इसके उपरांत वे अपने माता-पिता से अलग होकर सीहीं से चार कोस दूर एक स्थान पर तालाब के किनारे रहने लगे। वहाँ पर वे अपनी अठारह वर्ष की आयु तक रहे थे। उस समय उनको संसार मे वैराग्य हो गया था। वे सब कुछ वहीं पर छोड़ कर व्रज की ओर चल दिये और मथुरा होते हुए गऊघाट पर आकर रहने लगे। वहि:साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वे वहाँ पर अपनी इकत्तीस वर्ष की आयु तक रहे। इसके उपरांत श्री बल्लभाचार्य जी के सेवक होकर वे उनके साथ गोवर्धन चले गये। वहाँ पर वे अपनी अंतिम अवस्था तक रहे थे। वार्ता से यह भी ज्ञात होताहै कि वे कभी-कभी मथुरा और गोकुल जाते थे, किंतु वे कभी व्रज से बाहर किसी अन्य स्थान को भी गये, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यही अनुमान होता है कि व्रज में आने के पश्चात् वे फिर जीवन पर्यंत वहीं पर रहे। वार्ता से ज्ञात होता है कि वे एक बार अकबर बादशाह से मिले थे, किंतु यह भेंट भी मथुरा में ही हुई थी।

भगवान् श्री कृष्ण की रास-स्थली होने के कारण गोबर्धन के निकटवर्ती परासौली ग्राम के प्रति उनका आकर्षण था। इसी कारण वे वहाँ पर रहते थे। उनका देहावसान भी परासौली में ही हुआ। इस स्थान पर उनकी कुटी अभी तक बनी हुई है।

जन्म तिथि—

पुष्टि संप्रदाय में परंपरा से यह मान्यता चली आ रही है कि सूरदास श्री बल्लभाचार्य जी से आयु में दस दिन छोटे थे। आचार्य जी का जन्म दिवस सं० १५३५ की वैशाख कृ० १० उपरांत ११ रविवार निश्चित है, अतः सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५[1] मंगलवार हुई। इस तिथि का उल्लेख अन्य प्रमाणों से भी प्राप्त होता है।

श्री वल्लभाचार्य जी के वंशज श्री गोपिकालंकार 'मट्टू जी महाराज' काव्योपनाम 'रसिकदास' ने सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख निम्न लिखित पद में किया है। मट्टू जी महाराज का जन्म गोबर्धन-जतीपुरा में सं० १८७६ हुआ था। उक्त पद का आरंभिक अंश इस प्रकार है—

प्रगटे भक्त सिरोमनिराय।
माधव सुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ[1] अधिक सुखदाय॥

उपर्युक्त कथन की पुष्टि मट्टू जी महाराज के पूर्ववर्ती श्री द्वारकेश जी (जन्म सं० १७५१) भावना वालों द्वारा रचित 'भाव संग्रह' के निम्न उद्धरण से इस प्रकार होती है—

"सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन त दस दिन छोटे हते।"

उपर्युक्त उद्धरण से भी प्राचीन प्रमाण 'निज वार्ता' का है। इसमें गोसाईं श्री गोकुलनाथ जी (जन्म सं० १६०८) ने सूरदास की जन्म तिथि के विषय में इस प्रकार कथन किया है—

"सो सूरदास जी जब श्री आचार्य जी महाप्रभु को प्रागट्य भयौ है, तब इनको जन्म भयौ है। सो आचार्य जी सों ये दिन दस छोटे हते।'

ऐसी प्रसिद्धि है कि श्री हरिराय जी ने भी अपने वचनामृतों मे सूरदास को आचार्य श्री महाप्रभु से दस दिन छोटे होने का उल्लेख किया है। इसकी पुष्टि हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती धौल की निम्न पंक्ति से भी होती है—

"आ तारा थी ए दिवस दस महान जो[2]।"

यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि जब गो० गोकुलनाथ जी कृत 'निज वार्ता' में सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख है, तो उनके द्वारा कथित 'चौरासी वार्ता में और हरिराय जी कृत चौरासी वार्ता के भावप्रकाश मे सूरदास की जन्म-तिथि का उल्लेख क्यों नहीं हुआ है ? इसके समाधान के

---

१. सूरदास के जन्म की निश्चित घड़ी अज्ञात होने के कारण यह नही कहा जा सकता कि उनका जन्म पंचमी में हुआ था पंचमी उपरांत छट्ठ में, अत: उदयात पंचमी मानना ही अधिक समीचीन है।

२ यह समस्त धौल बहिसाक्ष्य पृ० ३१ ५२ दिया जा चुका है।

लिए उक्त महानुभावों की रचना-शैली के अध्ययन की आवश्यकता है। गो० गोकुलनाथ जी और श्री हरिराय जी के ग्रंथों का सुचारु रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे दोनों महानुभाव जिस बात को किसी एक ग्रंथ मे कहते थे, उसको यथा साध्य दूसरे में दुहराते नहीं थे। इसके साथ ही तिथि-सवत् आदि पर तो वे बहुत ही कम ध्यान देते थे। उदाहरण के लिए दो-एक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। गो० गोकुलनाथ जी ने 'श्री आचार्य महाप्रभु जी की प्रागट्य वार्ता' में आचार्य जी के प्राकट्य-संवत् का कथन किया है[1]; किंतु उन्होंने 'निज वार्ता' में महाप्रभु जी के प्राकट्य-वृत्तांत का कथन करते हुए भी उनका प्राकट्य संवत् नहीं बतलाया है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु जी की 'निज वार्ता' में गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकट्य-संवत् का कथन होने से स्वयं गोस्वामी जी की 'निज वार्ता' में उसका उल्लेख नहीं किया गया है। इसी प्रकार श्री हरिराय जी के वचनामृतों में सूरदास के दस दिन छोटे होने का कथन होने से 'चौरासी वार्ता' एवं भावप्रकाश में इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी होगी।

बल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के इतिहास की संगति से 'सूरसारावली' का रचनाकाल सं० १६०२ स्पष्ट होता है। उस समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की थी। १६०२ में से ६७ कम कर देने से १५३५ रहते हैं, अत अतःसाक्ष्य से भी सूरदास का जन्म संवत् १५३५ ही सिद्ध होता है।

डा० दीनदयाल गुप्त ने इस संबंध में खोज करते हुए अपना नाथद्वारे का अनुभव इस प्रकार लिखा है—

"श्रीनाथद्वारे में सूरदास जी का जन्मोत्सव श्री बल्लभाचार्य जी के जन्म दिन बैसाख बदी ११ के बाद बैसाख सुदी ५ को मनाया जाता है। सूर के इस जन्म दिवस को मनाने का उत्सव संप्रदाय में नया नहीं है, यह परंपरा बहुत प्राचीन है[2]।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५, मंगलवार सिद्ध होती है। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान मिश्र-बंधुओं ने सूरदास का आनुमानिक जन्म संवत् १५४० लिखा था, जिसका अनुकरण हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने किया है। अब इस आनुमानिक मत के संशोधन की आवश्यकता है।

---

१ पृष्ठ सं० १७

२ अष्टछाप और बल्लभ पृ० २१२

वंश-परिचय—

साहित्य-लहरी के तथा-कथित वंश-परंपरा वाले पद के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन से सूरदास का वंश-परिचय प्राप्त नहीं होता है। सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य और मूल चौरासी वार्ता से भी इस पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है। नाभा जी एवं प्रियादास ने क्रमशः 'भक्तमाल' और उसकी टीका में अनेक भक्त कवियों के जीवन-वृत्तांत का कथन किया है, किंतु सूरदास के वंश के संबंध में वे भी मौन हैं। नाभा जी ने सूरदास के कवित्व और उनकी भक्ति की प्रशंसा की है, किंतु जीवन-वृत्तांत पर उन्होंने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। साहित्य-लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण उसमें दिया हुआ वंश-परिचय भी अप्रामाणिक है, अतः उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

ऐसी दशा में सूरदास की वंश-परंपरा जानने का कोई साधन नहीं है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी बाल्यावस्था में ही घर से निकल पड़े थे और फिर जीवन भर विरक्त रहे। वे स्वयं अपने भौतिक जीवन के प्रति उदासीन थे, अतः इस संबंध में उन्होंने कभी कुछ प्रकट नहीं किया। उनके समकालीन तथा परवर्ती व्यक्तियों को भी इस संबंध में जानने का कोई साधन नहीं रहा; अतः यह विषय अभी तक अज्ञानांधकार के आवरण से ढका हुआ है। संभवतः भविष्य में भी इस पर प्रकाश न पड़ सके।

श्री हरिराय जी ने वार्ताओं पर भावप्रकाश लिखते हुए अनेक भक्तों के जीवन-वृत्तांत प्रकट करने की भी चेष्टा की है; किंतु उन्होंने सूरदास का वंश-परिचय विस्तार पूर्वक नहीं लिखा है। यदि साहित्य-लहरी में स्वयं सूरदास द्वारा कथित वंश-परिचय होता, तो हरिराय जी उसका अवश्य उपयोग करते। उक्त पद की अप्रामाणिकता का यह भी एक कारण है, जैसा पहले लिखा जा चुका है।

श्री हरिराय जी के भावप्रकाश से केवल इतना ज्ञात होता है कि सूरदास का पिता एक अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण था। उसके चार पुत्रों में से सबसे छोटे सूरदास थे। हरिराय जी ने सूरदास के पिता का नामोल्लेख नहीं किया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि साहित्य-लहरी के जिस पद में सूरदास के तथा-कथित पूर्वजों के नाम लिखे गये हैं, उसमें भी उनके पिता का नाम नहीं दिया गया है। उक्त पद और उसमें दी हुई वंशावली की प्रामाणिकता में विश्वास करने वाले श्री मुंशीराम जी शर्मा इसका कारण यह बतलाते हैं कि सूरदास का पिता अपने छः महा पुत्रों को

की युद्धाग्नि में झोंक कर भी आप मुसलमान हो गया था । संभवतः वह इच्छा से नहीं, बलात् मुसलमान बना लिया गया था । उसका यह कृत्य सूरदास को लज्जाजनक ज्ञात होता था, अतः उन्होंने उसका नाम देना भी उचित नहीं समझा* ।

अकबर के सुप्रसिद्ध दरबारी अबुलफ़ज़ल ने 'आईन-ए-अकबरी' में अकबरी दरबार के संगीतज्ञों के नाम लिखे हैं । उनमें ग्वालियर निवासी बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास का भी नामोल्लेख किया गया है । अलबदाउनी ने 'मुतखिब-उल-तवारीख़' में लिखा है, रामदास सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन के समान ही विख्यात कलाकार था, जो ख़ानख़ाना और अकबर से प्रचुर धन प्राप्त करता था ।

अबुलफ़ज़ल और अलबदाउनी के रामदास और उसके पुत्र सूरदास को डा० ग्रियर्सन ने भ्रमवश अष्टछापी सूरदास और उनका पिता समझ लिया था । यह भूल बाद के कई लेखकों ने भी की है । अकबर सं० १६१२ में गद्दी पर बैठा था । आरंभिक ८–१० वर्ष उसे अपने शासन को सुदृढ बनाने में लगे थे । उसके दरबार में कलाकारों का सन्मान इसके बाद ही संभव था । तानसेन भी अकबर के दरबार में सं० १६१९ में आया था । उस समय स्वयं सूरदास की आयु प्रायः ८५ वर्ष की थी । यदि रामदास को सूरदास का पिता मान लिया जाय, तो उस अवस्था के अति वृद्ध पुरुष का अकबरी दरबार में पहुँचना और तानसेन के समान आदर पाना कैसे संभव हो सकता है ! फिर उस रामदास के पुत्र सूरदास को भी अकबरी दरबार का नियमित गायक बतलाया गया है । हमारे सूरदास की एक बार अकबर से भेट अवश्य हुई थी, किंतु उनका अकबरी दरबार से कतई संबंध नहीं था । अकबर से भेंट होने पर भी उन्होंने उससे पुनः मिलने की अनिच्छा प्रकट की थी । सूरदास जैसे विरक्त और सर्वस्व-त्यागी महानुभाव का अकबरी दरबार से संबंध हो भी कैसे सकता था ! यही कारण है कि सूरदास के पिता को रामदास बतला कर उसे अकबरी दरबार का गायक मानना एक दम भ्रमात्मक कथन है ।

श्री मुंशीराम शर्मा अकबर के गायक रामदास को अष्टछापी सूरदास का पिता न मानते हुए भी उनके पिता का नाम रामदास ही मानने का आग्रह करते हैं । उन्होंने लिखा है—

* सूर सौरभ प्रथम भाग पृ० १६

"पं० नानूराम भट्ट से प्राप्त हुई वंशावली के आधार पर महामहोपाध्याय पंडित हरिप्रसाद जी शास्त्री ने सूर के पिता का नाम रामचंद्र लिखा है, जो वैष्णव भक्ति के अनुसार रामदास बन जाता है।...सूर के पिता का नाम भी यही था*।"

पं० नानूराम भट्ट की वंशावली और महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसाद जी शास्त्री का मत भी साहित्य-लहरी की वंशावली और डा० ग्रियर्सन के मत के समान अप्रामाणिक एवं भ्रमात्मक है, अतः उनके कथन को भी प्रमाण कोटि मे नहीं लिया जा सकता। ऐसी दशा में सूरदास के पिता का भी नाम निश्चय करने का कोई साधन नहीं है।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है कि सूरदास का प्रामाणिक वंश-परिचय प्राप्त नहीं है। वे एक दरिद्र ब्राह्मण के पुत्र थे तथा उनके तीन भाई और थे। इसके अतिरिक्त कोई अन्य बात ज्ञात नहीं है। उनकी वंश-परंपरा, उनके पूर्वजों के नाम, यहाँ तक कि उनके पिता एवं भाइयों के नाम भी अज्ञात हैं।

जाति—

सूरदास की जाति के विषय में कई मत प्राप्त हैं। इन मत-दाताओं में से कतिपय उनको भाट, ढाढ़ी अथवा जाट जैसी निम्न जाति का मानते हैं, और सूरदास के पदों के अंतःसाक्ष्य से ही अपने-अपने मतों की पुष्टि भी करते हैं। यहाँ हम उनके मतों की समीक्षा द्वारा सूरदास की जाति का निर्णय करना चाहते हैं।

सूरदास के भाट जातीत होने की कल्पना साहित्य-लहरी के पूर्वोक्त पद के कारण की गई है। उक्त पद के 'प्रथ-जाग' के पाठांतर 'प्रथ-जगात' अथवा 'प्रथ-जगा ते' इस कल्पना के कारण हैं। जिन विद्वानों ने 'जगात' शब्द स्वीकार किया है, उन्होंने उसका अर्थ 'भाट' किया है, यद्यपि उसका वास्तविक अर्थ घाट का कर उगाहने वाला होता है। कुछ विद्वानों ने 'जगात' शब्द को गोत्र वाची मान कर सूरदास को प्रार्थज गोत्रोत्पन्न लिखा है। 'प्रथ-जगा' लिखने वाले तो स्पष्ट रूप से सूरदास को भाट मानते हैं। जिस पद के उक्त शब्दों के कारण सूरदास को भाट बतलाया जाता है, उसी के अंत में उनको

* सूर सौरभ प्रथम भाग, पृ० १५

ब्राह्मण भी लिखा गया है[१] । डा० रामकुमार वर्मा 'भाट' शब्दार्थ स्वीकार करते हुए भी पद के परस्पर विरुद्ध कथन के कारण उसकी प्रामाणिकता में संदेह करते हैं[२] । इस संदेह का निवारण श्री मुंशीराम शर्मा ने 'प्रथ जगात' अथवा 'प्रथ जगा तें' के स्थान पर 'प्रथ-जाग' पाठ उपस्थित कर एवं भाट को ब्राह्मण शब्द वाची लिख कर किया है[३] । उक्त तर्क से पद के परस्पर विरुद्ध कथन की शंका तो दूर हो जाती है, किंतु वह समस्त पद फिर भी प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है, जैसा गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है । कुछ भी हो 'प्रथ-जाग' पाठ के कारण अब सूरदास को भाट वंशीय मानने का तो कोई कारण नहीं है ।

साहित्य-लहरी के पद को निश्चित आधार न मानते हुए भी डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरदास के 'भाट' अथवा 'ब्रह्मभट्ट' होने की जनश्रुति भी उपस्थित की है—

"इस मत के पोषक सूरदास के 'ढाढ़ी वाले' पदों को भी अपने 'प्रमाणों' में सम्मिलित कर सकते हैं, यद्यपि अभी तक ऐसा किसी ने किया नहीं है[४] ।

सूरदास के आत्म निवेदनात्मक पदों में से अंतःसाक्ष्य निकाल कर कुछ विद्वान उन्हें सूरदास के जीवन-वृत्तांत के आधार रूप में उपस्थित करते हैं । ऐसे ही अंतःसाक्ष्यों से उनको 'ढाढ़ी' अथवा 'जाट' जाति का बतलाया जाता है । हमारा निवेदन है कि सूरदास के अंतःसाक्ष्यों को जीवन-चरित्र का आधार मानने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है । उनके आत्म निवेदनात्मक पदों का अधिकांश कथन माया-मोह से ग्रसित प्रायः समस्त सांसारिक जीवों के लिए है । उक्त कथनों का संबंध सर्वत्र स्वयं सूरदास से लगाना अत्यंत भ्रमात्मक है ।

सूरदास के ढाढ़ी वाले पदों की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१- हौं तो तिहारे घर कौ ढाढ़ी 'सूरदास' मेरौ नाउँ ।।
२. हँसि-हँसि दौरि मिले अंक भरि, हम-तुम एकै ज्ञाति ।।
३. हौं तौ तिहारे घर कौ ढाढ़ी, नाउँ सुनै सचु पाऊँ ।।

---

१. विप्र प्रथ के जाग कौ हौं, भाव भूरि निकाम ।
'सूर' है नँदनंद जू कौ, लियौ मोल गुलाम ।। —**साहित्य-लहरी**
२. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६१२
३. सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० ६, १३
४. सूरदास, पृ० ४६

यदि पूर्वोक्त उल्लेखों के कारण सूरदास को ढाढ़ी जाति का कहा जा सकत , तो फिर इस प्रकार के पदों के कारण अष्टछाप के अन्य कवियों को भ ढी जाति का माना जावेगा; यद्यपि उन कवियों की जातियाँ निश्चित है दाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ देखिये—

१. कृष्णदास बल्लभ कुल कौ ढाढ़ी, कीनों जनम सनाथ ।।

—कृष्णदास

२. हौं ढाढ़ी कबहुँ न अघाऊँ, यदपि नंद दातार ।।

—चतुर्भुजदास

३. 'नंददास' नंदराय कौ ढाढ़ी भयौ अजातिक ढोली ।।

—नंददास

ऐसे और भी कितने ही पद उपलब्ध हैं, जिनसे अन्य जातीय अष्टछाप व दूसरे कवियों को ढाढ़ी जाति का कहना होगा । इसके अतिरिक्त इन प े कारण महाप्रभु बल्लभाचार्य के शरण में आने के बाद भी सूरदास क गृहस्थ और सपत्नीक भी मानना होगा, जो कि हास्यास्पद है ।

निम्न लिखित पद में ढाढ़ी की स्त्री और गृहस्थ जीवन का स्पष्ट उल्लेख है

नंद जू दुःख गयौ, सुख आयौ, सबन कौं दियौ पुत्र-फल मानौं ।
तुम्हरौ पुत्र प्रान सबहिन कौ, भवन चतुरदस जानौं ।।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी, भाव सेन सज पाऊँ ।
गृह गोबरधन बास हमारौ, घर तजि अनत न जाऊँ ।।
ढाढ़िनि मेरी नाँचै गावै, हौं ही ढाढ़ी बजावौं ।
हमरौ चित्यौ भयौ तुम्हारैं, जो माँगौं सो पावौं ।।
अब तुम मोकौं करो अयाची, जो गृह गेह बिसारौं ।
द्वारे रहौं, देहु एक मंदिर, स्याम सरूप निहारौं ।।
हँसि ढाढ़िन ढाढ़ी सों बोली, अब तू बरनि बधाई ।
ऐसौ दियौ न देहैं 'सूर' कोउ, यसोमति हौं पहराई ।।

उपर्युक्त पद से सिद्ध है कि इसे सूरदास के जीवन-कथन की साम रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । बल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली ध्ययन से यह विषय भली भाँति स्पष्ट हो जाता है । इस संप्रदाय ाधाष्टमी के दिन ढाढी बनने की प्रथा महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के समय से चली आता है उस समय श्रीनाथ जी के कीर्तनिया को ढाढी बन

आना पड़ता है। सूरदास आदि अष्टछाप के कवि श्रीनाथ जी के कीर्तनकार होने के कारण ढाढ़ी बनते थे और तत्संबंधी पदों का गायन करते थे। यह प्रथा अब भी बल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में प्रचलित है। इन पदों के आधार पर सूरदास को ढाढ़ी कहना इतिहास की एक बहुत बड़ी भूल कही जायगी। जाट जाति सूचक पद "हरिजू हौं यातें दुख-पात्र" की प्रक्षिप्तता पूर्व सिद्ध की जा चुकी है, अतः इस मत को भी हम अप्रमाणिक मानते हैं।

उपर्युक्त अंत:साक्ष्यों के विरुद्ध ऐसे अंत:साक्ष्य भी मिलते हैं, जिनसे सूरदास के उच्च जातीय होने की सूचना मिलती है। निम्न लिखित पद्रो को देखिये—

मेरे जिय सु ऐसी आय बनी।
छाँड़ि गुपाल और जो जाँचौं, तौ लाजै जननी॥
कहा काँच कौ संग्रह कीजै, त्याग अमोल मनी।
बिष कौ मेरु कहा लै कीजै, अमृत एक कनी॥
मन-बच-क्रम सत भाउ कहत हौं, मेरे स्याम धनी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी भक्ति लगि, तजी जाति अपनी॥

अथवा—

बिकानी हरि-मुख की मुसकानि।
पर बस भई फिरत सँग निस-दिन, सहज परी यह बानि॥

+ + +

गई जाति, अभिमान, मोह, मद, पति हरिजन पहिचान।
'सूर' सिंधु सरिता मिलि, जैसे मनसा बुंद हिरानि[२]॥

उपर्युक्त पदों में से प्रथम पद में सूरदास ने भगवद्भक्ति के लिए और द्वितीय पद में 'हरि-मुख की मुसकानि' पर सर्वस्व अर्पित करते हुए अपनी जाति को भी त्याग देने की बात कही है। उच्च जाति का त्याग ही लोक में कथनीय हो सकता है, अन्यथा निम्न जाति के त्याग का क्या महत्व है? इन अंत:साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वे अवश्य उच्च जाति के थे। उच्च जातियों मे भी ब्राह्मण जाति का महत्व माना गया है, क्योंकि वही जाति उन दिनो आचार-विचार में संयम का विशेष रूप से पालन करती थी। इससे समझा

१. सूरसागर (बंबई सं० १९६४) पृष्ठ १७
२ सूरदास कृत हस्त लिखित पदों के निजी संग्रह से

जा सकता है कि सूरदास ब्राह्मण ही थे। इस मत की पुष्टि अनेक वाह्य साक्ष्यो से भी होती है, जिनमें सूरदास को स्पष्ट रूप से सारस्वत ब्राह्मण बतलाया गया है।

गोसाईं विट्ठलनाथजी के छठे पुत्र गो० यदुनाथजी (सं० १६१५ से १६६०) ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण बतलाते हुए लिखा है—

"ततोऽलर्कपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो ब्रजसमागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीतः[1]।"

गोसाईं विट्ठलनाथ जी के सेवक श्रीनाथ भट्ट ने सूरदास को प्राच्य ब्राह्मण लिखा है—

"जन्मांधो सूरदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः[2]।"

प्राच्य ब्राह्मण से श्रीनाथ भट्ट का अभिप्राय सारस्वत ब्राह्मण से है या नहीं, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है; किंतु उनके कथन से सूरदास का ब्राह्मण होना सिद्ध है।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी एवं गो० गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि ने स्पष्ट रूप से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़ले, सोहीं सर जलजात।
सारसुतो द्रुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात।।

श्री यदुनाथ जी निश्चय पूर्वक सूरदास के समकालीन थे, श्रीनाथ भट्ट गोसाईं जी के सेवक और प्राणनाथ गोकुलनाथ जी के समकालीन होने के कारण सूरदास के भी प्रायः समकालीन थे, अतः उनके कथन प्रामाणिक हैं।

श्री हरिरायजी ने तो स्पष्ट रूप से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है—

"अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण···तिनकी वार्ता", "सो सूरदास·····एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे[4]।"

---

१. वल्लभ दिग्विजय, पृ० ५०

२. संस्कृत वार्ता मणिमाला, श्लोक १

३- अष्टसखामृत

४ चौरासी की वार्ता मे अष्टसखान की वार्ता पृ० १, २

अब यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि गोकुलनाथ जी कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास की जाति का उल्लेख क्यों नहीं है, जब कि उसमें दिये हुए ८२ भक्तों में से कम से कम ७२ भक्तों की जातियों का उल्लेख शीर्षकों में ही किया गया है ? इसका उत्तर यह है कि सूरदास जी पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही अपनी जाति का त्याग कर चुके थे। वे बाल्यावस्था में घर से निकल आने और अंधे होने के कारण जाति-मर्यादा पालन करने मे असमर्थ थे। इसके अनंतर स्वामी होने की अवस्था में वे साधु-संतों में रहा करते थे, जहाँ जाति-पाँति का विचार नहीं होता है। साधु-मंडली के मत--"जाति-पाँति बूझै नहीं कोई। हरि कों भजै सो हरि का होई।" के अनुसार सूरदास भी जातीय कट्टरता के प्रति उदासीन थे।

पुष्टि मार्ग में भी सर्वोच्च श्रेणी के भक्तों के लिए जातीयता महत्वपूर्ण नहीं है। इस मार्ग में जातीयता तब तक ग्राह्य है, जब तक भक्त लोक-धर्म से परे नहीं हो जाते। सूरदास लोक-धर्म से परे ही नहीं थे, प्रत्युत् वे 'स्वयंप्रकाश' भी हो गये थे। वार्ताकार सूरदास की इस स्थिति से परिचित थे। संभव है इसीलिए उन्होंने सूरदास की जाति का कथन करना अनावश्यक समझा हो। वैसे निम्न जाति का होना पुष्टि संप्रदाय के भक्तों के लिए कोई आपत्तिजनक बात नहीं थी, इसलिए वार्ताकार द्वारा सूरदास की निम्न जाति को छिपाने की आवश्यकता भी नहीं थी। पुष्टि संप्रदाय के अनन्य भक्त, श्रीनाथ जी के मंदिर के अधिकारी और अष्टछाप के कवि कृष्णदास को वार्ता में स्पष्ट रूप से 'शूद्र' लिखा गया है; किंतु इसके कारण उनकी प्रतिष्ठा एवं भक्ति में कोई कमी नहीं समझी गयी।

इन सब कारणों से हम सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं।

अंधत्व—

सूरदास संबंधी समस्त जन-श्रुतियों में उनके अंधत्व की बात सब से अधिक प्रचलित है। परंपरागत मान्यताएँ ही नहीं, प्रत्युत् सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से भी उनका नेत्रविहीन होना सिद्ध है। लोक में भी 'सूर' और अंधत्व समान अर्थ वाची माने जाने के कारण 'सूरदास' शब्द अंधे के लिए रूढ़ सा हो गया है। अब मत भेद केवल इस विषय पर है कि वे जन्मांध थे, अथवा बाद में अंधे हुए थे।

हिंदी साहित्य के विद्वान सूरदास के काव्य की पूर्णता से प्रभावित होकर

साक्ष्य, परंपरागत मान्यता और सूरदास की रचनाओं के कतिपय अंतःसाक्ष्य से भी उनका जन्मांध होना प्रमाणित होता है।

सूरदास के काव्य में दृश्य जगत् के यथार्थ वर्णन हैं, उनके द्वारा प्रस्तुत रूपक, उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ इतनी स्वाभाविक हैं, और उनकी कविता में रंगों का ऐसा यथावत् कथन किया गया है, जो आधुनिक विद्वानों के मतानुसार आँखों से देखे बिना केवल सुनी हुई बातों के आधार पर होना असंभव है; इसीलिए वे उनको जन्मांध न मान कर बाद में वृद्धावस्था अथवा किसी अन्य कारण से उनके नेत्र-विहीन हो जाने का अनुमान करते हैं।

इस प्रकार के अनुमान करने में प्रायः सभी आधुनिक विद्वान एक-मत हैं, जैसा निम्न उद्धरणों से ज्ञात होगा—

"हमें तो इनके जन्मांध होने पर विश्वास नहीं होता। सूरदास ने अपनी कविता में ज्योति के, रंगों के और अनेकानेक हाव-भावों के ऐसे-ऐसे मनोरम वर्णन किये हैं तथा उपमाएँ ऐसी चुभती हुई दी हैं, जिनसे यह किसी प्रकार निश्चय नहीं होता कि कोई व्यक्ति बिना आँखों देखे, केवल श्रवण द्वारा प्राप्त ज्ञान से, ऐसा वर्णन कर सकता है[1]।"

"सूर वास्तव में जन्मांध नहीं थे, क्यों कि शृंगार तथा रंग-रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है, वैसा कोई जन्मांध नहीं कर सकता[2]।"

"प्राकृतिक दृश्य का अनुपम चित्र-चित्रण किसी प्रकार यह नहीं मानने देता कि वे जन्म से ही अंधे थे। मिल्टन की तरह अवस्था बढ़ने पर ही नेत्र-विहीन हो गये थे[3]।"

"सूरदास ने अपने काव्य में जिस प्रकार से ज्योति का, नाना प्रकार के वर्णों का तथा नाना हाव-भावों का वर्णन किया है और प्रकृति से जिस ढंग से नाना प्रकार की उपमाएँ कथन की हैं, वह चक्षुष्मान व्यक्ति के अतिरिक्त अंधे के द्वारा केवल श्रुति की सहायता से संगृहीत नहीं हो सकता।......संभवतः वह जन्मांध नहीं थे और पीछे वह अंधे हो गये थे, ऐसा अनुमान होता है[4]।"

---

१. मिश्रबंधु कृत 'हिंदी नवरत्न' पृ० २३०

२. डा० श्यामसुंदरदास कृत, 'हिंदी साहित्य', पृ० १८५

३. डा० बेनीप्रसाद कृत- 'संक्षिप्त सूरसागर'- पृ० ६

४ श्री नलिनीमोहन कृत सूरदास पृ० १०

"सूरदास की रचनाओं में प्रकृति का और मनुष्य के भावों के उतार-चढ़ाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देख कर यह कहने का साहस नहीं होता कि सूरदास ने बिना अपनी आँखों के देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है[१] ।"

"यदि सूरदास जी को जन्मांध माना जाए तो इस विचार और युक्ति के युग में भी हमें चमत्कारों पर विश्वास करना पड़ेगा[२] ।"

"जहाँ-जहाँ कवि ने नेत्रहीनता का उल्लेख अपने पदों में किया है, वहाँ-वहाँ अपनी वृद्धावस्था का भी उल्लेख किया है । इन सब बातों पर विचार करते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि सूरदास जन्मांध नहीं थे, परंतु प्रौढ़ावस्था पार करते-करते वे नेत्र विहीन हो गये[३] ।"

इस प्रकार उपर्युक्त सभी विद्वानों का अनुमान है कि सूरदास जन्मांध नहीं थे, प्रत्युत् अपनी वृद्धावस्था में नेत्र-विहीन हो गये थे । डा० दीनदयाल गुप्त भी सूरदास को जन्मांध नहीं मानते हैं; किंतु वे उनकी वृद्धावस्था में नहीं, बल्कि बाल्यावस्था में अंधे होने का अनुमान करते हैं[४] ।

सूरदास के जन्मांध होने के विरुद्ध आधुनिक विद्वानों की युक्तियाँ इतनी तर्क सम्मत हैं, कि उनको स्वीकार करने में हमको भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, किंतु हमारे मत से यह तर्क एवं युक्तियाँ सामान्य कवियों के लिए संगत हो सकती हैं । इस संबंध में हम श्री मुंशीराम शर्मा के निम्न मत का समर्थन कर सकते हैं—

"यह तो साधारण मनुष्यों की ही बात हुई । सूर जैसे उच्च कोटि के संत की तो बात ही निराली है । वे भगवद्भक्त थे । अघटित घटना घटा देने वाले प्रभु के सच्चे भक्त के सामने विश्व के निगूढ़ रहस्य भी अनवगत नहीं रहते । साधारण व्यक्ति जिस वस्तु को नेत्र रहते भी नहीं देख सकता, उसे क्रांतिदर्शी व्यक्ति एवं महात्मा अनायास देख लेते हैं[५] ।"

---

१. श्री नंददुलारे वाजपेयी कृत 'सूर संदर्भ', पृ० ३४

२. डा० ब्रजेश्वर वर्मा कृत 'सूरदास', पृ० ३१

३. भटनागर एवं त्रिपाठी कृत 'सूर-साहित्य की भूमिका', पृ० १२

४. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० २०२

५. सूर सौरभ प्रथम भाग, पृ० २४

सूरदास केवल परमोच्च श्रेणी के कवि, गायक और भक्त ही नहीं थे, प्रत्युत् वे ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले ब्रह्मविद् महात्मा थे । आर्य शास्त्रों के मतानुसार जो महानुभाव ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वे इन भौतिक चक्षुओं के आश्रित नहीं रहते हैं। परमात्मा की कृपा से उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है और वे 'स्वयं प्रकाश' हो जाते हैं । इस बात के समर्थन में निम्न लिखित श्रुति वाक्य द्रष्टव्य हैं—

'अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्ठादात्मापश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिण आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वामिति सवाएष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः सस्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारोऽभवति* ।'

(छांदो० उप०)

इसी बात को सूरदास ने इस प्रकार प्रकट किया है—

चरन कमल बंदौं हरिराइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कों सब कछु दरसाइ ॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहि पाइ ॥

अथवा—

हरि जू तुमतैं कहा न होइ ।
रंक सुदामा कियौ इंद्र सम, पांडव-हित कौरव दल खोइ ॥
पतित अजामिल, दासी कुबिजा, तिनहूँ के कलिमल सब धोइ ।
बोलै गूंग, पंगु गिरि लंघै, अरु आवै अंधा जग जोइ ॥
बालक मृतक जिवाय दिये द्विज, जो आये दरबारै होइ ।
'सूरदास' प्रभु इच्छा-पूरन, श्री गुपाल सुमिरत सब कोइ ॥

इन उल्लेखों से यह निश्चित होता है कि सिद्ध ज्ञानी भक्त लोग चाहें चक्षु-विहीन ही क्यों न हों, उस परात्पर ज्ञान के आश्रय से दृश्य एवं अदृश्य

---

* आत्मा का ही आदेश है, आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा पीछे है और आत्मा ही दक्षिण ओर है, आत्मा ही बाम भाग है और आत्मा ही सर्व है । इस प्रकार देखते, मानते और जानते हुए आत्मा के साथ रति करने वाला क्रीडा करने वाला और विनोद करने वाला आत्मानंद और स्वय प्रकाश होता है सब लोकों में वह कामनाएं पूर्ण करता है

जगत् के सभी पदार्थों एवं विषयों आदि का यथार्थ रूप से अनुभव करते रहते हैं। आर्य शास्त्रों के इस सिद्धांत के दृष्टांत शुक और संजयादि हैं।

श्री शुकाचार्य ने जन्म से ही गृह-त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन किया था, अतः उनको संसार के किसी भी पदार्थ एवं विषयादि का लेश मात्र भी अनुभव नहीं था। तथापि श्री भागवत में उन्होंने व्यास द्वारा सुने हुए रासादि लीला एवं अन्य विषयों का इस प्रकार कथन किया है, जैसा दूसरा सामान्य अनुभवी पुरुष भी वर्णन नहीं कर सकता है, और न कर सका है। इसी प्रकार ईश्वर प्रदत्त दृष्टि के कारण संजय रणक्षेत्र से कोसों दूर रह कर भी वहाँ का समस्त वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। यह आर्य शास्त्रों के आध्यात्मिक विज्ञान का परम उत्कर्ष है।

महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के मतानुसार ब्रह्मज्ञान निष्ठा हुई तब जानी जा सकती है, जब जीव 'सर्वज्ञ' हो जाय। इसी प्रकार 'पुष्टि-पुष्टि' भक्त भी सर्वज्ञ होते हैं*।

आचार्य जी के कथन का तात्पर्य यह है कि शुद्धाद्वैत ब्रह्मज्ञान निष्ठ जीव और पुष्टि-पुष्टि भक्त दोनों 'सर्वज्ञ' होते हैं। यहाँ 'सर्वज्ञ' का अर्थ केवल भूत भविष्य और वर्तमान को जानने वाला ही नहीं है, किंतु 'सर्व' रूप ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने वाला होता है, क्यों कि त्रिकाल ज्ञान तो ज्योतिष आदि एकांगी विद्याओं से भी प्राप्त हो सकता है।

आचार्य जी के मत से 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'पुरुष एवेदं सर्वं' आदि श्रुतियों के आधार पर यह सारा जगत् ब्रह्म रूप है, अतः ब्रह्म का वास्तविक बोध हो जाने पर इस जगत् का भी संपूर्णतः ज्ञान स्वयमेव हो जाता है। फिर उस ब्रह्मज्ञानी के लिए जगत् के किसी भी पदार्थ व विषय के अनुभव में किसी भी बाह्य इंद्रिय विशेष की अपेक्षा नहीं रहती है, क्यों कि वह 'स्वयंप्रकाश' हो जाता है।

सूरदास भी इसी प्रकार के ज्ञानी भक्त थे। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उनको तत्व और दशविध लीला प्रकारों द्वारा परब्रह्म श्री कृष्ण के स्वरूप का ज्ञान करा दिया था और इसी ज्ञान के कारण सूरदास ईश्वर की कृपा प्राप्त कर उसका [illegible] भी कर सके थे।

"श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ।
ता दिन तें यह लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ।।"

सूर-सारावली की इन पंक्तियों से उक्त बात की पुष्टि होती है। इसके समर्थन में सूरदास के "गुरु बिन ऐसी कौन करै" इत्यादि कई पद भी उपलब्ध होते हैं।

अतः हमें यह मानना होगा कि सूरदास महाप्रभु की कृपा से तत्वज्ञानी और आत्मा (ईश्वर) में रति करने वाले पूर्ण भक्त हो चुके थे। वे 'स्वयंप्रकाश' हो गये थे, अतएव वे बाह्य चक्षुओं के आश्रित नहीं थे। उन्होंने जो कुछ भी वर्णन किया है, वह अपनी आध्यात्मिक ज्ञान शक्ति के आधार पर ही किया है, अन्यथा उनके जैसा अनुभवपूर्ण वर्णन बाह्य चक्षु वाले अभक्त उत्तम कवियों ने आज तक भी नहीं किया है।

हमारे इस कथन की पुष्टि तब और भी विशेष रूप से होती है, जब हम वल्लभाचार्य जी की शरण आने से पूर्व उनके रचे हुए पदों का अध्ययन करते है। शरण आने से पूर्व उनके रचे हुए पदों में कहीं भी सृष्टि सौंदर्य की उपमा, उत्प्रेक्षा और रंग आदि का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। उनमें केवल सुने हुए पुराणादि के दृष्टांतो से ईश्वर का माहात्म्य और जीव की अज्ञानता तथाच अधमता का ही निरूपण विनय के साथ पाया जाता है। सृष्टि-सौंदर्य, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का जिसमें समावेश होता है, ऐसी भगवल्लीलाओं का वर्णन तो उन्होंने महाप्रभु से प्राप्त किये हुए ज्ञान—तत्व-दर्शन के अनंतर ही किया है। इस बात की पुष्टि पूर्व उद्धृत "ता दिन तें यह लीला गाई" वाली सूर-सारावली की पंक्ति से होती है। अतः यह मानना होगा कि सूरदास के पदों में प्राप्त उक्त रंग उपमा आदि का स्वाभाविक वर्णन उनके बाह्य चक्षुओं का विषय न होकर उनके आंतर अनुभव का था। इस बात का दृष्टांत सहित समर्थन सूरदास की वार्ता से इस प्रकार होता है—

'सो इनके हृदय में स्वरूपानंद कौ अनुभव है। तासों जैसौ तुम सिंगार करौगे सो तैसौ ही पद सूरदास जी वर्णन करिकें गावेंगे। तासों भगवदीय की परीक्षा नांहीं करनी।'

'सो सूरदास जी जगमोहन में बैठे हते। सो इनके हृदय में अनुभव भयौ[1]।'

---

१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) के अंतर्गत 'अष्टछाप की वार्ता' पृ० १७ १८

वार्ता के इस प्रसंग से सूरदास के हृदय में ब्रह्म-ज्ञान और पुष्टि-भक्ति के आश्रय से ही यथार्थ अनुभव होते रहने का निश्चय होता है। इस सिद्धांत के समर्थन में पूर्वोक्त श्रुति वाक्य दिया जा चुका है। नाभा जी ने भी सूरदास के संबंध में इसी प्रकार का कथन किया है[1]।

फिर भी यदि हम पाश्चात्य बुद्धिवाद—जड़वाद की शिक्षा के प्रभाव से आर्य शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञान के उत्कर्ष कोस्वीकार न करते हुए अपने पूर्व तर्क पर ही दृढ़ रहना चाहते हैं, तो हमें उस तर्क से उत्पन्न होने वाले इन प्रश्नो का समाधान भी समुचित रूप से करना होगा। तभी उस तर्क के आधार पर हम सूरदास का बाद में नेत्र विहीन होना सिद्ध कर सकते हैं। उक्त तर्क में उत्पन्न होने वाले प्रश्न ये हैं—

(१) सूरदास के पदों में प्राप्त वात्सल्य और शृंगार रसों के स्वाभाविक अनुभवपूर्ण वर्णनों को देखते हुए पूर्व तर्क के आधार पर ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूरदास उच्च राजकुटुंब के पूर्ण गृहस्थी और अनेक उत्तम रमणियो एव पुत्र आदि से भी युक्त थे, क्यों कि ऐसे उत्तम प्रकार के भुक्त भोगी हुए बिना पूर्व तर्क के अनुसार सूरदास के पदों में वात्सल्य और शृंगार की संयोग-वियोग, स्वकीय-परकीय हृदयवेधक भावनाओं का स्वाभाविक वर्णन होना सर्वथा असंभव ही माना जायगा।

(२) सूरदास के पदों में प्राप्त स्त्री-हृदय का स्वाभाविक तलस्पर्शी वात्सल्य और वेदनादि तत्वों के वर्णन पूर्व तर्क के अनुसार एक पुरुष हृदय मे पढ़ने, सुनने या देखने से नहीं हो सकता है, अतः उनके स्त्री हृदय की संगति भी हमें ढूँढनी होगी।

संभव है कुछ लोग इन प्रश्नों का समाधान बिल्वमंगल के चिंतामणि वेश्या वाले तथाच नेत्र फोडने वाले चरित्रों को इन सूरदास के चरित्रो मे जोड कर करना चाहें! किंतु उनका यह आधार हीन प्रयास 'भक्तमाल' के विरुद्ध होने से भी प्रामाणिक नहीं कहा जायगा, क्यों कि 'भक्तमाल' में दोनों सूरदासों का भिन्न-भिन्न वर्णन प्राप्त है।

फिर भी क्षण भर के लिए बिल्वमंगल सूरदास के चरित्रों को इन सूरदास के चरित्रो में जोड़ कर उन्हे भुक्त भोगी सिद्ध भी किया जाय तब भी सूरदास

मे प्राप्त स्त्री हृदय की संगति के लिए हमारे पास कोई प्रामाणिक तर्क या आधार प्राप्त नहीं है। अतः सूरदास को पीछे से अंध हुए सिद्ध करने में जो तर्क उठाया गया है, वह सूरदास के विषय में अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण ही कहा जायगा।

पूर्वोक्त दोनों आवश्यक प्रश्नों का समाधान सूरदास को सिद्ध ज्ञानी भक्त मानने से इस प्रकार स्वतः हो जाता है—

श्रुतियों के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप "सर्व रसमय" है[१], अतः सिद्ध भक्त को उसके बोध से काव्य शास्त्रोक्त दसों रसों का अनुभव हो जाता है। इस बात की पुष्टि सूरदास के पदों में प्राप्त दसविध रसों के वर्णनों से भी होती है।

अन्य प्रकार से भी, परब्रह्म श्री कृष्ण में दसों रस विद्यमान थे[२], और वे सूरदास के परम इष्ट थे। अतः उनके साक्षात्कार से श्रीकृष्ण के दशविधि रसात्मक स्वरूप का अनुभवपूर्ण ज्ञान उन्हें प्राप्त होना स्वाभाविक है।

श्री कृष्ण के वात्सल्य एवं श्रृंगार रसात्मक स्वरूपों का अनुभव करने के लिए भक्ति मार्ग में गोपी हृदय की प्राप्ति होना आवश्यक माना गया है। इसलिए पुष्टिमार्ग में गोपीजनों को गुरु मानते हुए उनके प्रेम भावों की भावनाओं को ही साधन रूप माना गया है[3]। इन्हीं भावों की वात्सल्य प्रेम आदि भावनाएँ सूरदास के पदों में दिखाई देती हैं। निम्न पद देखिए—

> **द्वै लोचन साबित नहिं तेउ।**
> **बिनु देखें कल परति नहीं छिनु, एते पर कीन्ही यह टेउ॥**
> **बार-बार छबि देख्यौइ चाहत, साथी निमिष मिले हैं येउ।**
> **तू तौ ओट करत छिनहीं छिनु, देखत ही भरि आवत द्वैउ॥**
> **कैसें मैं उनकों पहिचानौं, नयन बिना लखियै क्यों भेउ।**
> **ये तौ निमिष परत भरि आवत, निठुर विधाता दीन्हे केउ॥**
> **कहा भयौ जो मिली स्याम सों, तू जान्यौ, जानत सब केउ।**
> **'सूर' स्याम कौ नाम स्रवन सुनि, दरसन नीकें देत न वेउ॥**

---

१. "रसो वै सः", "सर्व रसः" इत्यादि।

२. "मल्लानांशनिनृणां नरवरः"—(भागवत)

३ (१)…"गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्"

 २) सन्यास निर्णय

उक्त पद में गोपियों के "पलकांतर विरह" की भावना व्यक्त करते हुए सूर ने अपनी नेत्र-हीनता को भी सूचित कर दिया है । इससे ज्ञात होता है कि सूरदास को रसात्मक ब्रह्म का बोध होने के साथ गोपी हृदय भी प्राप्त हो चुका था ।

गोपी-हृदय की भावना को सिद्धि सूर के इन उल्लेखों से भी प्राप्त होती है—

(१) "हौं चेरी महारानी तेरी ।"

(२) "'सूर' सखी कैसे मन मानै !"

निम्न पद में तो सूर ने दृष्टांत के साथ पुरुष-हृदय में भक्ति के उद्रेक से स्त्री-भाव की प्राप्ति को स्पष्ट किया है—

भज सखि भाव भाविक देव ।
कोटि साधन करो कोऊ, तोऊ न मानैं सेव ।।
धूमकेतु कुमार माँग्यौ, कौन मारग रीत ।
पुरुष तें तिय भाव उपज्यौ, सबै उलटी रीति ।।
बसन भूषन पलटि पहरे, भाव सों संजोय ।
उलटि मुद्रा दई अंकन, बरन सूधे होय ।।
वेद विधि कौ नेम नहिं जहाँ, प्रीति की पहचान ।
ब्रजबधू बस किये मोहन, 'सूर' चतुर सुजान ।।

इस पद में महाप्रभु के "भावौ भावनया सिद्धः साधनं नान्य दिष्यते ।" वाले सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए सूर ने पद्मपुराणोक्त सोलह हजार ऋषियो के हृदयं में रामचन्द्र जी के दर्शन कर भक्ति भाव की उद्रेकता के साथ जो स्त्री-भाव उत्पन्न हुआ था, उस कथा का दृष्टांत रूप से वर्णन किया है। इसका सुचारु रूप से वर्णन महाप्रभु ने 'चीर हरण' प्रसंग की सुबोधिनी में किया है । अतः भक्तिमार्ग में भावना के से उद्रेक पुरुष को भी स्त्री-हृदय प्राप्त हो जाता है, यह बात दृष्टांतों के साथ सिद्ध है । अष्टछाप के परमानंददास भी इस बात का इस प्रकार समर्थन करते हैं—

लगै जो वृंदाबन कौ रंग ।
स्त्री-भाव सहज में उपजै, पुरुष-भाव होय भंग ।।

भक्ति मार्गीय सिद्धांतों के अनुसार जिस प्रकार ज्ञानी भक्तों को ब्रह्म का बोध होने पर समस्त जगत के पदार्थ एवं विषयों का स्वतः ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार गोपियों के से प्रेम-भाव से रसात्मक ब्रह्म की उपासना करने वाले

प्रेमी भक्तों के लिए स्त्री-हृदय भी सहज ही में प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार सूरदास के नेत्रविहीन और पुरुष होते हुए भी उन्हें दोनों बातें साध्य थी। अत. भक्तिमार्गीय सिद्धांतों के विवेचन से सूरदास संबंधी उपर्युक्त बातों की स्वत· सगति बैठ जाती है ।

अब हम सम सामयिक विद्वानों के कथन, बहि:साक्ष्य एवं सूरदास की रचनाओं के अंत:साक्ष्यों से उनकी जन्मांधता की जाँच करेंगे ।

सूरदास के प्राय: समकालीन श्रीनाथ भट्ट एवं प्राणनाथ कवि के कथन सर्व प्रथम विचारणीय हैं । श्रीनाथ भट्ट ने अपनी 'संस्कृत मणिमाला' में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध लिखा है—

'जन्मांधो सूरदासोऽभूत···"

प्राणनाथ कवि कृत 'अष्टसखामृत' में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध नहीं कहा गया है, किंतु उनके कथन से जन्मांधता का ही संकेत मिलता है—

बाहर नैन बिहीन सो, भीतर नैन बिसाल ।
तिन्हें न जग कछु देखिबौ, लखि हरि रूप निहाल ।।
बाहर-अंतर सकल तम, करत ताहि छन दूर ।
हरि-पद-मारग लखि परत, यातें साँचे सूर ।।
रूप-माधुरी हरि लखी, देखे नहिं अन लोक ।
हरिगुन रस-सागर पियो, हरन सकल जग-सोक ।।

सूरदास के कुछ समय पश्चात् होने वाले नाभा जी के कथन से भी सूरदास की जन्मांधता का ही बोध होता है—

प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदै हरि-लीला भासी ।
जनम–करम–गुन–रूप, सबै रसना परकासी ।।

इसके बाद प्राय: सभी लेखकों ने उनको जन्मांध ही लिखा है। रघुराजसिंह कृत 'रामरसिकावली' और मियाँसिह कृत 'भक्तविनोद' में भी उनको जन्मांध ही लिखा गया है—

जन्मत तें हैं नैन-बिहीना। दिव्य दृष्टि देखहिं सुख भीना।।

—रामरसिकावली

जनम अंध दृग ज्योति-विहीना। जननि-जनक कछु हरष न कीना।।

भक्तविनोद

श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश युक्त चौरासी वार्ता में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध लिखा गया है, किंतु श्री गोकुलनाथ जी कथित मूल चौरासी वार्ता में इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण भी बहुत से विद्वानों को सूरदास की जन्मांधता में विश्वास नहीं होता है। मूल चौरासी वार्ता में सूरदास के अंधत्व की स्पष्ट सूचना दो प्रसंगों में मिलती है—प्रथम अकबर से भेंट होने के समय और द्वितीय सूरदास के देहावसान के समय। उन दोनों अवसरों पर सूरदास वृद्ध हो चुके थे, इसलिए आधुनिक विद्वान वृद्धावस्था में उनके नेत्रविहीन होने का अनुमान करते हैं। यदि मूल चौरासी वार्ता को भी ध्यान पूर्वक पढा जाय तो उससे ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के समय भी सूरदास नेत्रविहीन थे। वार्ता में लिखा है—

"तब सूरदास जो अपने स्थल तें आय कें श्री आचार्य जी महाप्रभून के दरसन कों आये। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून नें कह्यौ जो 'सूर' आओ बैठो। तब सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून कौ दरसन करिकें आगै आय बैठे।"

सूरदास के आगमन पर आचार्य जी ने उनको 'सूर' नाम से संबोधन किया, इसलिए डा० मुंशीराम शर्मा का अनुमान है कि 'महाप्रभु से मिलने के पूर्व ही सूरदास अंधे होने के कारण 'सूर' नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे*।" इसके विरुद्ध कुछ विद्वानों का मत है कि वार्ता के उपर्युक्त कथन "तब सूरदासजी श्री आचार्य जी महाप्रभून कौ दरसन करिकें आगै आय बैठे" से उनका अंधत्व ज्ञात नहीं होता है, क्यों कि अंधा व्यक्ति किस प्रकार दर्शन कर सकता है! उनके समाधान के लिए हम वार्ता में दिये हुए अन्य प्रसंग को उपस्थित करते हैं।

वार्ता में लिखा हुआ है कि सूरदास को शरण में लेने के अनंतर श्री बल्लभाचार्य जी गऊघाट पर तीन दिन ठहरे थे। इसके पश्चात् वे सूरदास को लेकर गोकुल की ओर चल दिये। उस समय का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"अब जो श्री आचार्य जी महाप्रभु ब्रज कौं पाँव धारे, सो प्रथम श्री गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून के साथ सूरदास जी हू आये। तब श्री महाप्रभु जी अपने श्री मुख सों कह्यौ जो सूरदास जो श्री गोकुल कौ दरसन करो, सो सूरदास नें श्री गोकुल कों दंडवत करी।"

* सूर सौरभ प्रथम भाग पृ० २२

इस उल्लेख से सूरदास के अंधे होने का स्पष्ट संकेत मिलता है । एक नेत्रो वाला व्यक्ति जिस प्रकार अंधे से कहता है, उसी प्रकार आचार्य जी ने सूरदास से गोकुल के दर्शन करने को कहा है । यदि सूरदास के नेत्र होते, तो वे आचार्य जी के सूचित करने से पूर्व ही गोकुल के दर्शन कर लेते । आचार्यजी की सूचना के अनुसार नेत्र-विहीनता के कारण वे गोकुल के दर्शन तो कर ही नहीं सकते थे, अतः उन्होंने गोकुल को दंडवत कर अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित किया । वार्ता के इस उल्लेख से उस समय सूरदास का नेत्र-विहीन होना सूचित होता है । यदि उस समय वे नेत्र-विहीन थे, तो इससे तीन दिन पूर्व श्री वल्लभाचार्य जी के शरण में आने के समय में भी वे नेत्र-विहीन होंगे । उस समय सूरदास जी की आयु प्रायः ३१ वर्ष की थी, अतः वे वृद्धावस्था में ही नहीं, वरन् युवावस्था में भी नेत्र-विहीन थे, यह इस प्रसंग से सिद्ध होता है ।

जो विद्वान चौरासी वार्ता द्वारा उनके जन्मांध होने का स्पष्ट विवरण जानना चाहते हैं, उनको ज्ञात होना चाहिए कि वार्ता का आरंभ इसी प्रसग को लेकर हुआ है । इससे पूर्व का वृत्तांत अर्थात् सूरदास के जन्म एवं बाल्य काल का वर्णन मूल चौरासी वार्ता में नहीं दिया गया है । ऐसी दशा में प्रसग न आने के कारण ही उसमें जन्मांधता का उल्लेख नहीं है ।

वार्ता के कथन की पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश में की है । उन्होंने स्पष्ट रूप से सूरदास को जन्म से ही अंधा होना लिखा है । यथा—

"सो सूरदास जी के जन्मत ही सों नेत्र नाहीं हैं ।"

श्री हरिराय जी ने सूर और अंधे का भेद बतलाते हुए उनके सूर नाम की सार्थकता इस प्रकार बतलाई है—

"जन्मे पाछें नेत्र जांय, तिनकौं आंधरा कहियें, सूर न कहियें और ये तौ सूर हैं।"

सूरदास की जन्मांधता के विषय में इतने वाह्य प्रमाण प्राप्त हैं कि आधुनिक विद्वानों के तर्क उनके सामने टिक नहीं सकते । डा० दीनदयाल गुप्त सूरदास की जन्मांधता के संबंध में श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश एवं अन्य बाह्य प्रमाणों से प्रभावित तो हैं, किंतु वे आधुनिक विद्वानों के अनुमान का किंचित समर्थन करते हुए सूरदास को वृद्धावस्था में नहीं बल्कि बाल्यावस्था में अंध होना मानते हैं उन्होंने लिखा है

"एक ओर तो वाह्य प्रमाण सूर को जन्मांध कहते हैं और दूसरी ओर, यदि हम उनकी रचनाओं को अंध विश्वास की आँख को हटा कर साधारण बुद्धि की आँख से देखें, तो हमें उनके स्वाभाविक और सजीव भाव-चित्रों और वर्णनों के सहारे ज्ञात होगा कि कवि ने संसार के रूप-रंग को किसी अवस्था में अवश्य देखा होगा। वाह्य प्रमाण विरुद्ध होते हुए भी यदि यह मान लिया जाय कि सूरदास अपनी बाल्य अवस्था में ही अंधे हो गये थे, तो इसमें सूर का महत्व कुछ कम नहीं होता* ।"

यहाँ पर सूर के महत्व का प्रश्न नहीं है; प्रश्न तो वास्तविक बात की खोज करने का है । सूरदास की वृद्धावस्था में नेत्रविहीन हो जाने की बात तो कुछ अर्थ भी रखती है, किंतु डा० गुप्त उनकी बाल्यावस्था में अंधे होने की बात किस आधार पर कहते हैं ? निःसंदेह "यदि हम उनकी रचनाओं को अंध विश्वास की आँख को हटाकर साधारण बुद्धि की आँख से देखें" तो वाह्य साक्ष्य ही नहीं, अंतःसाक्ष्य से भी सूरदास की नेत्र-विहीनता और उनका जन्मांध होना ही सिद्ध होता है ।

सूरदास की निम्न रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनकी नेत्र-विहीनता ज्ञात होती है—

सक्र कौ दान बिन मान ग्वालिन कियौ, गह्यौ गिरि पान जस जगत छायौ ।
यहै जिय जानि कें अंध भव त्रास तें, 'सूर' कामी कुटिल सरन आयौ ॥१॥
'सूर' कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ॥२॥

रास-रस-रीति नहिं बरनि आवै ।
इहै निज मंत्र, यह ज्ञान, यह ध्यान है, दरस दंपति भजन सार गाऊँ ।
इहै माँगौं बार-बार, प्रभु 'सूर' के नयन द्वै रहौं, नर-देह पाऊँ ॥३॥
"सूर' कूर आँधरौ हौं द्वार परयौ गाऊँ ॥४॥

उक्त उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि जब सूरदास श्रीनाथ जी के मंदिर मे कीर्तन करते थे, तब वे निश्चित रूप से अंधे थे ।

उपर्युक्त अंतःसाक्ष्यों से सूरदास की अंधता सिद्ध होती है, किंतु उनकी जन्मांधता की स्पष्ट सूचना प्राप्त नहीं होती है । अब हम सूरदास के कुछ

* सूर और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० २०२

ऐसे पद देते हैं, जिनमें उनकी जन्मांधता का अस्पष्ट एवं स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पहले निम्न लिखित पद देखिये—

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चारि पदारथ दिए सुदामहिं, अरु गुरु के सुत आनि॥
रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारंग-पानि।
लंका दई बिभीषन जन कों, पूरबलो पहिचानि॥
विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि।
'सूरदास' सों कहा निहोरौ, नैननि हू की हानि॥

उपर्युक्त पद की अंतिम पंक्ति से सूरदास के जन्मांध होने की अस्पष्ट सूचना मिलती है। इस पंक्ति में सूरदास ने अपने इष्टदेव के प्रति हेतुजन्य त्याग का आरोप किया है। इस पंक्ति में वर्णित 'त्यागी' और 'दानी' कहलाने वाले इष्टदेव पर यह आक्षेप तभी हो सकता है, जब उन्होंने सूरदास को जन्म से ही नेत्रविहीन किया हो। यदि सूरदास वृद्धावस्था अथवा अन्य किसी कारण से अंधे होते, तो इष्टदेव के प्रति इस प्रकार का आरोप असंगत हो जाता। सूरदास जैसे शब्दों के मर्म को जानने वाले महाकवि से इस प्रकार के असंगत कथन की आशा नहीं की जा सकती है।

निम्न लिखित पद में सूरदास की जन्मांधता का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

किन तेरौ गोबिंद नाम धरयौ।
सांदीपनि के सुत तुम ल्याये, जब विद्या जाय पढ़यौ॥
सुदामा को दालिद्र तुम काटौ, तंदुल भेंटि धरयौ।
द्रुपद-सुता की लाज तुम राखी, अंबर दान करयौ॥
जब तुम भए लेवा देवा के दाता, हमसूँ कछु न सरयौ।
'सूर' की बिरियाँ निठुर होइ बैठे, जन्म-अंध करयौ॥

यह पद एक प्रामाणिक एवं प्राचीन हस्त लिखित प्रति से उद्धृत किया गया है। इस प्रति का लिपि-काल संवत् १८०० के आस-पास का ज्ञात होता है। उक्त पद से मिलते हुए कुछ पद सूरसागर की मुद्रित प्रतियों में भी प्राप्त होते हैं[1], किंतु उनमें पाठ का इतना अंतर है कि वे उक्त पद से पृथक् ज्ञात होते हैं। सूरदास की रचनाओं में एक सी शब्दावली एवं भावों के कई पृथक्-पृथक् पद मिलते हैं।

---

१. "पतित पावन हरि विरद तुम्हारो कौनें नाम धरयौ।"
सूरसागर (ना० प्र०) पद सं० १३३

इस पद में 'गोबिंद' और 'जन्मग्रंध' की असंगति बतलाते हुए सूरदास ने गोविंद पर स्वार्थपरायणता और निठुरता का आक्षेप किया है। इस आक्षेप की पुष्टि सूरदास ने सांदीपनि आदि के दृष्टांतों से की है; जिसके कारण उनकी सार्थक शब्द-योजना और भी चमक उठी है।

'गोविंद' अर्थात् इंद्रियों का दाता—स्वामी (इंद्र), इस शब्दार्थ के कारण अपने को नेत्र-इंद्रियों से रहित जन्मांध करने पर सूरदास श्री कृष्ण के प्रति 'लेवा देवा के दाता' और 'निठुरता' के आक्षेप करते है और 'गोविंद' नाम की अयोग्यता भी बतलाते हैं। यद्यपि कृष्ण ने सांदीपनि को पुत्र, सुदामा को वैभव और द्रोपदी को चीर देकर अपना दातृत्व प्रकट किया है; तथापि सूरदास कहते हैं कि उनका वह दातृत्व क्रमशः विद्या पढ़ने, तंदुल खाने और अंबर-दान के बदले में था, अतः स्वार्थवश था। सूरदास कहते हैं कि मुझसे आपका कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ, इसलिए मुझे नेत्र-इंद्रिय का दान न कर जन्मांध कर दिया, अतः आपका 'गोविंद' जैसा असार्थक नाम किसने रखा है!

इसी प्रकार का एक पद और देखिए—

हरि बिन संकट में को का कौ।
तुम बिन दीनदयाल कृपानिधि, नाम लेहुँ धौं का कौ॥
मंजारी-सुत चुगें अबा में, उनकौ बार न बाँकौ।
निरभै भये पांडु-सुत डोलत, उनहिं नांहि डर का कौ॥
धन्य भाग है पांडु सुतन के, जिनकौ रथ प्रभु हाँकौ।
जरासंध जोरावर मार्‍यौ, फारि दियौ द्वै फाँकौ॥
द्रौपदि चीर गहेउ दुस्सासन, खेंचत भुज बल थाकौ।
महाभारत भारहिं के अंडा, तोर्‍यौ गज-कांधा कौ॥
कोटि-कोटि तुम पतित उबारे, कह हूँ कथन कहाँ कौ।
रह्यौ जात एक पतित, जनम कौ आंधरौ 'सूर' सदा कौ॥

यह पद भी एक प्राचीन हस्त-प्रति से उद्धृत किया गया है। इस पद मे 'हरि और 'संकट' शब्द सार्थक हैं। हरि का अर्थ होता है दुःख को हरने वाला, इसलिए हरि को 'संकट' के साथ रखा गया है। इस पद की अंतिम पंक्ति का अर्थ कुछ लोग इस प्रकार भी कर सकते हैं कि सूरदास अपने को 'जन्म से पतित' और 'सदा का अंधा' अर्थात् अज्ञानी कहते हैं सूरदास ने अपने अनेक पदों मे अपने को सब से अधिक पतित यहाँ तक कि

हौ तौ पतित सात पीढ़िन कौं कहा है; इसलिए 'एक जन्म का पतित' अर्थ करना ठीक न होगा। यहाँ पर 'पतित' शब्द को 'जनम' के साथ न मिला कर 'जनम कौ आँधरौ'' समझना ही उचित है।

अब निम्न लिखित पद देखिये। यह पद नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद की भजनावली में संगृहीत है—

(राग भूपाली-तीन ताल)

नाथ मोहि ! अब की बेर उबारौ।
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारौ॥
करमहीन जनम कौ अंधौ, मोतें कौन नकारौ।
तीन लोक के तुम प्रतिपालक, मैं तौ दास तिहारौ॥
तारी जाति कुजाति प्रभु जू, मो पर किरपा धारौ।
पतितन में एक नायक कहिये, नीचन में सरदारौ॥
कोटि पाप इक पासँग मेरे, अजामिल कौन विचारौ।
धरम नाम सुनिकै प्रभु मेरौ, नरक कियौ हठ तारौ॥
मोकों ठौर नहीं अब कोऊ, अपुनौ बिरद सँभारौ।
छुद्र पतित तुम तारे रमापति, अब न करो जिय गारौ॥
'सूरदास' साँचौ तब मानै, जब ह्वै है मम निस्तारौ॥

इस पद में 'नाथ' शब्द की सार्थकता के साथ कर्महीनता, जन्मांधता आदि का संबंध जोड़ा गया है। नाथ का शब्दार्थ है—न+अथ अर्थात् दूसरा नहीं। इस पद में सूरदास ने अपनी सर्वविध निःसाधनता बतलाते हुए एकमात्र भगवान का भरोसा किया है। सूरदास कहते हैं कि मैं कर्महीन, जन्मांध और सबसे अधिक पापी हूँ। आपने छोटे-छोटे पतितों का ही उद्धार किया है; जब आप मेरा निस्तार करेंगे, तब मैं आपके पतित-पावन विरद को सत्य समझूँगा। सूरदास के पदों की सी सार्थक शब्द-योजना अन्य कवियों के काव्य में मिलना कठिन है। यही कारण है कि सूरदास हिंदी साहित्य-गगन के सूर्य कहे जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के अनंतर हमारा मत है कि सूरदास वृद्धावस्था एवं में ही नहीं वरन् जन्म से ही अंधे थे

आरंभिक जीवन और गृह-त्याग—

सूरदास के आरंभिक जीवन का परिचय श्री हरिराय जी के 'भावप्रकाश' के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से प्राप्त नहीं होता है। चौरासी वार्ता और सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से इस विषय पर स्पष्ट रूप से प्रकाश नहीं पड़ता है। भावप्रकाश से ज्ञात होता है कि सूरदास के पिता अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण थे, अतः उनके लिए अंधे सूरदास भार स्वरूप थे। सूरदास की उस समय की अवस्था का बोध उनकी रचनाओं के अंतः साक्ष्य से भी होता है।

'साहित्य-लहरी' के वंश-परिचय वाले पद के आधार पर डा० मुंशीराम शर्मा का कथन है—

सूर समृद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे।...जिस वंश के व्यक्ति बादशाहों से युद्ध करने की हिम्मत रखते हों, वह वंश दरिद्र नहीं हो सकता[1]।

किंतु जिसका आधार ही अप्रामाणिक है, उसके कथन को प्रामाणिक मानने का कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य साधन से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि नहीं होती है। सूरदास के विनयपूर्ण पदों में ऐसे कई अंतःसाक्ष्य हैं, जिनसे उनके दरिद्र कुलोत्पन्न होने का ही आभास मिलता है।

'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी छै वर्ष की आयु तक अपने माता-पिता के साथ रहे थे। इसके अनंतर वे गृह-त्याग कर अपने जन्म-स्थान सीहीं से चार कोस दूर एक ग्राम में चले गये और वहाँ पर अपनी आयु के अठारह वर्ष तक रहे। यद्यपि छैं वर्ष की आयु में गृह-त्याग की पुष्टि अभी तक किसी अन्य सूत्र से नहीं हो सकी है, तथापि 'चल्यौ सबेरौ, आयौ अबेरौ' आदि अंतःसाक्ष्य से सूरदास द्वारा अपनी बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग करने की सूचना अवश्य मिलती है। मियाँसिंह कृत 'भक्त विनोद' में भी सूरदास की आरंभिक अवस्था में ही उनके गृह-त्याग का उल्लेख है, किंतु उसका वृत्तांत भिन्न है। 'भक्त-विनोद' से ज्ञात होता है कि सूरदास का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की आयु में हुआ था। इसके पश्चात् उनके माता-पिता उनको लेकर ब्रज यात्रा के लिए गये। वहाँ पर मथुरा में सूरदास

---

१. सूर सौरभ प्रथम भाग पृष्ठ ३८

कृष्ण-भक्तों के साथ रह गये और अपने माता-पिता के आग्रह करने पर भी उनके साथ वापिस नहीं गये। इसके बाद सूरदास की ख्याति, उनके कूप-पतन और श्री कृष्ण के दर्शन प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है। कवि मियाँसिंह के इस कथन के विषय में डा० दीनदयाल गुप्त का मत है—

"ज्ञात होता है कि अन्य सूरदासों की कहानियाँ मिला कर तथा साहित्य-लहरी में दिये हुए सूर की वंशावली वाले प्रक्षिप्त पद का कुछ अंश में सहारा लेकर यह वृत्तांत लिखा गया है*।"

हम भी डा० गुप्त के उक्त मत का समर्थन करते हैं, अतः 'भक्त विनोद' के पूर्वोक्त कथन को अप्रामाणिक समझते है।

श्री हरिराय जी कृत 'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि गृह-त्याग के अनतर सूरदास अपने जन्म-स्थान सीहीं के निकटवर्ती ग्राम में तालाब के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे आकर ठहरे। उस ग्राम के जिमीदार की १० गायें चोरी चली गई थीं। सूरदास के कारण जिमींदार की गायें मिल गयीं, अतः उसने सूरदास के रहने के लिए उक्त तालाब के किनारे एक झोंपडी बनवा दी और उनके खान-पान का भी प्रबंध कर दिया।

इस स्थान पर सूरदास अपनी अठारह वर्ष की आयु तक रहे। ग्राम के जिमींदार ने यह प्रसिद्धि कर दी थी कि सूरदास शकुन विद्या के अच्छे जानकार हैं। उनके बतलाने से उसकी खोई हुई गायें मिल गई थीं। यह समाचार सुन कर अनेक व्यक्ति सूरदास के पास शकुन पूछने आने लगे। सूरदास का बतलाया हुआ शकुन सत्य होता था, अतः उनकी खूब प्रसिद्धि हो गई। शकुन पूछने वालों की लाई हुई भेंट से सूरदास के पास अन्न, वस्त्र एवं द्रव्य यथेष्ट परिमाण में एकत्र हो गया। तब सूरदास 'स्वामी जी' कहलाने लगे और अनेक व्यक्ति उनके सेवक हो गये। वहाँ पर रहते हुए सूरदास ने गायन-कला में भी कुशलता प्राप्त कर ली थी। उनके पास गायन-वादन का भी सरंजाम था। वे अपने सेवकों की मंडली में विरह के पदों का गायन किया करते थे।

सूरदास द्वारा शकुन बतलाने की बात का समर्थन किसी अन्य सूत्र से नहीं होता है, किंतु "मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ।…भद्रा भली भरणी भय-हरणी चलत मेघ अरु छींकौ॥" आदि सूरदास की रचनाओं के

---

* अष्टछाप और वल्लभ पृ० १२४

अंत:साक्ष्य, श्री कृष्ण की जन्म कुंडली के पद एवं भविष्य सूचक कथनों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि वे ज्योतिष विद्या के जानकार अवश्य थे। उनकी गायन-कुशलता के संबंध में कुछ कहना ही व्यर्थ है। चौरासी वार्ता के आरंभिक प्रसंग से ही ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य होने के पूर्व ही सूरदास एक कुशल गायक के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। इन विद्याओं का ज्ञान उनको किस प्रकार हुआ, यह किसी अंत:साक्ष्य एवं बहि:साक्ष्य से प्रकट नहीं होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि सत्संग से ही उनको इन विद्याओं की प्राप्ति हुई थी। पूर्व संस्कारों के कारण उनको सहज ही में इनका ज्ञान प्राप्त हो गया, फिर चिर अभ्यास से वे इनमें दक्ष हो गये थे।

सूरदास की स्वामी अवस्था और उनके शिष्य-सेवक आदि की सूचना निम्न लिखित पद से प्राप्त होती है—

> **हरि, हौं सब पतितन कौ नायक।**
> **को करि सकै बराबरि मेरी, इतै मान को लायक॥**
>
> × × ×
>
> **यह सुनि जहाँ तहाँ तें सिमिटे, आइ जुरे इक ठौर।**
> **अब कें इतने और मिलाऊँ, बेर दूसरी और॥**
> **होड़ा-होड़ी मनहिं भावते, किए पाप भरि पेट।**
> **ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट॥**
> **बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हे भरि भाँड़ौ।**
> **लीजै बेगि निबेरि तुरत ही, 'सूर' पतित कौ टाँड़ौ॥**

इस स्थान पर रहते हुए सूरदास के पास यथेष्ट वैभव, शिष्य-सेवक तथा गाने-बजाने का सरंजाम एकत्र हो गया था। हरिराय जी ने अपने भाव-प्रकाश में लिखा है—

"या प्रकार सूरदास तलाब पै पीपर के वृक्ष नीचें बरस अठारह के भये। सो एक दिन रात्रि को सोवत हते, ता समय सूरदास को वैराग्य आयौ। तब सूरदास जी अपने मन में बिचारे जो देखो मैं श्री भगवान के मिलन के अर्थ वैराग्य करि कें घर सों निकस्यौ हतौ। सो यहाँ माया नें ग्रसि लियौ।······पाछें सूरदास एक वस्त्र पहरि कें लाठी लैकें वहाँ तें कूंच किये।···कितनेक सेवक संसार सों रहित हते सो सूरदास जी के संग चले।

यद्यपि सूरदास ने अपनी बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग किया था, तथापि वे अपने गृह से बहुत दूर नहीं, प्रत्युत् चार कोस दूर एक गाँव में रहने लगे थे। वहाँ उनके गुणों से आकर्षित होकर अनेक प्रकार के व्यक्ति उनके पास आते थे। अबोधावस्था का वैराग्य भाव वहाँ पर दु:संग के कारण कुछ समय के लिए दब गया था। वे स्वामित्व के कारण माया-जाल में भी फँस गये थे। इस प्रकार उनके जीवन का आरंभिक भाग व्यतीत हुआ। जब वे अठारह वर्ष के हुए, तब पश्चात्ताप पूर्वक फिर उनकी वैराग्य की ओर प्रवृत्ति हुई। उस समय का वैराग्य दृढ़ था। उस समय तक उनकी अबोधावस्था दूर हो चुकी थी, और उनको संसार का कुछ अनुभव भी प्राप्त हो चुका था। तब वे अपनी जन्म-भूमि का परित्याग कर संगीत के सरंजाम एवं कुछ सच्चे त्यागी सेवकों के साथ मथुरा होते हुए गऊघाट पर जाकर रहने लगे।

दृढ़ भक्ति से पूर्व की स्वामी अवस्था में काम, क्रोध, निंदा, स्तुति आदि दोषों का आना स्वाभाविक है। सूरदास कृत दीनता, विनय एवं वैराग्य के पदो में ऐसे अनेक कथन है, जिनसे उस समय की दशा का ज्ञान हो सकता है। ये कथन अतिशयोक्ति पूर्ण होते हुए भी अवास्तविक नहीं कहे जा सकते। यदि ये कथन अवास्तविक होते, तो उनमें पश्चात्ताप की जो तीव्र भावना दिखलाई देती है, वह कदापि संभव नहीं थी। सूरदास को अपनी स्वामी अवस्था के कृत्यों का पश्चात्ताप अपनी प्रौढ़ावस्था तक रहा था, जैसा उनके अनेक पदों से ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित पद देखिये—

जौलौं सत सरूप नहिं सूझत।
तौलौं मृग मद नाभि बिसारैं, फिरत सकल बन बूझत॥

× × ×

कहत बनाय दीप की बतियाँ, कैसैं धौं तम नासत॥
'सूरदास' जब यह मति आई, वे दिन गये अलेखैं।
कहा जानैं दिनकर की महिमा, अंध नैंन बिनु देखैं॥

इस पद के 'वे दिन गये अलेखैं' शब्दों द्वारा पश्चात्ताप की भावना स्पष्ट प्रकट होती है। इसी प्रकार बाल्यावस्था में गृह-त्याग करने पर भी अधिक समय बाद बड़ी अवस्था में भगवत्प्राप्ति की सूचना निम्न लिखित पदांश से प्रकट होती है—

चल्यौ सबेरौ आयौ अबेरौ लेकर अपने साझा।
सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलिहै, केवल कर्म बस भाझा

उक्त कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने गृह का त्याग अपनी बाल्यावस्था में ही किया था, किंतु बीच में कहीं अटक जाने के कारण प्रभु से मिलने में उनको कुछ विलंब हो गया था। इस पद से यह भी ज्ञात होता है कि प्रभु से मिलने से पूर्व वे अपने साज-सामान सहित वैभवशाली थे। यह कथन उनकी अठारह वर्ष की अवस्था तक के वृत्तांत की पुष्टि करता है। इसके बाद वे साज-सरंजाम सहित गऊघाट पर आकर रहने लगे। वहाँ पर बारह वर्ष के लंबे समय के पश्चात् वे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी से मिले, जिसकी सूचना उक्त कथन से प्राप्त होती है।

शरणागति एवं शरणागति-काल—

सूरदास अपने वैराग्य की दृढ़ता के कारण अपना समस्त वैभव जहाँ का तहाँ छोड़ कर ब्रज की ओर चल दिये थे। वे पहले मथुरा गये। वहाँ कुछ समय रह कर वे मथुरा और आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर यमुना नदी के किनारे रहने लगे थे।

चौरासी वार्ता में सूरदास की कथा का आरंभ यहीं से होता है। चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे स्वरचित पदों के गायन द्वारा भगवान् की आराधना किया करते थे। इस प्रकार रहते हुए उनको बहुत समय हो गया। एक बार महाप्रभु बल्लभाचार्य जी अपने सेवकों सहित अड़ैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे थे। सूरदास के एक सेवक ने उनको सूचना दी—"आज गऊघाट पर श्री बल्लभाचार्य जी पधारे हैं। इन आचार्य जी ने काशी तथा दक्षिण में मायावाद का खंडन किया है और भक्ति मार्ग की स्थापना की है।" सूरदास ने यह समाचार सुनकर उक्त सेवक से कहा—"जब आचार्य जी भोजनादि से निवृत्त होकर बैठें, तब मुझको सूचना देना। मैं उनके दर्शन करूँगा।"

जब श्री बल्लभाचार्य जी भोजनादि से निश्चित होकर गद्दी पर विराजमान हुए और उनके शिष्य-सेवकादि उनके निकट बैठ गये, तब सूरदास के सेवक ने इसकी सूचना उनको दी। सूरदास अपने सेवकों सहित बल्लभाचार्य जी के दर्शनार्थ आये और दंडवत-प्रणाम कर उनके सन्मुख बैठ गये। श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"सूर! कुछ भगवद्-यश वर्णन करो।" इस पर सूरदास ने निम्न लिखित पदों का गायन किया—

(१) हौं हरि! सब पतितन कौ नायक।

(२) प्रभु! हौं सब पतितन कौ टीकौ।

उन पदों को सुन कर बल्लभाचार्य जी ने कहा—"तुम 'सूर' होकर भी ऐसी दीनता दिखलाते हो ! कुछ भगल्लीलाओं का वर्णन करो।" चौरासी वार्ता में लिखा है कि श्री बल्लभाचार्य जी के उपर्युक्त कथन पर सूरदास ने उनसे कहा—"महाराज ! मुझे भगवल्लीलाओं का ज्ञान नहीं है।" इस पर श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"हम तुमको इन सब बातों का यथार्थ ज्ञान कराये देते हैं।"

सूरदास की रचनाओं में भी इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है—

१. श्री बल्लभ अब की बेर उबारौ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं बिनु एक सरन तुम्हारौ ॥

२. मन रे ! तू भूल्यौ जनम गँवावै।
'सूरदास' बल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै ॥

३. मन रे ! तैं आयुष वृथा गँवाई।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि श्री बल्लभ सुखदाई।
'सूरदास' सरनागत हरि की और न कछू उपाई ॥

इस पर श्री बल्लभाचार्य जी ने अपने संप्रदाय की विधि के अनुसार सूरदास को अष्टाक्षर मंत्र का 'नाम' सुनाया और 'ब्रह्म संबंध' कराते हुए उनसे 'समर्पण' कराया। 'नाम' एवं 'समर्पण' पुष्टि संप्रदाय की दो प्रकार की दीक्षाएँ हैं। गुरु अपने सेवक के कान के पास 'श्री कृष्णः शरणं मम' इस अष्टाक्षर मंत्र को तीन बार सुनाते है। इसी को 'नाम सुनाना' कहते हैं। 'समर्पण' का अभिप्राय यह है कि जीव अपना सर्वस्व अर्थात् अहंता-ममतात्मक देह, इंद्रियाँ, स्त्री, पुत्र, कुटुंब, गृह, द्रव्य, अंतःकरण, प्राण, लोक, परलोक, आत्मा आदि को भगवान् श्रीकृष्ण के अर्पित कर उनका दासत्व स्वीकार करता है। सूरदास की रचनाओं में इनका इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है—

अज हू सावधान किन होहि।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ !
बार-बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुड़ी सुनायौ ॥
(नाम दीक्षा)

यामैं कहा घटैगो तेरौ।
नंदनंदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ।
सबै समर्पन 'सूर' स्याम कों यह साँचौ मत मेरौ ॥
(समर्पण दीक्षा)

इस प्रकार सूरदास बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए। इस विधि के अनंतर श्री बल्लभाचार्य जी ने सूरदास को श्रीमद्भागवत् के 'दशमस्कंध की अनुक्रमणिका', भागवत् की टीका स्वरूप स्वरचित 'सुबोधिनी' और भागवत-सार समुच्चय रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम'[1] सुनाया, जिनके कारण सूरदास को भागवत के तत्व और उसकी दशविध लीलाओं का यथार्थ ज्ञान हो गया। इसी के फल स्वरूप बाद में सूरदास ने श्री कृष्ण-लीला विषयक सहस्रों पद एवं सूरसारावली की रचना की थी।

श्री बल्लभाचार्य जी गऊघाट पर तीन दिन तक ठहरे। उसी समय सूरदास ने अपने समस्त शिष्य-सेवकों को भी श्री आचार्य जी द्वारा दीक्षित करा दिया। उसके अनंतर श्री आचार्य जी अपने सेवकों के साथ गोकुल होते हुए गोबर्धन चले गये। सूरदास भी उनके साथ थे। गोबर्धन पहुँच कर आचार्य जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने का आदेश दिया।

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास को शरण में लेने से पूर्व श्री बल्लभाचार्य जी काशी और दक्षिण के शास्त्रार्थों में विजयी होकर 'आचार्य महाप्रभु' की पदवी प्राप्त कर चुके थे। सांप्रदायिक इतिहास के अनुसार पत्रावलंबन वाला काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६३ वि० में और राज-सभा वाला दक्षिण का इतिहास प्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६५ वि० में हुआ था[2], अतः सूरदास का शरण-काल सं० १५६५ के अनंतर निश्चित होता है।

गो० विट्ठलनाथ जी के आविर्भाव के समय गाया हुआ सूरदास-रचित एक बधाई का पद—'श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई।'—उपलब्ध है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास गो० विट्ठलनाथ जी के जन्म सं० १५७२ से पूर्व श्री बल्लभाचार्य की शरण में आ चुके थे। इस प्रकार वहिःसाक्ष्य और अंतःसाक्ष्य दोनों के अनुसंधान से सिद्ध होता है कि सूरदास सं० १५६५ के पश्चात् और सं० १५७२ के पूर्व महाप्रभु की शरण में आये थे।

---

[1] 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के विषय के ऐसा समझा जाता है कि इसकी रचना सूरदास के शरणागत होने के बहुत दिनों बाद श्री गोपीनाथ जी के लिए की गयी थी। इस संबंध में हम अपने विचार विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठों में लिखेंगे।

[2] अष्टछाप परिचय द्वितीय संस्करण पृष्ठ ८

गो० यदुनाथ जी ने अपने 'बल्लभ-दिग्विजय' नामक ग्रंथ में लिखा है कि अड़ैल से ब्रज जाते हुए श्री आचार्य जी महाप्रभु ने सूरदास को अपनी शरण में लिया था। फिर ब्रज से पुनः अड़ैल वापिस पहुँचते ही उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी का अड़ैल में जन्म हुआ था। श्री गोपीनाथ जी की प्राकट्य तिथि सं० १५६८ की आश्विन कृ० १२ है। अड़ैल से ब्रज जाने में और वहाँ कुछ दिन रह कर पुनः अड़ैल वापिस आने में उन समय कम से कम ६ महीने अवश्य लगे होंगे। इस प्रकार सूरदास का शरण-काल वि० सं० १५६७ निश्चित होता है।

उपर्युक्त संवत् की पुष्टि वार्ता के कथन से भी हो जाती है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है, सं० १५६५ के दक्षिण राजसभा वाले शास्त्रार्थ के अनतर आचार्य जी अड़ैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे थे। राजसभा वाले शास्त्रार्थ के पश्चात् ही उन्होने अड़ैल में अपना स्थायी निवास बनाया था, जहाँ से ब्रज में जाकर उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा का प्रबंध किया था। 'बल्लभ दिग्विजय' के अनुसंधान से सूरदास अपनी आयु के ३२ वें वर्ष मे महाप्रभु की शरण में आये थे। सूरदास का जन्म संवत् १५३५ गत पृष्ठो मे सिद्ध किया जा चुका है, अतः उनका शरण-काल 'चौरासी वार्ता' और 'बल्लभ दिग्विजय' दोनों के प्रमाण से सं० १५६७ ही सिद्ध होता है।

"श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता" की मुद्रित प्रति में सूरदास का शरण-काल स० १५७७ लिखा हुआ है। हिंदी के कुछ विद्वानों ने भी उनके शरण-काल का यही संवत् लिखा है[१], किंतु यह सर्वथा भ्रमात्मक है। श्रीनाथ जी का मदिर पूर्णतया सं० १५७६ में बन कर तैयार हुआ था। श्री बल्लभाचार्य ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन कार्य के लिए नियुक्त किया था। इसी की संगति मिलाते हुए श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण-काल सं० १५७६ के अनंतर सं० १५७७ में सूरदास का शरण-काल लिखा गया है, जो निम्न लिखित प्रमाणानुसार अशुद्ध है।

श्री बल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से पूरनमल खत्री ने श्रीनाथजी के मंदिर-निर्माण का कार्य सं० १५५६ की वैशाख शु० ३ को आरंभ कर दिया था।

---

(१) सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ ४५
(२) सूर साहित्य की भूमिका, पृष्ठ १८
(३) सूर जीवनी और ग्रंथ पृष्ठ २६

द्रव्याभाव से यह निर्माण कार्य बीच में ही रुक गया, किंतु तब तक मंदिर का अधिकांश भाग बन चुका था और वह ऐसी स्थिति में था कि उस नवीन मंदिर में श्रीनाथ जी का स्वरूप (मूर्ति) स्थापित हो सके। सं० १५६४ मे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने उस मंदिर में श्रीनाथ जी को विराजमान कर दिया था, जैसा "बल्लभ दिग्विजय" और "संप्रदाय कल्पद्रुम" से सिद्ध है। इसके बाद द्रव्य की व्यवस्था होने पर मंदिर के शिखर आदि वाह्य भाग की पूर्ति सं० १५७६ में हुई थी। इस निर्माण-पूर्ति के संवत् की संगति के कारण ही 'श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता' मे सूरदास का शरण-काल सं० १५७७ मान लिया गया प्रतीत होता है। यदि सूरदास वास्तव मे सं० १५७७ में ही बल्लभ संप्रदाय में सम्मिमलित हुए होते, तब उनके द्वारा सं० १५७२ में गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकट्य अवसर पर गाया हुआ बधाई का पद किस प्रकार उपलब्ध होता !

इस प्रकार अंतःसाक्ष्य एवं वहिःसाक्ष्य के आधार पर सूरदास का शरण-काल संवत् १५६७ वि० निश्चित होता है।

ब्रज-वास और कीर्तन-सेवा—

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के अनंतर सूरदास गऊघाट से गोकुल—मथुरा होते हुए गोबर्धन गये थे। वहाँ पर बल्लभाचार्य जी ने उनको श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन-सेवा का कार्य दिया था। सूरदास ने अपना शेष जीवन स्थायी रूप से गोवर्धन मे रहते हुए और श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करते हुए ही व्यतीत किया था।

सूरदास का स्थायी निवास गोबर्धन के निकट परासौली में था। वहाँ पर चंद्रसरोवर के पास वे अपनी कुटी में रहा करते थे और प्रति दिन परासौली से श्रीनाथ जी के मंदिर में जाकर कीर्तन-सेवा करते थे। सूरदास के गोबर्धन-निवास की सूचना निम्न लिखित पदांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होती है—

"नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोबर्धन तें आयौ।"

इस पद में सूरदास के ढाढ़ी बन कर गोबर्धन से आने का उल्लेख है। ढाढ़ी बनने का कारण हम जाति विषयक सत पृष्ठों में स्पष्ट कर चुके हैं। 'निज वार्ता' के अनुसार इस पद की रचना सं० १५७२ में होना सिद्ध होता है, जब कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी अपने नवजात शिशु विट्ठलनाथ जी को **अडैल से प्रथम बार ब्रज में लाये थे**

गोवर्धन में आने के पश्चात् वे श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए स्थायी रूप से वहीं पर रहने लगे। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार श्रीनाथ जी के स्वरूप के साथ मथुरा और कभी-कभी नवनीतप्रिय जी के दर्शनार्थ गोकुल जाने के अतिरिक्त वे गोवर्धन छोड़ कर कहीं नहीं गये। 'मुंशियात अबुल फ़ज़ल' में लिखा है कि एक बार अकबर बादशाह ने सूरदास को अपने से मिलने के लिए प्रयाग में बुलवाया था, किंतु यह उल्लेख किसी अन्य सूरदास से संबंध रखता है। हमारे सूरदास तो पूर्णतया विरक्त थे, अतः राज्य कार्य ही नहीं, प्रत्युत् बाह्य जगत् से भी उनका कुछ संबंध नहीं था। वे श्रीनाथ जी की सेवा छोड़ कर कहीं जाना भी नहीं चाहते थे। एक बार सं० १६२३ में जब उनको श्रीनाथ जी के स्वरूप (मूर्ति) के साथ मथुरा जाना पड़ा, तो वहाँ पर वे श्रीनाथ जी के साथ २ माह और २२ दिन तक रहे थे। उसी समय उनकी अकबर से भी भेंट हुई थी, जिसका विस्तार पूर्वक उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया जावेगा। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा हुआ है कि कुंभनदास और परमानंददास के कारण जब सूरदास को श्रीनाथ जी के कीर्तन से कुछ अवकाश मिलता, तो वे नवनीतप्रिय जी के सम्मुख कीर्तन करने गोकुल जाया करते थे[1]। ऐसे अवसर सं० १६२८ के बाद ही आये होंगे, जब गो० विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे।

सूरदास की रचना में गोकुल, मथुरा और वृंदाबन का उल्लेख[2] प्राप्त होने से उनका उक्त स्थानों में जाने का अनुमान होता है। उनके मथुरा और गोकुल में कार्यवशात् जाने का उल्लेख तो वार्ता में भी मिलता है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, किंतु उनके वृंदाबन जाने का उल्लेख वार्ता में प्राप्त नहीं है। उनकी भक्ति-भावना को देखते हुए यह अनुमान होता है कि वे श्रीनाथ जी प्रभृति स्वरूपों की सेवा छोड़ कर अधिक समय तक वृंदाबन आदि किसी स्थान में नहीं रह सकते थे। इस संबंध में वार्ता में दिया हुआ कृष्णदास अधिकारी का वृंदाबन वाला प्रसंग द्रष्टव्य है[3]। उनकी रचना के

---

१. 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (अग्रवाल प्रेस) में 'अष्ट० की वार्ता', पृ० १६

२. (१) ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।
(उस पद में गोकुल, वृंदाबन का उल्लेख हुआ है)
(२) वृंदाबन एक पलक जो रहियै।
'सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी भाग्य बिना कहाँ ते पैयै॥

३ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस में अष्ट० की वार्ता पृ० १३

वृंदाबन वाले उल्लेख से यह संभावना होती है कि वे शायद महाप्रभु बल्लभाचार्य जी अथवा गो० विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्हीं के साथ ब्रज-यात्रा करते हुए वृंदाबन गये हों, अथवा स्वदेश से गऊघाट जाते समय जब वे मथुरा आये थे, तब वे संभवतः वृंदाबन भी गये हों । वृंदाबन में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी की बैठकें विद्यमान हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि पुष्टि संप्रदाय के आरंभिक इतिहास से वृंदाबन का भी संबंध है। ऐसी दशा में किसी समय सूरदास का वहाँ जाना असंभव नहीं है।

सूरदास द्वारा श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने का उल्लेख वार्ता के अतिरिक्त उनके निम्न लिखित पदांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होता है—

'सूर कूर आँधरौ, हौं द्वार पर्यौ गाऊँ।'

इसके अतिरिक्त बल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार पवित्रा एकादशी, रथ यात्रा, छप्पन भोग एवं अष्ट समय की सेवा के विशिष्ट पदों की रचना द्वारा सूरदास का मंदिर की कीर्तन-सेवा से घनिष्ट संबंध सिद्ध होता है।

श्रीनाथ जी के प्रति आसक्ति—

सूरदास के इष्टदेव श्रीनाथ जी थे, अतः उन्हीं के प्रति उनकी पूर्ण आसक्ति थी। उन्होंने श्रीनाथ, गोवर्धनधर, गोपाल आदि नामों से उनके प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रकट की है, जैसा कि निम्न लिखित कतिपय पदों से स्पष्ट है—

१. **अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी।**
   श्रीनाथ सारंगधर कृपा करि मोहि, सकल अघ हरन हरि गरुड़गामी॥

२. **श्री गोवर्धनधर प्रभु, परम मंगलकारी।**
   उधरे जन 'सूरदास' ताकी बलिहारी॥

इन उल्लेखों से सूरदास का श्रीनाथ जी के प्रति इष्टदेव का संबंध पु[ष्ट] होता है। भक्ति-भाव से श्रीनाथ जी की उपासना और निष्काम भाव [से] उनकी कीर्तन-सेवा करते हुए उनको अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त ह[ो] गया था। इस बात का उल्लेख "स्याम कह्यौ 'सूरदास' सों मेरी लीला सर[स] बनाय", अथवा "तब बोले जगदीस जगत गुरु सुनहु 'सूर' मम गाथ" इत्या[दि] कथनों में स्पष्टतया मिलता है

'सूरसागर' नाम की प्रसिद्धि—

गोवर्धन में स्थायी रूप से रहने के अनंतर सूरदास ने महाप्रभु जी द्वारा प्राप्त भावतोक्त ज्ञान के आधार पर भगवल्लीलाओं का गायन किया था, जिसके कारण महाप्रभु जी उनको 'सागर' के नाम से संबोधन करते थे।

सूरदास को 'सागर' कहने का तात्पर्य यह था कि उनके हृदय में दशविध लीलाओं की स्थिति हो चुकी थी। उन्हीं लीलाओं की अनेक भाव-तरंगो को सूरदास ने अपने असंख्य पदों में व्यक्त किया है। ये पद संतप्त जीवों को सदा शांति देने वाले हैं।

महाप्रभु जी के इस मंगलाचरण से लीला-समुद्र वाली बात की पुष्टि होती है—

"नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनं ।
लक्ष्मी सहस्र-लीलाभि: सेव्यमानं कलानिधिम् ॥"

महाप्रभु जी इस मंगलाचरण में लीलाओं की उपमा क्षीर समुद्र से देते है। इस अनंत लीला रूपी समुद्र की स्थापना महाप्रभु ने भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका और समस्त भागवत के सार समुच्य स्वरूप "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" के यथार्थ ज्ञान द्वारा सूरदास के हृदय में की थी। इसी से वे "सागर" हो गये थे। महाप्रभु जी द्वारा सूरदास को "सूरसागर" कहने का यही अभिप्राय था। बाद में यह नाम इतना प्रचलित हुआ कि सूरदास की रचनाएँ भी उक्त नाम से प्रसिद्ध हो गईं।

महाप्रभु जी द्वारा 'सागर' कहने पर सूरदास अपनी दीनता दिखलाते थे जिसका उल्लेख उनकी निम्न रचना में इस प्रकार हुआ है—

है हरि मोहू तें अति पापी ।
सागर 'सूर' विकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी ॥

अष्टछाप की स्थापना—

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन का जो 'मडान प्रचलित किया था, उसके सर्व प्रथम नियमित कीर्तनकार सूरदास उनके पश्चात् परमानंददास हुए। कुंभनदास यद्यपि सूरदास से भी पूर्व कीर्त करते थे, किंतु वे गृहस्थ होने के कारण नियमित रूप से अपना समय देने असमर्थ थे। इस प्रकार महाप्रभु जी के समय में सूरदास एवं परमानंद नियमित रूप से श्रीनाथ जी की सभी झाँकियों में कीर्तन करते थे और कुंभ दास अपने उनको सहयोग देते थे महाप्रभु जी के पश्

गोपीनाथ जी के समय में भी यही क्रम चलता रहा । गो० विट्ठलनाथ जी के समय में इस कीर्तन-प्रणाली को व्यवस्थित एवं विस्तृत किया गया, और श्रीनाथ जी की आठों समय की झाँकियों के पृथक्-पृथक् कीर्तनकार नियत किये गये । उस समय तक सर्वोच्च श्रेणी के कई अन्य कीर्तनकार भी संप्रदाय में सम्मिलित हो चुके थे, अतः गो० विट्ठलनाथ जी ने संप्रदाय के प्रमुख आठ कीर्तनकारों को श्रीनाथ जी के मंदिर में नियमित रूप से कीर्तन करने को नियत किया । उनमें से सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास और कृष्णदास—ये चार महाप्रभु जी के सेवक थे तथा छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास—ये चार गोसाईं जी के सेवक थे ।

गो० विट्ठलनाथ जी ने श्री गोपीनाथ जी का निधन होते ही सं० १६०० में एक ब्रजयात्रा की थी । उस समय उन्होंने श्रीनाथ जी के मंदिर की सेवा का विस्तार करने की इच्छा प्रकट की, किंतु उसमें द्रव्य की आवश्यकता थी । इसके लिए उन्होंने उसी वर्ष गुजरात का प्रथम 'प्रदेश' किया । उस 'प्रदेश' में प्राप्त समस्त द्रव्य उन्होंने श्रीनाथ जी के अर्पण कर दिया, जिससे व्यवस्थित रूप में सेवा का विस्तार किया गया । यह कार्य सं० १६०१ से सं० १६०२ में हुआ था ।

सेवा के भोग, राग और शृंगार प्रमुख अंग हैं । गो० विट्ठलनाथ जी ने उक्त तीनों अंगों को व्यवस्थित एवं विस्तृत किया था । सेवा का रागात्मक अंग कीर्तन है, जिसका विस्तार अनेक राग-रागिनी और वाद्य यंत्रों के साथ किया गया । श्रीनाथ जी के आठ समय के दर्शनों के आठ प्रमुख कीर्तनकार थे, जो 'अष्टछाप' अथवा 'अष्ट काव्य वारे' कहलाते थे । इन कीर्तनकारों में सूरदास प्रमुख थे ।

अनुसंधान से ज्ञात होता है कि नंददास के अतिरिक्त 'अष्टछाप' के अन्य सात कवि सं० १६०२ तक श्रीनाथ जी कीर्तन-सेवा में उपस्थित हो चुके थे । नंददास सं० १६०७ के लगभग गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक होकर पुष्टि संप्रदाय में सम्मिलित हुए थे । ऐसा ज्ञात होता है कि वे सेवक होने के अनंतर कुछ समय तक ब्रज में रह कर बाद में अपने जन्म-स्थान को चले गये थे और सं० १६२० के पश्चात् वे स्थायी रूप से गोवर्धन में आकर रहने लगे थे* । उस समय वे अपनी काव्य-संगीत विषयक योग्यता के कारण अष्टछाप में भी सम्मिलित किये गये । इससे पूर्व अष्टछाप के आठवें कीर्तनकार

---

* इसका विस्तार पूर्वक कथन आगामी पृष्ठों में किया गया है

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सेवक विष्णुदास छीपा थे। यही कारण है कि श्री द्वारकानाथ जी महाराज उपनाम 'द्वारकेश' कृत छप्पय में नंददास के स्थान पर विष्णुदास का नाम मिलता है[1]। जब नंददास दुबारा ब्रज में आये, तब विष्णुदास छीपा अत्यंत वृद्ध होने के कारण गोसाईं जी के द्वार-रक्षक बनाये गये और नंददास उनके स्थान पर श्रीनाथ जी के कीर्तनकार नियत किये गये।

श्रीनाथ जी की अनन्य भक्ति के कारण अष्टछाप के आठों कवियों को अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त था। वार्ता में लिखा है कि स्वयं श्रीनाथ जी सखा भाव से उनके साथ खेलते थे। इन कारणों से वे 'अष्टसखा' के नाम से भी प्रसिद्ध हुए और श्रीमद्भागवत के आधार पर उनके सखात्व के नाम भी निश्चित किये गये। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं को निम्न नामों से संबोधित किया है—

हे कृष्ण स्तोक, हे अंशो, श्रीदामन् सुबलार्जुन।
विशालर्षभ तेजस्विन्, देवप्रस्थ वरूथप[2] ॥

उपर्युक्त एकादश सखाओं मे कृष्ण से ऋषभ तक के आठ नाम सूरदास आदि आठों भक्त कवियों के माने गये हैं। इन आठों में सूरदास मुख्य थे, अतः उनका नाम 'कृष्ण' सर्वथा उचित भी था। सूरदास की रचनाओं में जो 'सूरश्याम' नाम की छाप मिलती है, उसका कारण भी उनका यह 'कृष्ण' नाम ही ज्ञात होता है।

अष्टछाप के कवियों का पारस्परिक संबंध—

यद्यपि 'अष्टछाप' में सूरदास को प्रधानता दी गयी है, तथापि वे आठों महानुभाव एक दूसरे के प्रति अत्यंत आदर और नम्रता का भाव रखते थे। भावप्रकाश वाली वार्ता से ज्ञात है कि सूरदास कभी-कभी परमानंददास से मिलने उनकी कुटिया पर जाया करते थे और उनसे संप्रदायिक रहस्यों के संबंध में बातचीत करते थे[3]। इसी प्रकार पदमानंददास एवं कुंभनदास का परस्पर मिलना और उनका कृष्णदास अधिकारी के पास जाना भी वार्ता से सिद्ध है[4]।

१. बंबई से प्रकाशित 'श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता'
२. श्रीद्भागवत, दशम स्कंध पूर्वार्द्ध, अध्याय २२
३. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट० वार्ता, पृ० ५१
४ चौरासी वैष्णवन की वार्ता प्रेस में अष्ट० वार्ता पृ० १२

इससे ज्ञात होता है कि वे परमोच्च श्रेणी के संत होने के कारण अत्यत नम्र भाव रखते थे और उनमें बड़प्पन का लेशमात्र भी अभिमान नही था ।

सूरदास जहाँ संत स्वभावानुसार अत्यंत विनम्र थे, वहाँ वे स्पष्टवादी भी थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं के भावापहरण के कारण कृष्णदास अधिकारी को एक बार टोका भी था[1] ।

ऐसा ज्ञात होता है कि सूरदास और नंददास का घनिष्ट संबंध था। वार्ता में लिखा है कि नंददास को सांप्रदायिक ज्ञान की शिक्षा सूरदास से प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त नंददास की रचनाओं में सूरदास के भावों की स्पष्ट छाया दिखलायी देती है, किंतु वार्ता से यह ज्ञात नहीं होता कि कृष्णदास अधिकारी की तरह नंददास को भी सूरदास ने कभी टोका हो। इसलिए यह अनुमान होता है कि नंददास ने सांप्रदायिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि काव्य विषयक ज्ञान भी किसी रूप में सूरदास से ही प्राप्त किया था।

अकबर से भेंट—

"चौरासी वार्ता" में सूरदास और अकबर की वार्ता का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। इस भेंट का विस्तारपूर्वक वर्णन 'अष्टसखान की वार्ता' में किया गया है[2]। इससे ज्ञात होता है कि तानसेन से सूरदास का एक पद सुनने पर अकबर ने सूरदास से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। सूरदास से मिलने की उत्सुकता में अकबर ने अपने सेवकों को उनकी खोज के लिए गोवर्धन भेजा, किंतु वहाँ ज्ञात हुआ कि सूरदास मथुरा में हैं। अंत में सूरदास और अकबर की भेंट हुई। अकबर के कहने पर सूरदास ने 'मन रे! तू कर माधौ सों प्रीत' नामक जिस उपदेशात्मक पद का गायन किया था, वह 'सूर पच्चीसी' के नाम से प्राप्त है।

सूरदास का अलौकिक गायन सुन कर अकबर बड़ा प्रसन्न हुआ। वार्ता मे लिखा है कि जब अकबर ने उनसे अपना यश वर्णन करने को कहा तो सूरदास ने निम्नलिखित पद गायन किया—

> **नाहिंन रह्यो मन में ठौर ।**
> **नंदनंदन अछत कैसे आनिऐ उर और ?**
> **स्याम गात, सरोज आनन, ललित अति मृदु हास ।**
> **'सूर' ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास ।।**

---

१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट० वार्ता, पृ० ११५

२ चौरासी वै० वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्टसखान की वार्ता' पृ० १४

उक्त पद के गायन से सूरदास ने अकबर को बतला दिया कि उनके हृदय में भगवान् श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के लिए स्थान नहीं है, अतः उनके द्वारा किसी व्यक्ति का यश वर्णन करना भी संभव नहीं है। सूरदास की उस सारगर्भित स्पष्टोक्ति सुनकर अकबर चुप हो गया, किंतु उपर्युक्त पद की अंतिम पंक्ति के संबंध में उसने सूरदास से प्रश्न किया—"सूरदास जी, तुम्हारे नेत्र तो हैं ही नहीं, फिर उनको रूप की प्यास किस प्रकार हो सकती है ?" वार्ता मे लिखा है कि अकबर के इस प्रश्न का सूरदास ने कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु अकबर जैसे गुणग्राहक और साधुसेवी नरेश का इस संबंध में स्वतः समाधान हो गया।

अकबर से सूरदास की संबंधी वार्ता के उपर्युक्त कथन की पुष्टि सूरदास की रचना के अंतःसाक्ष्य अथवा किसी बहिःसाक्ष्य से भी अभी तक स्पष्ट रूप से नहीं हो सकी है, किंतु कुंभनदास और हरिदास आदि से अकबर का मिलना प्रमाणित है, इसलिए सूरदास जैसे महान् कवि और गायक से भी अकबर का मिलना सर्वथा संभव है। अकबर संगीत का प्रेमी और साधु-संतो का आदर करने वाला गुणग्राही नरेश था। सूरदास अपने समय के विख्यात कवि, गायक और महात्मा थे, अतः अकबर द्वारा उनसे मिलने की बात निराधार नहीं हो सकती है।

सूरदास और अकबर का मिलन हमारे अनुमान से सं० १६२३ में मथुरा मे हुआ होगा। सांप्रदायिक इतिहास से ज्ञात होता है कि सं० १६२३ की फाल्गुन कृ० ७ को गो० विट्ठलनाथ जी की अनुपस्थिति में उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरधरजी श्रीनाथ जी के स्वरूप को गोवर्धन से मथुरा में ले गये थे। उस समय श्रीनाथ जी की सेवा के लिए सूरदास भी मथुरा गये थे। उस अवसर पर श्रीनाथ जी २ माह २२ दिन पर्यंत मथुरा में रहे थे और उस अवधि में सूरदास को भी उनकी कीर्तन-सेवा करते हुए मथुरा में ही रहना पड़ा था।

अकबर सं० १६१३ में बादशाह हुआ था और सं० १६२१ में तानसेन उसके दरबार में आया था। सं० १६२३ में अकबर का मथुरा जाना इतिहास प्रसिद्ध है, अतः तानसेन की प्रेरणा से उसी संवत् में सूरदास का अकबर से मिलना सर्वथा संगत है। इसी से सं० १६२३ में अकबर-सूरदास की भेंट होने का हमारा अनुमान भी प्रामाणिक सिद्ध होता है। डा० दीनदयाल गुप्त के मतानुसार यह भेंट मथुरा में सं० १६३६ के लगभग हुई थी*, किंतु उक्त संवत् मे सूरदास का मथुरा में रहना प्रमाणित नहीं होता है, अतः इसका समय स० १६३६ की अपेक्षा सं० १६२३ ही अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है।

* अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० २१८

सूर-तुलसी मिलन—

वार्ता,भक्तमाल की टीका और मूल गुसाईं चरित में सूरदास और तुलसीदास की भेंट का उल्लेख किया गया है। वार्ता और भक्तमाल द्वारा इस भेंट का संवत् ज्ञात नहीं होता है, किंतु 'मूल गुसाईं चरित' में इसका संवत् १६१६ दिया गया है। 'मूल गुसाईं चरित' में लिखा है सं० १६१६ में श्री गोकुलनाथ जी ने सूरदास को कृष्ण-रंग में डुबोकर तुलसीदास से मिलने को भेजा था। चित्रकूट पर उनकी तुलसीदास से भेंट हुई। सूरदास ने तुलसीदास को स्वरचित सूरसागर दिखलाया और उसमें से दो पदों का गायन भी किया। इसके पश्चात् सूरदास ने तुलसीदास के चरणों में मस्तक नवाया और उनसे आशीर्वाद माँगा। सूरदास वहाँ पर सात दिन तक रहे। अंत में तुलसीदास ने गोकुलनाथ जी के नाम एक पत्र देकर उनको विदा किया[1]।

'मूल गुसाईं चरित' का उपर्युक्त कथन सर्वथा इतिहास विरुद्ध है। सं० १६१६ में गोकुलनाथ जी प्रायः ८ वर्ष के बालक थे, अतः उनके द्वारा सूरदास का भेजा जाना असंभव है।

हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि गोवर्धन आने के पश्चात् सूरदास कभी-कभी गोकुल या मथुरा जाने के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं गये। ऐसी दशा में अपनी ८१ वर्ष की वृद्धावस्था में श्रीनाथ जी की सेवा छोड़कर चित्रकूट जैसे सुदूर स्थान में उनका जाना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त सूरदास आयु में तुलसीदास से बड़े थे और उन्होंने काव्य-रचना भी तुलसीदास से बहुत पहले आरंभ कर दी थी। सं० १६१६ में सूरदास सहस्रों पदों की रचना कर चुके थे, जिनके कारण वे 'सागर' कहलाते थे। इसके विरुद्ध तुलसीदास ने उस समय तक 'रामचरित मानस' आदि अपने प्रमुख ग्रंथों की रचना का आरंभ भी नहीं किया था। ऐसी दशा में सूरदास का तुलसीदास के चरणों में नत-मस्तक होना भी असंगत कल्पना ज्ञात होती है। ऐसे ही कारणों से प्रायः समस्त प्रमुख विद्वानों ने 'मूल गुसाईं चरित' को अप्रामाणिक माना है। हम भी इसे अप्रामाणिक मानते हैं, अतः इसमें वर्णित सूर-तुलसी मिलन का वृतांत सर्वथा अग्राह्य है।

वार्ता में इस प्रसंग का संवत् नहीं दिया गया है, किंतु उसमें वर्णित घटनाओं की संगति से सूर-तुलसी मिलन और उसके काल की यथार्थता सिद्ध हो जाती है। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे। वे नंददास से परासोली में मिले[2]। परासोली

सूरदास का निवास-स्थान था। नंददास और सूरदास का जो काव्य-विषयक संबध हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं, उसके कारण नंददास का सूरदास के यहाँ आना-जाना होता ही था, अतः परासोली में नंददास से मिलने पर तुलसीदास की सूरदास से भेंट होना सर्वथा संभव है। वार्ता और श्री गोकुल-नाथ जी के वचनामृतों से ज्ञात होता है कि उस समय नंददास अपने भाई तुलसीदास को गोकुल में भी ले गये थे। वहाँ पर उन दिनों गो० विट्ठलनाथजी के पंचम पुत्र श्री रघुनाथ जी का विवाह हो रहा था[1]। रघुनाथ जी के विवाह का समय सं० १६२६ श्री गोकुलनाथ जी के स्फुट वचनामृतों की हस्त लिखित प्रति के निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है—

"ते तुलसीदास श्री गोकुल आये हते। ता दिन श्री रघुनाथ जी महाराज कौ विवाह हतौ। सो ठौर-ठौर आनंद होय रह्यौ हतौ। ता समें श्री रघनाथजी वर्ष पंद्रै के हते।"

रघुनाथ जी का जन्म सं० १६११[2] है। उपर्युक्त घटना के समय वे १५ वर्ष के थे, अतः उक्त घटना का समय सं० १६२६ निर्धारित होता है। ऐसी दशा में तुलसीदास के ब्रज-आगमन और उनके सूरदास से मिलने का समय भी सं० १६२६ ही सिद्ध होता है। सं० १६२० के पश्चात् नंददास गृहस्थ का त्याग कर विरक्त भाव से गोवर्धन में स्थायी रूप से रहने लगे थे, अतः सं० १६२६ में उनसे मिलने के लिए तुलसीदास का ब्रज में आना सर्वथा संभव है।

ब्रज में आने पर और वहाँ के वातावरण से प्रभावित होने पर तुलसीदास ने कुछ पदों की रचना भी की थी। वे पद उक्त घटना की स्मृति स्वरूप पुष्टि सम्प्रदाय के मंदिरों में परंपरा से गाये जाते हैं[3]। उक्त पद एवं कुछ अन्य

---

१. (१) प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३४६

(२) वार्ता साहित्य मीमांसा (गुजराती), पृ० ६ २. श्री वल्लभ वंशवृक्ष

३. (१) बरनौं अवध श्री गोकुल गाम।

उत बिराजत जानकी-बर, इतहिं स्यामा-स्याम॥

भक्त हित श्री राम-कृष्ण, सु धरचौ नर-अवतार।

दास 'तुलसी' दोऊ आसा, कोउ उबारो पार॥

(२) श्री रघुनाथ राम अवतार।

जानकी जीवन सब जग बंदन, कलि-मद-हरन, उतारन भार॥

श्री गोकुल में सदा विराजो, वचन पीयूस काम-निरवार।

'तुलसीदास' प्रभु धनुष-बान धरो चरनन देहुँ सीस तब डार।

रचनाओं के कारण तुलसीदास का ब्रज में आना प्रमाणित होता है[१]। तुलसीदास कृत 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' ब्रजभाषा में लिखी हुई और ब्रज के भक्ति-भाव से अनुप्राणित रचनाएँ हैं। इनके कारण भी तुलसीदास का ब्रज में आना और पुष्टि संप्रदाय के भक्तों से किसी रूप में प्रभावित होना अवश्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन के अनंतर हमारा मत है कि तुलसीदास सं० १६२६ में ब्रज में आये थे और उसी समय उनकी सूरदास से भी भेंट हुई थी।

गुरु-निष्ठा—

संसार के समस्त धर्म एवं संप्रदायों में अति प्राचीन काल से गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। आर्य शास्त्रों में तो गुरु को ईश्वर तुल्य बतलाया गया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

भारतवर्ष के संत एवं भक्तों में तो गुरु को ईश्वर से भी बढ़ कर बतलाया गया है। निम्न लिखित दोहा इसका प्रमाण है—

गुरु गोविंद दोनों खड़े, का के लागौं पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविंद दिये बताय ॥

इस प्रकार की मान्यता का कारण यह है कि गुरु द्वारा ही यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे जीव अपना वास्तविक कल्याण कर सकता है। 'गुरु बिना ज्ञान नहीं' यह कहावत इसीलिए लोक में चल पड़ी है। किंतु गुरु किस प्रकार का होना चाहिए, इसके संबंध में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का निम्न लिखित कथन विचारणीय है—

कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादि रहितं नरम् ।
श्री भागवततत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात्[२] ॥

महाप्रभु जी ने गुरु के जो तीन लक्षण बतलाये हैं, वे सब स्वयं उनमें विद्यमान थे, इसीलिए सूरदास उनमें और हरि में कोई अंतर नहीं समझते थे।

---

१ राधे राधे रटत हैं आक ढाक और कैर ।

वार्ता में लिखे गये सूरदास के देहावसान संबंधी प्रसंग से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है[1]।

सूरदास जिस प्रकार अपने दीक्षा-गुरु महाप्रभु जी को श्री हरि के रूप में देखते थे, उसी प्रकार उनके पुत्र गोसाईं जी को भी देखते थे। इसकी पुष्टि सूरदास की रचना और वार्ता के प्रसंगों से होती है। इसके अतिरिक्त वे महाप्रभु जी के पौत्रों का भी अत्यंत आदर करते थे, जैसा कि वार्ता में लिखित नवनीतप्रिय जी के शृंगार वाले प्रसंग से प्रकट है[2]।

लोक-कल्याण की भावना—

वीत रागी भक्त जन लोक एवं वेद के बाह्य धर्मों के प्रति प्रायः उदासीन होते हैं। वे एकांत स्थान में आत्म-चिंतन करते हुए परमानंद का अनुभव करते रहते हैं। इस प्रकार वे अपनी आत्मा का कल्याण तो कर लेते हैं, किंतु लोक-कल्याण के कार्यों में उनसे कोई सहायता प्राप्त नहीं होती। सूरदास परम विरक्त और परमोच्च श्रेणी के भक्त एवं संत होने के कारण ब्रह्मानंद में लीन तो रहते ही थे, किंतु वे लोक-कल्याणकारी कार्यों के प्रति भी उदासीन नहीं थे।

अपनी स्वामी अवस्था से ही उनके पास अनेक जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। सूरदास अपने सदुपदेश द्वारा उनको सत्मार्ग पर लाते थे। वल्लभ संप्रदाय के सेवक होने के अनंतर उनकी प्रकृति में दैन्य भाव की विशेष वृद्धि हो गई थी, फिर भी वे अपने नम्र उपदेशों द्वारा अनेक व्यक्तियों का कल्याण करते थे।

वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने उपदेश से चौपड़ खेलते हुए कुछ व्यक्तियों और गोपालपुर निवासी एक द्रव्यासक्त वैश्य को सन्मार्ग दिखलाया था[3]।

उपस्थिति-काल—

सूरदास की विशाल-काय काव्य-रचना और उनके काव्य के अंतःसाक्ष्य से यह भली भाँति ज्ञात होता है कि वे बहुत बड़ी आयु तक जीवित रहे थे। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनकी वृद्धावस्था की पुष्टि होती है।

१. चौरासी वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में 'अष्टसखान की वार्ता', पृ० २९, ३०
२. " " " पृ० १७, १८
३ , , , पृ० ११ २०

सूरदास के पदों की निम्न लिखित पंक्तियाँ देखिये—

१. तीनों पन में ओर निबाही, इहै स्वाँग को काछें ।
'सूरदास' कों इहै बड़ौ दुख, परत सबन के पाछें ॥१, ७७॥

२. सबै दिन गए विषय के हेत ।
तीनों पन ऐसै ही बीते केस भए सिर स्वेत ॥१, १७५॥

३. विनती करत मरत हौं लाज ।
नख-सिख लौं मेरी यह देही, है पाप की जहाज ॥
और पतित न आवें आँख तर, देखत अपनो साज ।
तीनों पन भरि बहोरि निबाह्यौ, तोउ न आई लाज ॥

उपर्युक्त पदों से ज्ञात होता है कि सूरदास अपने तीनों पन—बाल्य, युवा एवं वृद्धावस्था को पार कर अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। सूरदास अत्यंत वृद्धावस्था तक जीवित थे, यह निश्चित है; किंतु उनकी स्थिति इस भूतल पर किस संवत् तक रही, यह विचारणीय है। इसके विवेचन के लिए हम सूरदास की रचना के कुछ अंत-साक्ष्य उपस्थित करते हैं और पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से उनकी संगति मिलाते हुए उनके उपस्थिति-काल पर भी विचार करते हैं।

सूरदास कृत 'छप्पन भोग' का एक पद उपलब्ध है, जो इस प्रकार है—

भोजन करत गोवर्धन-धारी ।
छप्पन भोग, छतीसों व्यंजन, परोस धरे ललिता री ।
अचवन कों लाई चंद्रावलि, भरि यमुनोदक झारी ॥
सुगंध बीड़ी आरोगावति, विसाखा अंग-अंग फूलत भारी ।
मुकुर दिखावति चंपकलता, 'सूरदास' बलिहारी ॥

इस पद में श्रीनाथ जी के छप्पन भोग का वर्णन है। सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि यह छप्पन भोग सं० १६१५ की मार्गशीर्ष शु० १५ को हुआ था। उसकी स्मृति में तब से अब तक बराबर प्रति वर्ष मार्गशीर्ष शु० १५ को श्रीनाथ जी के यहाँ छप्पन भोग का मनोरथ होता है। इससे ज्ञात होता है कि सं० १६१५ तक सूरदास उपस्थित थे।

इसके अनंतर 'रथ-यात्रा' के निम्न लिखित पद पर विचार कीजिये

इस पद के अंत:साक्ष्य की संगति बल्लभ संप्रदाय के इतिहास से मिलाने पर सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२२ पर्यंत अवश्य निश्चित होती है। सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि बल्लभ संप्रदाय में रथयात्रा का उत्सव सं० १६१७ से आरंभ हुआ है। इससे पहले संप्रदाय में रथोत्सव नहीं होता था। यह उत्सव सर्व प्रथम श्री नवनीत प्रिय जी का अड़ैल मे हुआ था।

सं० १६१६ में जब अड़ैल में राजकीय उपद्रव की आशंका हुई तब गो० विट्ठलनाथ श्री नवनीतप्रिय जी का स्वरूप (मूर्ति) और अपने कुटुंब को लेकर रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा नामक स्थान में चले गये थे, जहाँ वे प्राय: दो वर्ष तक रहे। गढ़ा वर्तमान मध्य प्रांत के जब्बलपुर नगर के निकट इतिहास-प्रसिद्ध रानी दुर्गावती की राजधानी था। गो० विट्ठलनाथ जी की पत्नी रुक्मिणी जी का देहांत सं० १६१६ में हो चुका था। इनसे गोसाईं जी को १० संतान—६ पुत्र एवं ४ पुत्रियाँ थीं। रानी दुर्गावती के आग्रह से सं० १६२० की अक्षय तृतीया के दिन सजातीय कन्या पद्मावती के साथ गोस्वामी जी को अपना दूसरा विवाह करना पड़ा। सं० १६२१ मे जब गढ़ा में भी रानी दुर्गावती और अकबर के युद्ध की संभावना हुई, तब विट्ठलनाथ जी गढ़ा से प्रयाग होते हुए सं० १६२२ में मथुरा आ गये थे। मथुरा से गोकुल गये, किंतु वहाँ पर जन्माष्टमी के उत्सव पर दही दूध के छींटों के कारण गोसाईं जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरधरजी की महाबन के भोमियाओं से काफी कहा-सुनी हो गयी। उस समय गोसाईं जी गोवर्धन में थे। इस उपद्रव का समाचार सुनकर वे गोवर्धन से गोकुल आये और उपद्रव अधिक न बढ़े, इसलिए अपने कुटुंब सहित गोकुल ने फिर मथुरा आ गये और रानी दुर्गावती द्वारा निर्मित भवन में रहने लगे। सं० १६२८ में राजा बीरबल की सहायता से गोसाईं जी को जब अकबर द्वारा गोकुल बसाने की आज्ञा प्राप्त हुई और वहाँ की सुरक्षा का भी यथोचित प्रबंध हो गया, तब गोसाईं जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे।

उपर्युक्त पद के 'सूरदास गोकुल के बासी प्राननाथ वर पावे' वाले कथन से यह सिद्ध होता है कि तब तक गोसाईं विट्ठलनाथ गोकुल मे बस चुके थे। यह उल्लेख सं० १६२२ से भी संबंधित हो सकता है और सं० १६२८ से भी, अत: उपर्युक्त उल्लेख के कारण सूरदास की उपस्थिति कम से कम स० १६२२ तक अवश्य मानी जा सकती है।

अकबर से सूरदास की भेंट का समय भी उनके उपस्थिति-काल पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। हमने गत पृष्ठों में इस भेंट का समय सं० १६२३ निश्चित किया है, अतः सूरदास की उपस्थिति सं० १६२३ पर्यंत मानी जा सकती है।

'अष्टसखान की वार्ता' से ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन के लिए जब कुंभनदास एवं परमानंददास का 'ओसरा' आता था, तब कभी-कभी सूरदास नवनीतप्रिय जी के मंदिर में कीर्तन करने के लिए गोकुल जाया करते थे। उस समय ठाकुर जी का जैसा शृंगार होता था, उसका सूरदास नेत्र विहीन होते हुए भी यथावत् वर्णन करते थे। एक बार गोसाईं जी के पुत्रों ने सूरदास की परीक्षा के लिए नवनीतप्रिय जी को वस्त्र न पहरा कर केवल मोतियों का शृंगार किया और सूरदास को बतलाए बिना उनसे कीर्तन करने को कहा। सूरदास जी ने उस समय जिस पद का गायन किया था, उसका कुछ अंश निम्न प्रकार है—

देखे री हरि नंगम-नंगा।
जल-सुत भूषन अंग विराजति, बसन हीन छवि उठत तरंगा॥

उपर्युक्त उल्लेख से सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२८ पर्यंत अवश्य मानी जा सकती है, क्योंकि उसी संवत् में गोसाईं विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे, तभी नवनीतप्रिय जी का मोतियों का शृंगार और 'ओसरा' के अनुसार सूरदास द्वारा उनके कीर्तन करने का अवसर आया था।

अष्टछाप के कवि कृष्णदास रचित बसंत का एक पद नीचे दिया जाता है। इससे सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६३८ तक मानी जा सकती है। वह पद इस प्रकार है—

(राग बसंत)

खेलत बसंत वर विट्ठलेस राय। निज सेवक सुख देखत आय॥
श्री गिरधर राजा बुलाय। श्री गोविंदराय पिचकारी लाय॥
श्री बालकृष्ण छबि कही न जाय। श्री गोकुलनाथ लीला दिखाय॥
रघुनाथलाल अरगजा लाय। श्री जदुनाथ चोवा मँगाय॥
घनस्याम धाय फेंटन भराय। सब बालक खेलत एक दाय
[illegible] [illegible] है धाय। [illegible] द चोरि गसाल लाय।

चत्रभुज प्रभु केसर माँट भराय । छीतस्वामी हु बूका फेंकें जाय ।।
नंददास निरखि छबि कहत आय । गावैं कुंभनदास बीना बजाय ।।
तब गोविंद बोलि छिरकें आय । कोउ नाँचत देह दसा भुलाय ।।
सब बालक हो हो बोलें जाय । उड्यौ अबीर गुलाल घुंधर फराय ।।
पिचकाई इत उत छींटे जाय । कोउ फेंकत फूलन अपने भाय ।।
कोउ चोबा लै छिरकै बनाय । बाजें ताल मृदंग उपंग भाय ।।
बिच बाजत मुहचंग मुरली जाय । कोऊ डफ लै महुवरि सों मिलाय ।।
एक नाचत पग नूपुर बजाय । बाढयौ सुख समुद्र कछु कह्यौ न जाय ।।
सब बालक भीने अंग चुवाय । भक्तन घर घर सुख ही छाय ।।
सोभा कहे कहा कवि हू बनाय । यह सुख सब सेवक दिखाय ।।
सुर कुसुमन बरखत आय आय । सब गावत मीठी गारि भाय ।।
सब अपने मनोरथ करत आय । तहाँ 'कृष्णदास' बलिहारी जाय ।।

उक्त पद में सूरदास सहित अष्टछाप के आठों कवि, गोसाईं विट्ठलनाथ उ
[व उनके सातों बालकों का नामोल्लेख हुआ है । गोसाईं जी के सप्तम पु
[नश्याम जी का जन्म सं० १६२८ निश्चित है* । बसंत खेलते समय उनक
[ायु कम से कम १० वर्ष की मानी जाय, तो सं० १६३८ तक सूरदास क
[पस्थिति सिद्ध होती है ।

अब सूरदास कृत निम्न रचना के कारण उनकी उपस्थिति सं० १६४
[लगभग मानी जा सकती है—

भोजन भयौ भाँवतो मोहन । तातौ ई जेंय जाहुगे गोहन ।।
खीर खाँड़ खीचरी सँवारी । मधुर महुर अरु गोपिन प्यारी ।।
राजभोग लौंनों भात पसाय । मूंग ढरहरी हींगु लगाय ।।
सद माखन तुलसी दै छायौ । घृत सुबास कचौरिन नायौ ।।
पापर, बरी, अचार परम रुचि । अद्रक अरु निबु आनि ह्वै हैं रुचि ।।

× × ×

'सूरदास' देख्यौ गिरिधारी । बोलि दई हँसि झूठनि थारी ।।
वह जेंवनार सुनै जो गावै । सो निज भक्ति अभय पद पावै ।।

उपर्युक्त रचना में 'राजभोग' में 'छप्पन भोग' की भावना की गयी है
[ाम्प्रदायिक इतिहास के अनुसार इस का समय सं० १६४० वि० है । उस व

* श्री बल्लभ वंशवृक्ष

में गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने श्री नवनीतप्रिय जी की प्रधानता में सब निधि-स्वरूपों को एकत्रित कर गोकुल में राजभोग करते हुए छप्पन भोग की भावना मात्र की थी।

छप्पनभोग की भावना करने का कारण यह था कि जब सं० १६१५ मे गोसाईं जी ने श्रीनाथ जी का छप्पन भोग किया था, तब उन्होंने अपने स्थायी निवास अड़ैल स्थित श्री नवनीतप्रिय जी का छप्पन भोग करने का निश्चय किया था, किंतु कई असुविधाओं के कारण उनकी मनोभिलाषा तत्काल पूर्ण न हो सकी। सं० १६१५ के अनंतर गुसाईं जी जगदीश और गौड़ देश की यात्रा को चले गये। वहाँ से वापिस आने पर सं० १६१६ में उनको प्रथम पत्नी रुक्मणी जी का देहावसान हो गया। इसके पश्चात् वे गढ़ा और गढ़ा से मथुरा होकर गोकुल आये, किंतु उनको फिर सं० १६२२ में मथुरा में रहना पड़ा। सं० १६२३ में वे गुजरात की यात्रा करने गये। इसके बाद सं० १६२८ में वे स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे; किंतु पुत्रों के यज्ञोपवीत, पुत्र-पुत्रियों के विवाह और सभी बालकों के पृथक्-पृथक् निवास स्थान बनवाने मे उनको यथेष्ट व्यय करना पड़ा। इसी बीच में उनको दो बार द्वारिका जैसे सुदूर प्रदेश की यात्रा करनी पड़ी। सं० १६३८ के पश्चात् उन्होंने अपने सातो पुत्रों का बँटवारा कर दिया। इस प्रकार गृहस्थ कार्यों से निश्चिंत होकर और अपना अंतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने अपना मनोरथ पूर्ण करने का विचार किया। किंतु उस समय उन पर कुछ ऋण भी हो गया था, अत वे अपनी इच्छानुसार छप्पन भोग की सांगोपांग पूर्ति नहीं कर सकते थे; इसलिए उन्होंने श्री नवनीतप्रिय जी प्रधानता में सब निधि-स्वरूपों को एकत्रित कर राजभोग में ही छप्पन भोग की भावना द्वारा अपने पूर्व मनोरथ की पूर्ति की थी। यदि उत्सव को छप्पन भोग की प्रणाली से तथावत् किया जाता, तो उसमें द्वादश मास के सभी उत्सवों का करना भी आवश्यक हो जाता, जो कि उस समय की स्थिति के अनुसार संभव नहीं था; अतः गुसाइं जी ने सब प्रकार की सामग्री राजभोग में 'अरोगा' कर छप्पनभोग की भावना मात्र थी। सूरदास ने इसीलिए इस मनोरथ को छप्पन भोग का नाम न देकर 'जेंवनार कहा है; जब कि माणिकचंद, भगवानदास आदि गोसाईं जी के अन्य सेवकों ने अपने-अपने पदों में इसे छप्पन भोग ही कहा है।

उक्त पद के 'सूरदास देख्यौ गिरधारी' वाला कथन श्री नवनीतप्रिय जी के निकट भावना से पधराये हुए श्रीनाथ जी के स्वरूप का सूचक है। इससे भावना' वाले कथन की भी पुष्टि होती है इस उल्लेख के कारण सूरदास जी

की उपस्थिति सं० १६४० के आस-पास सिद्ध हो जाती है। चतुर्भुजदास कथित 'खट ऋतु की वार्ता'* में भी श्रीनाथ जी के साथ सातों स्वरूपों के प्रथम अन्नकूट का जो उल्लेख हुआ है, उसका समय भी सं० १६४० ही आता है। उस अवसर पर सूरदास जी की उपस्थिति का भी उल्लेख हुआ है, अतः इससे भी सूरदास की उपस्थिति सं० १६४० तक मानी जा सकती है।

इस प्रकार अंतःसाक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्यों से सूरदास का उपस्थिति-काल सं० १६४० पर्यंत सिद्ध होता है।

देहावसान—

अपना अंतिम समय निकट जान कर एक दिन सूरदास श्रीनाथ जी की मंगला-आरती कर परासौली चले गये। वहाँ पर पहुँच कर श्रीनाथ जी के मंदिर की ध्वजा को साष्टांग प्रणाम कर वे उसके सन्मुख मुख कर एक चबूतरे पर लेट गये। अंत में सब ओर से चित्त की वृत्ति हटा कर वे श्रीनाथ जी एवं गुसाईं जी का ध्यान करते हुए अपने अंतिम समय की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर श्रीनाथ जी शृंगार-झाँकी के अवसर पर सूरदास को अनुपस्थित देख कर गुसाईं विट्ठलनाथ जी को उनके विषय में शंका हुई। सूरदास का यह नियम था कि वे श्रीनाथ जी के शृंगार के समय प्रति दिन जगमोहन में उपस्थित होकर कीर्तन किया करते थे। गुसाईं जी के सेवकों ने उनको बतलाया कि आज प्रातःकाल की मंगला आरती के दर्शन कर और समस्त वैष्णवों को भगवत्-स्मरण करा कर सूरदास परासौली चले गये हैं। सूरदास का अंतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने समस्त वैष्णवों से कहा—"सूरदास पुष्टि मार्ग के जहाज हैं। अब उनके जाने का समय आ गया है। आप सब लोग उनके पास जाओ, और उनसे जो लेना हो, सो ले लो। हम भी श्रीनाथ जी के राजभोग की आरती के उपरांत वहाँ पर ही आते हैं।"

यह सुन कर गुसाईं जी के सेवक परासौली गये। उन्होंने वहाँ पर सूरदास को अचेतावस्था में पाया। कुछ समय पश्चात् गुसाईं विट्ठलनाथ भी वहाँ पर पहुँच गये। उनके साथ रामदास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुज-दास आदि कई वैष्णव भी थे।

गुसाईं जी ने सूरदास का हाथ पकड़ लर कहा—"सूरदास जी! क्या हाल है?" गुसाईं जी के शब्द सुनकर सूरदास ने तत्काल नेत्र खोल दिये और दंडवत करते हुए उनसे कहा—"महाराज! आप आ गये। मैं तो आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। आपने बड़ी कृपा की।"

---

* सदश प्रेस, से प्रकाशित पृ० ५३)

उसके अनंतर कुछ भगवत्-चर्चा करते हुए उन्होने निम्न लिखित पद कह कर अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया—

खंजन नैंन रूप-रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते ।
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते ॥

सूरदास के देहावसान की निश्चित तिथि का कहीं पर उल्लेख नहीं मिलता है। हमारे अनुमान से उनका देहावसान सं० १६४० के लगभग हुआ था। पुष्टि संप्रदाय के कुछ विद्वान और हिंदी साहित्य के अनेक लेखकों ने उनके देहावसान का संवत् १६२० लिखा है; किंतु उनका यह मत भ्रमात्मक है।

गत पृष्ठों में हम सूरदास की उपस्थिति सं० १६४० पर्यंत सिद्ध कर चुके हैं। ऐसी दशा में सं० १६२० में उनका देहावसान होना सर्वथा असंभव है। वार्ता के उल्लेखानुसार सूरदास का देहावसान गुसाईं विट्ठलनाथ जी की उपस्थिति में हुआ था। सांप्रदायिक इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६१६ से १६२१ तक गुसाई जी ब्रज में उपस्थित नहीं थे। सं० १६२० में वे रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा में थे। ऐसी दशा में सं० १६२० में सूरदास का देहांत परासौली में गो० विट्ठलनाथ की उपस्थिति में कैसे संभव हो सकता है?

गो० विट्ठलनाथ जी के देहावसान का संवत् १६४२ निश्चित है। इसके साथ ही सं० १६३८ के पश्चात् तक हम सूरदास की उपस्थिति प्रमाणित कर चुके हैं। ऐसी दशा में उनके देहावसान का समय सं० १६३८ से १६४२ के बीच में होना चाहिए।

'अष्टसखान की वार्ता' प्रसंग १० में श्री हरिराय जी ने बतलाया है कि जिस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण अपने भक्त यदुवंशियों का संसार से तिरोधान करा कर आप वैकुंठ में पधारे, इसी प्रकार श्री आचार्य जी महाप्रभु अंतर्ध्यान हो गये और गुसाईं जी को अभी होना शेष है। श्री गोसाईं जी भगवदीय जनो को नित्य लीला में उपस्थित करने के अनंतर ही पधारेंगे।

इस उल्लेख से सिद्ध है कि गोसाईं विट्ठलनाथ जी के निधन से कुछ समय पूर्व ही सूरदास का देहावसान हुआ होगा। गोसाईं जी का निधन-काल सं० १६४२ निश्चित है, अतः सूरदास का देहावसान सं० १६४० के लगभग सिद्ध होता है। गत पृष्ठों में बतलाये हुए उनके उपस्थिति-काल से भी इस संवत् की संगति बैठती है अत सूरदास का निधन सं० १६४० प्रमाणित होता है।

तृतीय परिच्छेद

ग्रंथ-निर्णय

★

सूरदास के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ—

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, प्राचीन पुस्तकालयो के अनुसंधान और आधुनिक विद्वानों के कथनों के अनुसार सूरदास के नाम से अधिक से अधिक निम्न लिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—

१. सूरसारावली, २. साहित्य-लहरी, ३. सूरसागर,
४. भागवत भाषा, ५. दशम स्कंध भाषा, ६. सूरसागर-सार,
७. सूर-रामायण, ८. मान लीला, ९. राधा रसकेलि कौतूहल
१०. गोवर्धन लीला (सरस लीला) ११. दान लीला
१२ भँवरगीत, १३. नाग लीला, १४. ब्याहलो,
१५. प्राणप्यारी, १६. दृष्टिकूट के पद, १७. सूर-शतक,
१८. सूर-साठी, १९. सूर-पचीसी, २०. सेवा-फल,
२१ सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद, २२. हरिवंश टीका (संस्कृत)
२३. एकादशी माहात्म्य, २४. नल-दमयंती, २५. राम-जन्म

इन ग्रंथो के अतिरिक्त कांकरौली सरस्वती भंडार में सूरदास कृत स्वरूप वर्णन, चरण-चिह्न वर्णन और दो बारहमासा भी मिलते हैं, जिन्हें हम स्फुट पदो के अंतर्गत मान लेते हैं।

उपर्युक्त पच्चीस ग्रंथों में संख्या २२ से २५ तक की रचनाएँ निश्चित रूप से अष्टछाप के कवि सूरदास कृत नहीं हैं। संख्या १ से २१ तक की रचनाएँ हमारे सूरदास की ही हैं। संख्या २२ से २५ तक की रचनाओं को हम निम्न लिखित कारणों से प्रक्षिप्त मानते हैं—

२२ हरिवंश टीका—यह एक संस्कृत रचना है। नाम से ज्ञात होता है कि यह हरिवंश पुराण की टीका होगी। "कैटेलोगस कैटेलोग्रम" में इसका सूरदास कृत होना लिखा गया है।

हमारे सूरदास ने संस्कृत में भी कोई रचना की थी ऐसा किसी भी सूत्र से आज तक ज्ञात नहीं हो सका है प्रत्युत उन्होंने आदि संस्कृत

ग्रंथों को भाषा में ही गाया है। इससे यह संस्कृत टीका किसी अन्य सूरदास, संभवतः बिल्वमंगल सूरदास, की रचना हो सकती है।

२३. **एकादशी माहात्म्य**—इसका उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की १९१७–१९ ई० की खोज-रिपोर्ट नं० १८७ (बी) में हुआ है। इसके आरंभ में गणेश, शारदा और अन्य देवों की वंदना प्राप्त है। फिर राजा हरिश्चंद्र की प्रशंसा और एकादशी माहात्म्य संबंधी अन्य कथाएँ हैं। यह सारा ग्रंथ अवधी भाषा में दोहा-चौपाई छंदों में लिखा हुआ है।

भाषा और सांप्रदायिक सिद्धांतों के आधार पर यह रचना अष्टछाप के सूरदास की कदापि नहीं हो सकती। सूरदास प्रारंभ से ही ब्रजभाषा में रचना करते थे, अतः यह ग्रंथ भी किसी अन्य सूरदास का होना चाहिए।

२४. **नल-दमयन्ती**—इस ग्रंथ का उल्लेख सर्व प्रथम बाबू राधाकृष्ण दास ने सूर की जीवनी में किया है। उसी के आधार पर मिश्रबंधु आदि हिंदी के सभी लेखकों ने इसको संदिग्ध रूप से सूरदास कृत माना है। अष्टछाप के सूरदास ने कभी मानव-काव्य भी रचा था, ऐसा किसी सूत्र से ज्ञात नहीं होता, अतः इसे भी हम अन्य सूरदास की रचना मानते हैं।

डा० मोतीचंद एम० ए०, पी० एच० डी० ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे कवि सूरदास कृत 'नलदमन' काव्य पर एक लेख लिखा था। यह प्रेम-काव्य ग्रंथ उनको बंबई के "प्रिंस ऑफ वेल्स म्युज़ियम" में मिला था। इसके कर्ता सूरदास ने इस ग्रंथ के अंत में अपना वंश-परिचय दिया है। इसके अनुसार वे गुरदासपुर जिला कलानूर के कम्बू गोत्रोत्पन्न किसी गोवर्धनदास के पुत्र थे। इस रचना का संवत् १७१४ वि० है।

यदि यह "नलदमन" काव्य उक्त "नल-दमयन्ती" ग्रंथ ही है, तो इसका अन्य सूरदास कृत होना स्पष्ट हो जाता है।

२५. **रामजन्म**—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९१७–१९ ई० नं० १८७ ए में इसे भी सूरदास कृत लिखा गया

उपर्युक्त कारणों से ये चारों ग्रंथ अष्टछाप के सूरदास कृत नहीं हैं, इसलिए हिंदी इतिहासकारों को अब सूरदास के नाम पर बतलाये जाने वाले ग्रंथों में से इन्हें निकाल देना चाहिए।

हमारी राय में सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ ये हैं—

१. सूरसारावली

२. साहित्यलहरी

३. सूरसागर (भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरसागर-सार, सूर रामायण, मानलीला, राधारसकेलिकौतुहल, गोवर्धन लीला (सरस लीला) दानलीला, भँवरगीत, नागलीला, ब्याहलो, प्राणप्यारी, दृष्टकूट के पद, सूरशतक—ये रचनाएँ सूरसागर के ही अंश हैं; अतः इनको हम स्वतंत्र नहीं मानते हैं।)

४. सूरसाठी

५. सूरपच्चीसी

६. सेवाफल

७. सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद।

इस प्रकार हमारे मतानुसार सूरदास की स्वतंत्र एवं प्रामाणिक रचनाएँ सात हैं। इनमें सबसे प्रथम सूरसारावली की प्रामाणिकता पर विचार किया जाता है।

१. सूरसारावली—यह ग्रंथ बंबई और लखनऊ से प्रकाशित सूरसागर के संस्करणों के प्रारंभ में दिया हुआ है। इसका पृथक् संस्करण इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक द्वारा संपादित होकर साहित्य संस्थान, मथुरा द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसमें ११०७ तुक हैं। पूर्वोक्त संस्करणों के प्रारंभ में संग्रहकार ने इस प्रकार का उल्लेख किया है—

"अथ श्री सूरदास जी कृत सूरसागर सारावली"॥ "तथा सवा लक्ष पदों का सूचीपत्र॥"

उक्त उल्लेख का आधार शायद सारावली की ११०३ वाली यह तुक ज्ञात होती है—

श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला-भेद बतायो।
ता दिन तें हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताको सार सूर सारावलि गावत मति आनंद। ११०३

हिंदी के प्राय: सभी विद्वानों ने भी "एक लक्ष पद बंद" का एक लाख पद अर्थ करते हुए सारावली को एक लक्ष पद वाले सूरसागर का सार रूप मानकर इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार की है।

डा० व्रजेश्वर वर्मा ने अपनी "सूरदास" थीसिस में इस सारावली पर विशेष रूप से विचार किया है। उन्होंने "एक लक्ष पद बंद" का अर्थ एक लाख पद मान कर ही 'सारावली के इस दावे को' गलत सिद्ध करने की चेष्टा की है। उन्होंने सूरसागर और सारावली का विश्लेषण करते हुए इन दोनों रचनाओं के बीच २७ अंतर स्थापित किये हैं। अंत में दोनों रचनाओं का कर्ता एक नही हो सकता, यह अभिमत प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है—

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि "कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से 'सूरसागर-सारावली' सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पड़ती। तथा कथित आत्म-कथन और कवि छापों से भी यही संकेत मिलता है*।"

यदि हम सारावली को सवालाख पदों का सूचीपत्र मानें, जैसा प्राय. सभी विद्वान मानते आये हैं, तो निःसंदेह डा० वर्मा के स्थापित किये हुए उक्त २७ अंतर बड़े महत्वपूर्ण और विचारणीय कहे जा सकते हैं; किंतु सारावली का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि यह लाख या सवालाख पदों का सूचीपत्रात्मक सार रूप नहीं है, और न सारावली का ही यह दावा है! फिर भी "कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से" निश्चय ही यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसके "आत्मकथन और कवि छापों से भी" इसी बात की पुष्टि होती है, जिसका हम अगले पृष्ठों में विस्तृत विवेचन कर रहे हैं।

सारावली को सूरदास के लाख या सवा लाख पदों का सूचीपत्र न मानने का निम्न लिखित कारण है—

मूल वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने "सहस्रावधि" पद किये थे। "सहस्रावधि" के दो अर्थ हो सकते हैं—एक "सहस्र है जिसकी अवधि" और दूसरा "सहस्रों की अवधि।" प्रथम अर्थ से केवल ९९९ पदों तक का ही सूचन होता है और दूसरे अर्थ से ९९९९९ पदों तक का सूचन होता है। सूरदास की रचनाओं को देखते हुए दूसरा अर्थ स्वीकार करना ही अधिक समीचीन जान पडता है, जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में किया जा रहा है।

* सूरदास पृष्ठ ८३

इन्हीं अर्थों को लेकर भावप्रकाश वाली वार्ता में "सहस्रावधि" और "लक्षावधि" ऐसे दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है*। वार्ता प्रसंग १० मे कहा गया है कि सूरदास अपने अंतिम समय तक एक लक्ष पदों की रचना कर सके थे। शेष २५ हजार पद सूरश्याम की छाप से श्रीनाथ जी ने किये थे।

अब यदि हम सारावली के "एक लक्ष पद बंद" का अर्थ एक लाख पद करते हुए उनके सार रूप से इसकी रचना की हुई मानें, तो यह सूरदास के अंतिम समय की रचना सिद्ध होती है। उस समय सूरदास प्रायः १०५ वर्ष के थे। सारावली के 'गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन' वाले कथन से यह स्पष्ट है कि सूरदास ने इसकी रचना अपने ६७ वें वर्ष में की थी। यदि हम इस सरसठ वर्ष को सूरदास के जन्म संवत् से जोड़ते हैं, तो इसकी रचना का संवत् १६०२ वि० आता है। इसी प्रकार यदि हम इसको सूरदास के संप्रदाय प्रवेश से ६७ वें वर्ष में रची हुई मानें तो इसका संवत् आता है १६३४ वि०। इन दोनों में से किसी भी संवत् को स्वीकार किया जाय, तब भी "एक लक्ष पद बंद" का एक लाख पद वाला अर्थ इससे संगत नहीं हो सकता है, क्यो कि सूरदास के लाख पदों का समाप्ति-काल वि० सं० १६४० में आता है।

सारावली का रचना-काल वि० सं० १६३४ की अपेक्षा वि० सं० १६०२ मानना अधिक प्रशस्त एवं प्रामाणिक होगा। वि० सं० १६३४ इसलिए विरुद्ध और अप्रामाणिक कहा जायगा कि सारावली की "सरस संवत्सर लीलाओं" में बल्लभ संप्रदाय के वि० सं० १६१५ के पश्चात् निर्मित उत्सवो के सूरदास रचित पदों का संकेत भी नहीं मिलता है, यथा—रथ यात्रा, छप्पनभोग आदि के वर्णन। जैसा पहले कहा जा चुका है कि इन उत्सवों का निर्माण वि० सं० १६१५ के पश्चात् गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था।

वि० सं० १६०२ में सारावली का निर्माण मानना अधिक प्रशस्त एवं प्रामाणिक इसलिए है कि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली का व्यवस्थित और

---

* "तैसे ही सूरदास ने सहस्रावधि पद किये है।" (प्रसंग ३)
"और सूरदास जी श्रीठाकुर जी के लक्षावधि पद किये हैं।" (प्रसंग ११)
(अग्रवाल प्रेस से प्रकाशित भावनावाली ८४ वार्ता मे सूरदास की वार्ता

विस्तृत निर्माण वि० सं० १६०२ में गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने सर्व प्रथम किया था, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इससे संप्रदाय की सेवा में नवीनता और अद्भुतता आई, जिसका स्पष्टीकरण सारावली के अनंतर ही लिखे हुए "सेवाफल" में सूरदास ने इस प्रकार किया है—

"सेवा की यह अद्भुत रीति। श्री विट्ठलेस सों राखें प्रीति ॥"

इस अद्भुतता का कारण सेवा में निकुंज-लीला का क्रियात्मक विस्तार है। गो० विट्ठलनाथ जी के पूर्व तक सेवा में केवल बाल-भावना का क्रियात्मक विस्तार हुआ था। इसलिए वल्लभ-संप्रदाय में गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पूर्व माधुर्य भक्ति का अभाव था, इस प्रकार का मत लोक में प्रसिद्ध हुआ है। किंतु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी ने जिस माधुर्य-भक्ति को अपने ग्रंथों में व्यक्त किया था, उसी को श्री विट्ठलनाथ जी ने सेवा में क्रियात्मक रूप से उपस्थित किया, जिसके फल स्वरूप संप्रदाय में निकुंज-भावना तादृश हुई। इसी से सूरदास ने प्रभावित होकर सेवा की अद्भुतता और "गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन" आदि कथन किया है। जिन निकुंज के दर्शनों की सूरदास अभिलाषा करते थे, वे उनको अपनी ६७ वर्ष अवस्था में तादृश हुए थे। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी में कोई भेद नहीं समझते थे*, इसलिए यहाँ भी उन्होंने "गुरु-प्रसाद होत यह दरसन" इस प्रकार का कथन किया है और उनका निकुंज लीला के साथ ही वर्णन किया है।

गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने इन्हीं निकुंजादि की माधुर्य भावनाओं को अपने 'शृंगार रस मंडन' तथा 'निकुंज विलास' आदि ग्रंथों में स्पष्ट किया है। इस प्रकार वि० सं० १६०२ में ही सारावली की रचना होना सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सारावली सूरदास के सवा लाख अथवा लाख पदों का सूचीपत्र नहीं है। जब यह बात निश्चित हो गयी कि यह लाख या सवालाख पदों का सूचीपत्र नहीं है, तब डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा स्थापित २७ अंतर एक प्रकार से निरर्थक हो जाते हैं।

---

* "भरोसो दृढ़ इन चरनन केरौ।"—इस पद में "इन चरनन" शब्द अपने सम्मुख उपस्थित हुए श्री विट्ठलनाथ जी के चरणों का बोध कराने वाले हैं। इससे श्री वल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी के प्रति सूरदास की समान भक्ति ज्ञात होती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब सारावली सूरसागर का सूचीपत्र रूप नहीं है तो 'ताको सार सूरसारावली' का अर्थ क्या हो सकता है ? सारावली के गभीर और सांगोपांग अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यहाँ 'सार' का अभिप्राय 'सैद्धांतिक तत्व रूप' से है, अर्थात् सूरदास ने जिन कथात्मक और सेवात्मक हरिलीलाओं का वर्णन सं० १६०१ तक किया था, उन्हीं के सैद्धांतिक तत्व रूप से उन्होंने सारावली की रचना की है। जैसे नंददास जी ने रासपंचाध्याई के कथात्मक वर्णन के अनंतर उसी के सैद्धांतिक-सार रूप से 'सिद्धांतपंचाध्याई' की रचना की है। इस दृष्टि से ही हम डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उन २७ अंतरों से सहमत हो सकते हैं और उन्हीं के शब्दों में कहेंगे कि—

"सारावली सूरसागर के पदों का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथावस्तु में सूरसागर की कथावस्तु से घनिष्ट साम्य होते हुए भी उसे निश्चित सूरसागर का संक्षेप भी नहीं कह सकते* ।"

फिर भी यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। सारावली की प्रामाणिकता और हमारे सैद्धांतिक तत्व वाले कथन की पुष्टि आगामी विस्तृत विवेचन से स्पष्ट हो जायगी।

सब से प्रथम यहाँ अंतर उल्लेखों एवं कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण से सारावली का परिचय और उसकी प्रामाणिकता को हम स्पष्ट करेंगे। सारावली पर विचार करने के लिए सब से प्रथम उसके निम्न लिखित उल्लेख द्रष्टव्य हैं—

करम-योग पुनि ग्यान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ ॥११०२॥
ता दिन तें हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बंद।
ताको सार 'सूर - सारावलि' गावत अति आनंद ॥११०३॥
सरस संवतसर लीला गावै, युगल चरन चित लावें।
गरभ-वास, बंदीखाने में, 'सूर' बहुर नहिं आवें ॥११०७॥
गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन।
सिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहीं लीन ॥१००२॥

* सूरदास पृ० ७०

इन तुकों से ये बातें प्रकट होती हैं—

(१) सारावली के कर्ता सूरदास हैं।

(२) सूरदास प्रारंभ में कर्मयोग, ज्ञान, उपासना, आदि में विश्वास करते थे; किंतु श्री बल्लभ गुरु ने जब उनको तत्व सुना कर लीला-भेद बताया (समझाया), तब सूरदास को कर्मयोग आदि के अपने पूर्व विश्वास भ्रम रूप ज्ञात होने लगे और तभी से उन्होंने उन लीलाओं को एक 'लक्ष' स्वरूप श्रीकृष्ण की पद वंदना करते हुए गाया है, जिसका सार-सिद्धांत तत्वरूप—यह 'सारावली' है।

(३) सारावली की लीला के दर्शन सूरदास को अपनी ६७ वर्ष की वय में गुरुप्रसाद से हुए थे। उस समय सूरदास संप्रदाय के तत्व और लीला ज्ञान में 'प्रवीन' हो चुके थे। सारावली में कही हुई लीला का अनुभव शिवजी को भी अनेक विधि पूर्वक बहुत दिन तक तप करने से भी नहीं हुआ था।

(४) सारावली की सरस संवत्सर की लीला को जो कोई युगल चरणों में चित्त स्थापित कर गावेगा, वह गर्भवास बंदीखाने में फिर कभी नहीं आवेगा।

उक्त चार बातों की पुष्टि सूरदास के अन्य अंतःसाक्ष्य आदि से करना आवश्यक है। जब ये बातें पुष्ट हो जायँगी, तब सारावली पर विशेष विचार करना सुगम होगा।

१—कर्ता—सारावली के कर्ता सूरदास थे, इस बात का ज्ञान जिस प्रकार सारावली में प्राप्त सूर, सूरज आदि उपलब्ध छापों से होता है, उसी प्रकार उसकी भाषा आदि से भी होता है। सारावली की भाषा सूरदास के सूरसागर और उनके अन्य पदों की भाषा से इस प्रकार मिलती है—

(**कृष्ण-जन्म**)

सारावली— 'आठैं बुद्ध रोहनी आई' संख चक्र वपु धारयौ।
कुंडल लसत किरीट महा धुनि, वपु बसुदेव निहारयौ ॥३६५॥
पीतांबर अरु स्याम जलद वपु, निरखि सुफल दिन लेख्यौ।
अस्तुति करी बहुत नाना बिधि, रूप चतुर्भुज देख्यौ ॥३६६॥
तब हरि कहेउ जन्म तुम्हरे गृह 'तीन बार' हम लीनौ।
पृस्नी-गर्भ देव ब्राह्मण जो कृष्ण रूप रंग कीनौ ॥३६७॥

'माँग्यौ सकल' मनोरथ अपने मन वांछित फल पायौ ।
'सख चक्र गदा पद्म' 'चतुर्भुज' 'अजन जन्म' लै आयौ ।।३६८।।

प्राकृत रूप धरयौ हरि छन में सिसु ह्वै रोवन लागे' ।
तब देवकी दीन ह्वै भाख्यौ नृप को नांहि पतीजै ।
'अहो वसुदेव जाउ लै गोकुल' कह्यौ हमारौ कीजै ।।३७१।।

क्तियों का मिलान सूरसागर की 'बालविनोद भावती लीला* के पद
उनकी भाषा आदि का इस प्रकार साम्य दिखलाई देता है—

वुध रोहिनी अष्टमी' संगम वसुदेव निकट बुलाये हो ।
सकल लोकनायक सुखदायक 'अजन जन्म' धरि आये हो ।।
माथे 'मुकुट' सुभग 'पीतांबर' उर सोहत भृगु रेखा हो ।
'संख चक्र भुज चारि विराजत' अति प्रताप सिसु भेखा हो ।।
सुनो देव एक 'आन जनम' तुमसों कथा चलाऊँ हो ।
तुम माँग्यौ मैं दयौ नाथ ह्वै तुमसों बालक पाऊँ हो ।।
यह कहि माया मोह अरुझाये 'सिसु ह्वै रोवन लागे हो' ।
'अहो वसुदेव जाउ लै गोकुल' तुम हो परम सभागे हो ।।

थो की उपर्युक्त पंक्तियों के अतिरिक्त अन्य पंक्तियाँ भी देखिये—

'सेष सहस फन ऊपर छाये' घन की बूँद बचावै हो ।
आगें 'सिंह हुँकारत' आवत, निर्भय बाट जनावै हो ।।
'यमुना अति जलपूर' बहत है, 'चरन कमल परसायौ' ।

आगैं 'जानु जमुन जल बूड़ौ' पाछैं 'सिंह दहाड़े' हो ।।
'चरन पसारि परसि कालिंदी' तरवा नीर तें आगे हो ।
'सेष सहस फन ऊपर छायौ' गोकुल कों अति भागे हो ।।

'पहुँचे आय महरि मंदिर में' नैंक न संका कीन्हीं ।
'पहुँचे जाय महरि मंदिर में' मनहिं 'न संका कीन्हीं हो' ।।
'यह कन्या मोहि बकसि बीरजू' कीजै मो मन भायौ हो ।
'यह कन्या मोहि बकसि बंधु तू' दासी जानिकर दीन्हीं हो ।।

ागर बधाई, पृ० १७४

सारावली— 'कंस बंस कौ नास करत है' कहा समुझ री सयानी ।
कीर्तन— 'क्रूर कंस मम बंस बिनासन' समुझे बिना रिपु कीन्हीं हो ।
सारावली— 'पटकत सिला गई आकासै' कंस प्रतीति न मानी ।
भई 'अकास बानी' 'सुरदेवी' कंस यहाँ अब आई ।।
'तेरौ सत्रु प्रगट कहुँ ब्रज में' 'काहु लख्यौ नहीं जाई ।
'जैसे मीन करत जल क्रीड़ा' 'जल में रहत समाई' ।।
कीर्तन— 'पकरत कन्या गई अकासहिं' दोउ भुज चरन लगाई हो ।
'गगन गई बोली सुरदेवी' कंस मृत्यु नियराई हो ।।
'जैसे मीन जाल में क्रीड़त' गनें न आपु लखाई हो ।
'तैसौई कंस काल छूक्यौ है' 'ब्रज में जादौराई हो' ।।
सारावली— क्षम अपराध देवकी मेरौ, 'लिख्यौ न मेट्यौ जाई' ।
मैं 'अपराध किये सिसु मारे' कर जोरै बिलखाई ।।
पुनि गृह आय 'सेज पर सोयौ, नैंक नींद नहिं' आवै ।
'देस देस के दूत बुलाये' 'सबहिन मतौ सुनावै' ।।
कीर्तन— 'बहु अपराध करे सिसु मारे' 'लिख्यौ न मेट्यो जाई हो' ।
'चारि पहर सुख सेज पर निस' 'नैंकहू नींद नहिं आई हो' ।।
'देस देस के दूत बुलाये' 'कासों है छल कैसौ हो' ।

इसी प्रकार कृष्ण जन्म के इस वर्णन के कई शब्द भी सूरदास के अन्य कीर्तनों में ज्यों के त्यों प्राप्त होते हैं, जैसा कि "खड्ग", "कन्या" आदि । इस प्रकार इस वर्णन में भाषा, शब्द, भाव, वर्णन पद्धति आदि सब का साम्य प्राप्त होता है ।

(ब्रज वर्णन)

सारावली— 'नंदराय घर ढोटा जायौ महर महा सुख पायौ' ।
विप्र बुलाय बेद विधि कीन्हीं, स्वस्ति वचन पढ़ायौ ।।
जाति कर्म पूजि 'पितर' सुर 'पूजन' विप्र करायौ ।
'दोय लख धेनु दई तिहिं औसर' बहुतहिं दान दिवायौ ।।

इन पंक्तियों में 'विप्र बुलाय पितर पूजन' आदि के तथा 'दान' आदि की जो वर्णन-पद्धति प्राप्त होती है वही वर्णन-पद्धति सूरदास कृत जन्माष्टमी की बधाई के अन्य पदों में भी मिलती है जसा कि

"नांदीमुख 'पितर पूजाय' अंतर सोच हरें ।"
"गान गैया गिनी न जाय"...."ते दीनी द्विजन अनेक ।" इत्यादि[1]
"महरि जसोदा ढोटा जायौ ।" इत्यादि[2]
"दई सुवच्छ लक्ष द्वै गैया नंद बढ़ायौ त्याग[3] ।"

(ढाढ़ी)

सारावली— 'निज कुल 'वृद्ध जानि' एक ढाढ़ी गोवर्धन तें आयौ । ४०६
कीर्तन— नंद जू मेरे मन आनंद भयौ सुनि 'गोवर्धन ते आयो' ।
हौं तो 'तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी' सूरदास मेरो नाउँ ।।
सारावली— बहुत दान दिये 'उपनंद जू' रतन कनक, मनि, हीर ।
'धरानंद' धन बहुतहि दीन्हों, ज्यों बरखत घन नीर ।।
कुंडल कान कंठ माला दै 'ध्रुवनंद' अति सुख पायौ ।
सीधौ बहुत 'सुरसुरानंद' गाड़ा भरि पहुँचायौ ।।
'कर्मा धर्मानंद' कहत है बहुतहिं दान दिवायौ ।
कीर्तन— महानंद 'सुरसुरानंद' नंदनंद सुख कीजै ।
'धरानंद' 'ध्रुवनंद' और 'उपनंद' परम उपकारी ।।

(पूतना बध)

सारावली— 'प्रथम पूतना कंस पठाई' अति 'सुंदर वपु धारयऊ' ।
'लीन्हे खैंच प्रान विषमय युत' देह विकल तब कीनो ।।
'योजन डेढ़' विटप बेली सब चूर चूर कर डारे ।
कीर्तन— 'प्रथम कंस पूतना पठाई' ।
'अति मोहिनी रूप धरि लीन्हें' ।
'पय सँग प्रान ऐंच हरि लीन्हों' 'जोजन डेढ़' गिरी मुरझाई ।
इत्यादि—

इसी प्रकार करवट, शकट, तृणावर्त और नामकरण आदि के पदों का भी मिलान करने पर वही शब्द, वही भाव, वही वर्णन पद्धति का साम्य दिखलायी देता है। करोटी, बूढ़े बाबा आदि शब्द भी सूरदास के पदों में मिलते हैं, जिनका डा० वर्मा ने नहीं मिलने का उल्लेख किया है[4] ।

---

१. 'ब्रज भयौ महरि के पूत' इस पद की पंक्तियाँ हैं ।
२. 'हौं एक नई बात सुनि आई' इस पद की पंक्ति है ।
३ 'आज अति बाढ्यौ है अनुराग' (सूरसागर) इस पद की पंक्ति है ।
४ सूरदास पृष्ठ ७६

'कागासुर' की कथा केवल सूरदास ने ही अपने पदों में गायी है और किसी ने भी उसका गायन नहीं किया है। यह विशेष कथा सारावली में भी है, जैसा कि—

सारावली— 'कंस नृपति इक असुर पठायौ, धरेउ काग कौ रूप'।
'कंठ चांप बहु बार फिरायौ' 'पटक्यौ' नृप के पास'॥
'एक याम में' वचन कह्यौ यह 'प्रगट भयौ तुव नास'। ४३५।

कीर्तन— 'काग रूप एक दनुज धरेउ'।
'नृप आयुस लै कर माथे दे हर्षवंत उर गर्व भरेउ॥
'कंठ चांपि' बहु बार फिरायौ' गहि पटक्यौ नृप पास '।
बीते 'जाम' 'बोलि तब आयौ' सुनहु कंस तेरौ आइ सरेउ'।

इसी प्रकार सारावली की चंद्र दर्शन, बूड़े बाबू की लीला, घुटुरुवन आदि लीलाओं का इसी प्रकार की लीलाओं के पदो से साम्य ज्ञात होता है जैसा कि—

(चंद्र दर्शन)

सारावली— 'ससि कों देखि' और 'हठ ठानी' कर मनुहार मनावत।
कमलनयन कों 'महरि जसोदा' जल प्रतिबिंब दिखावत॥
'फेरत हाथ चंद पकरन कों' नाहिन होत लखावत। ४४७।

कीर्तन— मेरौ माई 'अरट्यौ' है बाल गोविंदा।
गहि अचरा मोहि गगन बतावत खेलन को माँगै चंदा'॥
"भाजन में जल मेलि जसोदा' लालैं चंद दिखावै।
रुदन करै 'पानी में ढूँढ़ै' चंद धरनि कैसै आवै॥

(बूढ़े बाबू दर्शन)

सारावली— 'बूढ़े बाबू' दरसन आये लाय चंद्रमनि दीन्हों। ४४०।

कीर्तन— 'बूढ़ौ बाबू' नाम हमारौ 'सूर श्याम' तेरौ जानें।

(घुटुवन)

सारावली— 'घुटुवन चलत स्याम कों' 'देखत' 'बोलत' अमृत बानी।
इततें नंद-महर बोलत हैं' 'उततें जननि बुलावत'॥

कीर्तन किलकत कान्ह' घुटुरुवन' आवत
सम निरखि यसोदा पनि-पनि नद बलावत

इसी प्रकार माटी भक्षण, दामोदर लीला, अघ, बक आदि के वध वाले सारावली के उल्लेखों को भी सूरदास के अन्य पदों से मिलान करने पर उनमें भी ऐसा ही साम्य दिखाई देता है।

काली नाग का 'कनक कमल' का विशेष उल्लेख सूरदास की रचना में ही प्राप्त होता है, और वह सारावली में भी मिलता है।

(कनक कमल)

सारावली— काली नाथ हरि लाये, सुरभी ग्वाल जिवाये।
'कनक* कमल' के बोझ सीस धरि मथुरा कंस पठाये ॥ ४७३ ॥

कीर्तन— 'कमल कनक' भार दधिभार माखन भार लिये ग्वाल नृप घर आये।

इसी प्रकार कंस वध पर्यंत की लीलाओं आदि का वर्णन सूरदास के तत्तत् पदों से मिलता है। अब कुछ भ्रमर गीत के साम्य को देखिये—

(भ्रमर गीत)

सारावली— बन में मित्र हमारे यक हैं हमही सौ है रूप।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब गोधन कौ भूप ॥
ताकौ पूजि 'बहुरि सिर नइयो' अरु कीजो परनाम।

कीर्तन— मैत्री यक बन बसत हमारौ ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान ह्वै मेरी हूतौ ताहि माथ नवाइयो ॥
सुंदर परम किसोर वय क्रम चंचल नयन विसाल।
कर मुरली सिर मोर पंख पीतांबर उर बनमाल ॥

सारावली— तब 'यक सखी कहै सुन री तू सुफलक-सुत फिर आयौ।
प्रान गये लै पिंड देन कों देह लेन मन भायौ ॥

कीर्तन— बहुरि सखी सुफलक सुत आयौ परचौउ संदेह उर गाढ़।
'प्राण हमारे तबहि लै गयौ अब केहि कारन आयौ ॥

इस प्रकार के भाषा, भाव और वर्णन शैली के अनेक साम्य इस लीला में भी मिलते हैं, किंतु स्थानाभाव से हम यहाँ उन सबको दे नहीं सकते।

अब कुछ राम नृसिंह और वामन विषय के पदों का भी सारावली से मिलान करेंगे

(राम जन्म का वर्णन)

सारावली— "देत दान नृपराज द्विजन कों सुरभी हेम अपार।
आये देव और मुनिजन सब दे असीस सुख भारी।।"

कीर्तन— आनंद आज नृपति दसरथ घर। × ×
ऋषि मुनि वेद मधुर धुनि उपजत दान विधान करत
एहि औसर। × ×

जिस प्रकार राम का भोजन विषयक वर्णन सारावली में प्राप्त होता है, उसी प्रकार सूरदास के अन्य पदों में भी मिलता है। जैसा कि—

(राम भोजन)

सारावली— "बैठे संग बाबा के चारों भैया जेंवन लागे।
लघु-लघु ग्रास राम मुख मेलत आपु पिता मुख मेलत।।" १८५।

कीर्तन— "जननी अपुने हाथ जिमावति।
भोजन करत भ्रात एक थारी लोचन लाल सिरावत।।"

(नरसिंह विषयक)

सारावली— निरगुन सगुन होय मैं देख्यौ तोसों भक्त न पाऊँ।
सुन प्रह्लाद प्रतिज्ञा मेरी तोकों कबहुँ न त्यागूँ।।

कीर्तन— तौलों हौं बैकुंठ न जैहौं।
सुन प्रह्लाद प्रतिज्ञा मेरी जौलों तो सिर छत्र न दैहौं।
निरगुन सगुन हेर सब देखे तोसों भक्त मैं कबहू न पैहौं।।

(वामन विषयक)

सारावली— "करी वेद धुनि नृप द्वार पै मनहु महा घन गाजै।
सुनि धायौ तबही बलिराजा आय सुरन सिर नायौ।।
चलियै विप्र यज्ञ शाला में जहाँ द्विज वर सब राजैं।
तब नृप कहेउ कछू द्विज माँगो रत्नभूमि मनिदान।।
हय गज हेम रत्न पाटंबर दैहौं प्रगट प्रमान।
तब बोले वामन यह बानी, सुन प्रह्लाद कुल भूप।।
बहुत प्रतिग्रह लेत विप्र जो जाय परत भव कूप।
तीन पेंड बसुधा हम पावें पर्णकुटी इक कारन।।

'जब नृप भुव संकल्प कियौ है' लागे 'देह पसारन' ।
'एक पैंड में' वसुधा नापी 'एक पैंड' सुरलोक ॥
'एक पैंड दीजै बलिराजा' तब ह्वै हो बिन सोक ।
'नापौ देह हमारी द्विजवर' सो 'संकल्पित कीनो' ॥

कीर्तन— राजा एक पंडित पौरि तिहारी । × × ×
'मुनि धुनि बलिराजा उठि धाये' आहुति यज्ञ बिसारी ।
सकल रूप देख्यौ जू विप्र कौ 'कियौ दंडौत जुहारी' ॥ ३
'चलियै विप्र जहाँ यज्ञ वेदी' बहुत करी मनुहारी ।
'जो माँगों सो' दैहों तुरत ही हीरा 'रतन भंडारी' ॥ ४
रहो रहो राजा अधिक न कहियै 'दोष लगत है भारी' ।
'तीन पैंड वसुधा मोहि दीजै' जहाँ रचों 'धर्म सारी' ॥ ५ × ×
'लै उदक संकल्प कीनों' बामन 'देह पसारी' ॥७
जय जयकार भयौ भूमापत 'द्वय पैंड भई' सारी ।
'एक पैंड तुम देहु तुरत ही' कै बचनन सत हारी ॥ ८
सत नहीं छांड़ौ सतगुरू मेरे 'नापो पीठ हमारी' ।

(होरी वर्णन)

होरी वर्णन में एक मास की वर्णन की शैली का "कछु दिन ब्रज और रहो" इस पद से साम्य है ।

इस प्रकार सारावली की प्रत्येक लीला सूरसागर और सूरदास के अन्य पदो की भाषा, उनके भाव आदि से मिलती है, जिनके स्पष्टीकरण में सैकड़ों पृष्ठ और चाहिए, इसलिए हम उस बृहद् अनुसंधान के कार्य को अपने उत्साही पाठकों के लिए ही छोड़ देते हैं । पाठक अवश्य ही उन सब का मिलान कर इस कथन की वास्तविकता की जाँच करेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं ।

सारावली और सूर की अन्य रचनाओं में प्राप्त कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्दों का एक सा उल्लेख इस प्रकार है—

'सिंघद्वार', 'रतन चौक', 'सुनो सूर', 'अंधकार', 'फगुवा', 'मंत्र'[1], 'कोपि'[2]

---

१ बसंत धमार के पदों में
२ बधाई के पदों मे

'कटकट'[१], 'सगुण निर्गुण'[२], 'थापें'[३], 'चौननिया', 'भनों', 'जन्म पत्रिका', 'भगुलिया', 'अंकवार', 'अशरण शरण', 'बकस', 'आनकदुंदुभि', 'अंधाबुंध'[४], 'नाथ', 'रिंगनलीला' इत्यादि।

इनसे भी सारावली के कर्ता सूरदास है, इस बात की पुष्टि होती है।

उक्त कथन का विशेष समर्थन आगे के प्रमाणों से और होगा, अतः इस बात को हम यहीं पर समाप्त करते हैं।

२–आत्म-वृत्तांत—

(अ) सूरदास श्री बल्लभ गुरु की शरण में आने से पूर्व कर्म-ज्ञानादि में विश्वास करते थे।

(आ) किंतु जब श्री बल्लभ गुरु ने उनको तत्व सुना कर लीला-भेद को समझाया, तब वे अपने पूर्व विश्वास को भ्रम समझने लगे और तभी से उन्होंने उस लीला का गायन किया, जिसका सार (सैद्धांतिक तत्व रूप) यह सारावली है।

सारावली के इन कथनों की क्रमशः पुष्टि सूरदास के अंतःसाक्ष्यों से इस प्रकार होती है—

(अ—कर्म ज्ञानादि विश्वास)

(१) "करम गति टारी नाँहि टरै।"
(२) "रे मन ! चिंता ना कर पेट की।"

इत्यादि पदों से सूरदास का कर्म पर अटल विश्वास जिस प्रकार जाना जा सकता है, इसी प्रकार 'सब दिन होत न एक समान' तथा च 'भजन बिनु बैल बिराने ह्वै हो' आदि पदों से उनके ज्ञान तथा उपासना-भक्ति की प्रारंभिक श्रद्धा को भी जाना जा सकता है।

---

१. करखा के पदों में।

२. नृसिंह जयंति आदि के पदों में।

३. श्रृंगार के पदों में।

४ "सूरदास ए कैसे निमगी अधाधुंध सरकार" शेष शब्द पदों से प्राप्त होते हैं।

(ब—वल्लभ गुरु से लीला-तत्त्व की प्राप्ति)

(१) 'श्री वल्लभ भले बुरे तोउ तेरे ।'

(२) 'दृढ़ इन चरनन केरी ।'

इन पदों से सूरदास श्री वल्लभ गुरु के सेवक थे, यह बात स्पष्ट होती है।

अब प्रथम यह जानना आवश्यक है कि श्री वल्लभ गुरु ने सूरदास को कौन सा तत्त्व सुनाया और किस लीला-भेद को समझाया था, जिनकी सूचना सारावली में दी गई है, तभी उस पर आगे विचार किया जा सकता है ।

उक्त बात का ज्ञान वार्ता से होता है । वार्ता में लिखा है कि सूरदास को महाप्रभु ने शरण में लेकर 'दशम स्कंध की अनुक्रमणिका' और 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को सुनाया था, जिससे सूरदास को भागवत की टीका स्वरूप श्री सुबोधिनी का ज्ञान हुआ था । इस ज्ञान के आधार पर ही सूरदास ने श्रीमद्भागत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की लीलाओं का कीर्तन किया* ।

वार्ता के इस कथन की पुष्टि सूरदास के इन पदों से होती है—

(१) 'गुरु बिन ऐसी कौन करें ।'

इस पद में सूरदास कहते हैं कि—

भवसागर तें बूड़त राखे 'दीपक' हाथ धरें ।

सूरदास का सांकेतिक यह 'दीपक' ज्ञान प्रदीप रूप श्रीमद्भागवत है । महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत को ही कलिकाल रूप अज्ञानांधकार को दूर करने वाला 'प्रदीप' कहा है । जैसा कि—

"श्रीमद्भागवतप्रदीपमधुना चक्रे मुदा वल्लभ ।" (निबंध)

---

* "पाछें आप दशम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये × × × सो सगरी श्री सुबोधिनी कौ ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास के हृदय में स्थापना कियौ । × × × ता पाछें श्री आचार्य जी ने सूरदास कू 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायौ । तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी । सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादश स्कंध पर्यंन कीर्तन वर्णन किये । (प्रा० वा० र० पृ० १४–१५)

इसलिए सूरदास ने भी उक्त पद में भागवत का ही 'दीपक' शब्द से संकेत किया है[1]। महाप्रभु के मत से इस कलिकाल में श्री कृष्ण के नाम स्वरूप यह भागवत शास्त्र ही जीव के उद्धार करने में एक मात्र समर्थ है, इसीलिए सूरदास ने 'भवसागर ते बूड़त राखे' शब्दों का भी वहाँ प्रयोग किया है। अस्तु।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को श्रीमद्भागवत के 'सार समुच्चय' रूप कहा है; क्यों कि श्रीमद्भागवत में से ही महाप्रभु ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक हजार नामों को उद्धृत कर 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की है, इसलिए महाप्रभु ने तत्व रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा श्रीमद्भागवत रूप ज्ञानदीपक का ही सूरदास को दान दिया था। इस प्रकार सूरदास के उक्त पद से वार्ता के पूर्व कथन की तथा सारावली के 'तत्व सुनायौ' वाले उल्लेख की पुष्टि होती है।

अब 'लीला भेद बतायौ' वाले कथन को स्पष्ट करेंगे। श्रीमद्भागवत के तत्व स्वरूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वंतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय–इन दशविध लीला-सूचक नामों का स्कंधानुसार निरूपण किया है[2], अतः सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा उक्त लीला भेद को महाप्रभु ने सूरदास को समझाया था, जिससे समग्र भागवत का अर्थ सूरदास के हृदय में स्फुरायमान हुआ था। इस कथन की पुष्टि जिस प्रकार वार्ता के "सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी' इस उल्लेख से होती है, उसी प्रकार आगे आने वाले पद से भी होती है—

---

१. सूरदास ने निम्न पद में श्रीमद्भागवत को 'ज्ञानदीप' स्पष्ट रूप से भी कहा है—

> "निगम कल्पतरु पक्व फल सुक मुख तें जु दयौ।
> श्री सुकदेव कृपा करि कै अति परीक्षित स्रवन पयौ॥
> "ज्ञानदीप हिरदै" प्रगटायौ मनोकामना काज लयौ।
> जग में प्रकास करि हरि कथा उर कौ तिमिर सबहि गयौ॥
> 'सूर स्याम' सुन हो रसिकनमनि बारंबार रस पीवो नयौ।"

२ '..............' 'विसर्गकर्तासर्वेश' 'स्थितिलीलाब्धिरच्युतो विजयप्रद। इत्यादि।

श्री भागवत सकल गुन-खानि ।
सर्ग, विसर्ग, स्थान रु, पोषण, ऊति, मन्वंतर जानि ।।
ईस, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि, ये दस लक्षन होय ।
उत्पत्ति तत्व सर्ग सो जानो ब्रह्मकृता विसर्ग है सोय ।।
कृष्ण अनग्रह पोषण कहियँ कृष्ण वासना ऊति ही मानो ।
आछे धर्मन की प्रवृत्ति जो, सो मन्वंतर जानो ।।
हरि हरिजन की कथा होय जहाँ सो ईशानु ही मान ।
जीव स्वतः हरि ही मति धारै सो निरोध हिय मान ।।
तजि अभिमान कृष्ण जो पावै सोई मुक्ति कहावै ।
उत्पत्ति, पालन, प्रलय करै जो हरि आश्रय कहावै ।।
सूरदास हरि की लीला लखि कृष्ण रूप ह्वै जावै ।।

महाप्रभु ने उक्त सर्गादिक लीलाओं का क्रम तथा अर्थ इस प्रकार किया है—

'आनंदस्य हरेर्लीला शास्त्रार्थो दशधाहि सः ।
अत्र सर्गो, विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वंतरेशानुकथा 'निरोधो' मुक्तिराश्रयः ।
अधिकारी साधनानि द्वादशार्थास्ततोऽत्रहि ।।' (निबंध)

अर्थ—"आनंद रूप हरि की लीला ही इस समग्र भागवत का अर्थ है ।" वह लीला सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध मुक्ति और आश्रय के नाम से दशधा है ।

अधिकारी के भेद को दिखाने वाला प्रथम स्कंध है । सर्व प्रकार के ज्ञान कहने वाला साधन रूप द्वितीय स्कंध है । तृतीय स्कंध से सर्गादि लीलाओं का क्रम है । महाप्रभु के सिवाय भागवत के सभी टीकाकार 'आश्रय' को 'निरोध' के स्थान पर और 'निरोध' को अंतिम 'आश्रय' के स्थान पर रखते हैं; किंतु उसकी असंगति को महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी में अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया है* ।

सूरदास ने भी अपने उक्त पद में निरोध प्रलय को अष्टम ही माना है । वह उनको महाप्रभु ही के द्वारा भागवत के लीला भेद के ज्ञान-प्राप्ति का सूचक है ।

---

* देखो दशमस्कंध सुबोधिनी की कारिकाएँ ।

इन लीलाओं के महाप्रभु द्वारा बतलाये हुए लक्षणों को ही सूरदास ने भी उक्त पद में कहा है। इससे उक्त बात की और पुष्टि होती है। महाप्रभु ने इन लीलाओं की व्याख्या इस प्रकार की है—

'अशरीरस्यविष्णोः पुरुष शरीर स्वीकारः[1] सर्ग। पुरुषाद्ब्रह्मादीनामुत्पत्ति विसर्गः, उत्पन्नानां तत्तन्मर्यादया पालनं स्थानं स्थितानामभिवृद्धिः पोषण, पुष्टानामाचार ऊतिः, तत्रापि सदाचारो 'मन्वन्तरम् तत्रापि विष्णुभक्तिरीशानुकथा भक्तानां प्रपञ्चाभावो निरोधः निष्प्रपञ्चानां स्वरूपलाभो मुक्तिः, मुक्तानां ब्रह्म स्वरूपेणावस्थान माश्रयः।"

आचार्य श्री के इस कथन का अर्थ यही होता है, जो सूरदास ने उक्त पद में सरलरीत्या किया है[2]। इससे जाना जा सकता है कि महाप्रभु ने लीलाभेद से भागवत के द्वादश स्कंधों का अर्थ पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम के उपदेश द्वारा सूरदास के हृदय में स्थापित किया था। इसी के अनुसंधान से सूरदास ने श्रीमद्भागवत को दो प्रकार से गाया था। एक द्वादश स्कंधात्मक कथा रूप से जिसको सूरसागर कहते हैं और दूसरे उसके सिद्धांतात्मक सर्गादि दशविध लीलाओं के सार-तत्व रूप से, जिसको उन्होंने सारावली नाम दिया है। जैसा कि आगे स्पष्ट किया जा रहा है, सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' के आधार पर की गयी होने से उसमें उन लीलाओं के अनुकूल और पोषक अन्य पुराणादि की कथाओं का भी समावेश हुआ है। 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' में आचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं के एक हजार नामों के उपरांत अन्य पुराणादि से भी तत्तल्लीला पोषक ७५ नामों को विशेष रूप से उद्धृत किया है। जैसा कि—

'पञ्चमध्तति विस्तीर्णं पुराणांतर भाषितम्।" २४९

इसीलिए सूरदास ने भी अन्य पुराणादि की कथाओं को स्वीकार किया है। महाप्रभु जी श्रीमद्भागवत से अविरुद्ध ऐसे सर्गादि पाँच लक्षण वाले अन्य पुराणों को भी 'हरि का स्वरूप' मानते हैं[3]।

१. तत्व रूप से।

२. देखो 'निबंध प्रकाश' आदि ग्रंथ।

३. पुराण हरिरेवसः। पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा। (निबंध)

भागवत के प्रथमस्कंध से द्वादशस्कंध पर्यंत कीर्तनों की 'सूरसागर' न
से प्रसिद्धि है। यह प्रसिद्धि महाप्रभु के समय से ही है, क्यों कि वार्ता मे लि
है कि महाप्रभु सूरदास को देखते तब 'आओ सूरसागर!' इस प्रकार कहते

महाप्रभु श्रीमद्भागवत को 'सागर' मानते हैं। जैसा कि—

"हर्षविशित चित्तेन श्रीमद्भागवत सागरात।" (पु० सहस्त्रनाम्)

भागवत की इन्हीं दशविध लीलाओं को सूरदास के हृदय
स्थापित कर सूरदास को भी महाप्रभु ने 'सागर' बना दिया था। इ
सूरदास 'भागवत' स्वरूप हो चुके थे, इसलिए ही महाप्रभु उनको सागर क
थे। महाप्रभु द्वारा कहा हुआ 'सागर' नाम सूरदास के हृदय से उच्छ्
लीला भावों के तरंग रूप पदों से सार्थक हुआ है।

जैसा कि पहले कहा गया है 'आओ सूरसागर!' कथन की पुष्टि 'सागर
विकार जल भरयौ' वाले अंतःसाक्ष्य से होती है। इससे मानना होगा
महाप्रभु के समय में ही सूरदास भागवत की द्वादश स्कंधात्मक लीलाओ
विशेषतया गा चुके थे, तभी तो वे उस समय भी 'सागर' नाम से प्रसिद्ध

अब सारावली के 'एक लक्ष पद बंद' वाले उल्लेख पर विचार करे
यहाँ 'एक लक्ष' वाला कथन संख्यावाची नहीं है, किंतु वह कृष्ण का सू
है। अर्थात् श्रीमद्भागवत में नवलक्षण-सर्गादि नव लीलाओं से लक्ष्य-आ
स्वरूप श्रीकृष्ण का ही निरूपण किया गया है। इसलिए इन दशविध लील
को गाने के पूर्व उन लीलात्मक श्रीकृष्ण के पद की वंदना सूरदास ने की
इस कथन का समर्थन 'सूरसागर' के भागवत-माहात्म्य वाले प्रा
मंगलाचरण के इस पद से होता है—

'वंदों श्री गिरधरनलाल के चरन कमल रज सदा सीस बस।
जिनकी कृपा कटाच्छ होत ही पायौ परम तत्व लीला रस* ॥

नंददास ने भी अपने श्रीमद्भागवत भाषा के मंगलाचरण में नव
लक्ष्य श्रीकृष्ण की वंदना की है—

नव लक्षण करि 'लक्ष' जो, दसयें आश्रय रूप।
नंद बंदि लै ताहि कों, श्रीकृष्णाख्य अनूप ॥

---

* कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त सूरसागर के भागवत माहात्
के प्रारंभिक मंगलाचरण का पद।

इन लीलाओं के महाप्रभु द्वारा बतलाये हुए लक्षणों को ही सूरदास ने भी उक्त पद में कहा है। इससे उक्त बात की और पुष्टि होती है महाप्रभु ने इन लीलाओं की व्याख्या इस प्रकार की है—

'अशीरस्यविष्णोः पुरुष शरीर स्वीकारः[१] सर्ग । पुरुषाद्ब्रह्मादीनामुत्पत्ति विसर्गः, उत्पन्नानां तत्तन्मर्यादया पालनं स्थानं स्थितानामभिवृद्धिः पोषरण', पुष्टानामाचार ऊतिः, तत्रापि सदाचारो 'मन्वन्तरम् तत्रापि विष्णुभक्तिरीशानुकथा भक्तानां प्रपञ्चाभावो निरोधः निष्प्रपञ्चानां स्वरूपलाभो मुक्तिः, मुक्तानां ब्रह्म स्वरूपेणावस्थान माश्रयः ।"

आचार्य श्री के इस कथन का अर्थ यही होता है, जो सूरदास ने उक्त पद में सरलरीत्या किया है[२] । इससे जाना जा सकता है कि महाप्रभु ने लीलाभेद से भागवत के द्वादश स्कंधों का अर्थ पुरुषोत्तम सहस्रनाम के उपदेश द्वारा सूरदास के हृदय में स्थापित किया था । इसी के अनुसंधान से सूरदास ने श्रीमद्भागवत को दो प्रकार से गाया था । एक द्वादश स्कंधात्मक कथा रूप से जिसको सूरसागर कहते हैं और दूसरे उसके सिद्धांतात्मक सर्गादि दशविध लीलाओं के सार-तत्व रूप से, जिसको उन्होंने सारावली नाम दिया है । जैसा कि आगे स्पष्ट किया जा रहा है, सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर की गयी होने से उसमें उन लीलाओं के अनुकूल और पोषक अन्य पुराणादि की कथाओं का भी समावेश हुआ है। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में आचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं के एक हजार नामों के उपरांत अन्य पुराणादि से भी तत्तल्लीला पोषक ७५ नामों को विशेष रूप से उद्धृत किया है । जैसा कि—

"पञ्चसप्तति विस्तीर्णं पुराणांतर भाषितम् ।" २४६

इसीलिए सूरदास ने भी अन्य पुराणादि की कथाओं को स्वीकार किया है।

महाप्रभु जी श्रीमद्भागवत से अविरुद्ध ऐसे सर्गादि पाँच लक्षण वाले अन्य पुराणों को भी 'हरि का स्वरूप' मानते हैं[३] ।

---

१. तत्व रूप से ।

२. देखो 'निबंध प्रकाश' आदि ग्रंथ ।

३ पुराण हरिरेवस पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा (निबंध)

भागवत के प्रथमस्कंध से द्वादशस्कंध पर्यंत कीर्तनों की 'सूरसागर' नाम से प्रसिद्धि है। यह प्रसिद्धि महाप्रभु के समय से ही है, क्यों कि वार्ता में लिखा है कि महाप्रभु सूरदास को देखते तब 'आओ सूरसागर !' इस प्रकार कहते थे।

महाप्रभु श्रीमद्भागवत को 'सागर' मानते हैं। जैसा कि—

"हर्षविशित चित्तेन श्रीमद्भागवत सागरात।" (पु० सहस्रनाम)

भागवत की इन्हीं दशविध लीलाओं को सूरदास के हृदय में स्थापित कर सूरदास को भी महाप्रभु ने 'सागर' बना दिया था। इससे सूरदास 'भागवत' स्वरूप हो चुके थे, इसलिए ही महाप्रभु उनको सागर कहते थे। महाप्रभु द्वारा कहा हुआ 'सागर' नाम सूरदास के हृदय से उच्छलित लीला भावों के तरंग रूप पदों से सार्थक हुआ है।

जैसा कि पहले कहा गया है 'आओ सूरसागर !' कथन की पुष्टि 'सागर सूर विकार जल भरयौ' वाले अंत.साक्ष्य से होती है। इससे मानना होगा कि महाप्रभु के समय में ही सूरदास भागवत की द्वादश स्कंधात्मक लीलाओं को विशेषतया गा चुके थे, तभी तो वे उस समय भी 'सागर' नाम से प्रसिद्ध थे।

अब सारावली के 'एक लक्ष पद बंद' वाले उल्लेख पर विचार करेंगे। यहाँ 'एक लक्ष' वाला कथन संख्यावाची नहीं है, किंतु वह कृष्ण का सूचक है। अर्थात् श्रीमद्भागवत मे नवलक्षण-सर्गादि नव लीलाओं से लक्ष्य-आश्रय-स्वरूप श्रीकृष्ण का ही निरूपण किया गया है। इसलिए इन दशविध लीलाओं को गाने के पूर्व उन लीलात्मक श्रीकृष्ण के पद की वंदना सूरदास ने की है। इस कथन का समर्थन 'सूरसागर' के भागवत-माहात्म्य वाले प्रारंभिक मंगलाचरण के इस पद से होता है—

'वंदों श्री गिरधरनलाल के चरन कमल रज सदा सीस बस।
जिनकी कृपा कटाच्छ होत ही पायौ परम तत्व लीला रस* ।।

नंददास ने भी अपने श्रीमद्भागवत भाषा के मंगलाचरण में नव लक्षण से लक्ष्य श्रीकृष्ण की वंदना की है—

नव लक्षण करि 'लक्ष' जो, दसयें आश्रय रूप।
नंद बंदि लै ताहि कों, श्रीकृष्णाख्य अनूप ।।

---

* कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त सूरसागर के भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रारंभिक मंगलाचरण का पद।

उक्त सब प्रमाणों से यह निश्चित होता है कि महाप्रभु ने सूरदास को श्रीमद्भागवत के 'तत्व रूप' 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को सुनाकर श्रीमद्भागवत और उसकी दशविध लीलाओं के भेदों को समझाया था। उसी ज्ञान के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत और तदनुकूल अन्य पुराणान्तरों की तत्तल्लीला विषयक सहायक कथाओं को भी श्रीनाथ जी की पद-वंदना कर गायन किया है। ये कथाएँ महाप्रभु द्वारा 'सूरसागर' के नाम से प्रसिद्ध हुईं और इन्हीं लीलाओं-कथाओं के सैद्धांतिक तत्व सार-रूप से उन्होंने सूर-सारावली को गाया था; अतः इन दोनों का मुख्य आधार भागवत होते हुए भी इन दोनों की रचनाओं के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे।

(च) अब हम श्रीमद्भागवत स्वरूप सूरसागर के सार रूप 'सारावली' पर विचार करेंगे---

सूरसागर में श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं का उसके स्कंध, प्रकरण और अध्यायानुसार प्राप्त कथाओं द्वारा गायन किया गया है। इन कथाओं में श्रीकृष्ण के अनेक अवतार और उनकी अनेक लीलाओं का स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। महाप्रभु ने श्रीमद्‌भागवत की अनेक अस्पष्ट लीलाओं को भी अपनी सुबोधिनी मे कई स्थानों पर स्पष्ट किया है*। इससे जाना जा सकता है कि श्रीमद्‌भागवत में गूढ़ रूप से भी कई लीलाओं का वर्णन हुआ है।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में श्रीमद्‌भागवत की स्पष्ट और अस्पष्ट सभी लीलाओं को उनके तत्व रूप एक हजार पचहत्तर नामों से प्रकट किया है। इसलिए 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को महाप्रभु ने 'भागवतसार समुच्चय' कहा है। सूरदास ने भी इसी 'सहस्रनाम' के आधार पर अपने सूरसागर की लीलाओं, कथाओं के सार तत्व रूप इस सारावली की रचना की है। इसीलिए भागवत की गूढ़ लीलाएँ भी, जो 'द्वादश स्कंधों के कथात्मक' 'सूरसागर' में स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं हैं, सारावली में स्पष्ट हुई हैं।

जिस प्रकार महाप्रभु ने भागवत के सार रूप पुरुषोत्तम सहस्रनाम को 'भागवत सार समुच्चय' रूप कहा है, उसी प्रकार सूरदास ने सूरसागर के सार

---

* स्वभावत एव खिन्ना तां त्यक्त्वा अन्यथा सहस्थित इति। तत्तश्चेत् समागत्य प्रकर्षेण हसति, सुतरा क्षोभं प्राप्नोति (१०-३१-१० सु०) यहाँ खंडिता को स्पष्ट किया है।

रूप इस ग्रंथ को 'सारावली' कहा है। इस प्रकार 'सारावली' नाम भी पुरुषोत्तम सहस्रनाम के 'सार समुच्चय' नाम पर ही आधारित है।

अब हम 'सारावली' के तात्त्विक सार वाले कथन की प्रामाणिकता 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के नामों से स्पष्ट करेंगे। पुरुषोत्तम सहस्रनाम के प्रारंभ में महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

> 'श्रीकृष्णः'[१], सच्चिदानंदो[२], नित्यलीलाविनोदकृत्[३]।
> सर्वागमविनोदी[४]च, लक्ष्मीशः[५] पुरुषोत्तमः[६]॥
> आदिकालः[७] सर्वकालः[८], कालात्मा[९], माययावृतः[१०]॥६॥

इन्हीं नामों के अनुसार सूरदास अपनी सारावली के प्रारंभ में श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

> **'अविगत, आदि, अनंत, अनूपम, अलख, पुरुष, अविनासी।**
> **पूरनब्रह्म, प्रकट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी॥१॥**

सारावली के इस वर्णन में 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उक्त नामों का इस प्रकार समावेश हुआ है—

*१. 'अविगत'=सर्वागमविनोदी[४], २. 'आदि'=आदि कालः[७], ३. 'अनंत'=सर्वकालः[८], ४. 'अनूपम'=लक्ष्मीशः[५], ५. 'अलख'=माययावृतः[१०], ६. 'पुरुष'=सच्चिदानंदो[२], ७. 'अविनासी'=कालात्मा[९], ८. 'पूरनब्रह्म'=श्रीकृष्णः[१], ९. 'प्रगट पुरुषोत्तम'=पुरुषोत्तमः[६], १०. 'नित निजलोकविलासी'=नित्यलीलाविनोदकृत्[३]।

सूरदास 'नित निज लोक विलासी' का विशदीकरण सारावली में इस प्रकार करते हैं—

---

* इन नामों के स्पष्ट अर्थ जानने के लिए देखो, गो० श्रीरघुनाथ जी कृत 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम की टीका' तथा महाप्रभु कृत 'सुबोधिनी' आदि अन्य साहित्य।

'नित्यलीलाविनोदकृत्' नाम का विवरण—

'जहँ वृंदाबन आदि अजर, जहँ कुंज लता विस्तार ।
तहँ विहरत प्रिय प्रियतम दोऊ, निगम भृंग गुंजार ।।२।।
रतन जटित कालिंदी के तट, अति पुनीत जहँ नीर ।
सारस हंस चकोर मोर खग, कूजत कोकिल कीर ।।३।।
जहँ गोबर्धन पर्वत मनिमय, सघन कंदरा सार ।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत, 'निसदिन करत विहार' ।।४।।

आगे 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा', 'जगत्कर्ता' 'जगन्मय' नामों का विशदीकरण सूरदास ने सारावली में चौबीस अवतारो के वर्णन से तथा सृष्टि की उत्पत्ति और तत्वो से किया है । जैसा कि—

खेलत-खेलत चित्त में आई, 'सृष्टि करन विस्तार' ।
अपने आपु करि 'प्रगट कियौ है, हरि पुरुष अवतार' ।।५।।

इसमें 'जगत्कर्त्ता' नाम की सूचना है । इसका विस्तार आगे और भी किया गया है । आगे 'जगन्मयः' नाम का सूचन इस प्रकार हुआ है—

'कीने तत्त्व प्रगट तेही छिन, सबै अष्ट अरु बीस ।'

इन अट्ठाईस तत्वों से परब्रह्म ही इस जगत् रूप हुए हैं, ऐसा शुद्धाद्वैत सिद्धांत है*, अतः इसमे 'जगन्मयः' नाम का सूचन होता है ।

चौबीस अवतारों का हेतु मुख्यतः भक्तो के उद्धार का है, इसलिए उनके वर्णन से 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा' नाम का स्वतः बोध होता है ।

सारावली में सर्गादि दस लीलाओं का इस प्रकार वर्णन किया गया है । महाप्रभु ने सर्ग लीला दो प्रकार की मानी हैं—अलौकिक और लौकिक ।

अलौकिक सर्ग श्रीकृष्ण की 'निर्गुण-त्रिगुणातीत-लीला सृष्टि की उत्पत्ति' है । इसका वर्णन सूरदास ने सारावली के प्रारंभ में पूर्वोक्त २-३-४ तुको मे तथा आगे भी किया है ।

लौकिक सर्ग अट्ठाईस तत्व आदि की उत्पत्ति है । इसका वर्णन सारावली में तुक ५ से १० तक किया है । इस उत्पत्ति का प्रकार भी महाप्रभु के कथनानुसार ही है, जैसा कि महाप्रभु अपनी 'भगवत्पीठिका' में सृष्टि-उत्पत्ति का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

---

* 'अष्टाविंशति तत्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः ।' (निबंध)

"श्रीपुरुषोत्तमस्य सृष्टेरिच्छा यदा जायते 'तदा रविकाश्मिरयोगो 'यथा वह्निः' प्रजायते तथा 'कालोऽक्षरात्जातः । सदानंदकटाक्षतः पृथक भवति' । भ्रुवो रंध्राद्रुत्पद्यते 'कालात्प्रकृतिपुरुषौ' । प्रकृतेर्गुणात्मको 'नारायणो' लक्ष्मीपतिः । 'तस्य' मनसो विष्णुः । ललाटाद्रुद्रः । नाभि कमलात् 'ब्रह्माजातः' ।"

इसी को सूरदास ने सारावली में इस प्रकार कहा है—

"खेलत खेलत चित्त में आई, सृष्टि करन विस्तार ।
'अपुने आप करि' प्रगट कियौ है, हरि पुरुष अवतार ।।५।।
माया छोभ कियौ बहु विधि करि, 'काल पुरुष के अंग ।
'राजस तामस सात्विक' 'त्रैगुण' प्रकृति 'पुरुष' कौ संग ।।६।।

तथाच—

अष्टाविंशति तत्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः ।

इस निबंध वाक्य और 'तत्वकर्ता यह 'सहस्रनाम' वाले (श्लोक २७।।) नाम के अनुसार सूरदास सारावली में २८ तत्वों का इस प्रकार उल्लेख करते हैं—

कीने तत्त्व प्रगट तेही छिन, सबै अष्ट अरु बीस ।
तिनके नाम कहत कवि 'सूरज', 'निर्गुण' सबके ईस ।।७।।
'पृथ्वी', 'अप', 'तेज', 'वायु', 'नभ', संज्ञा 'शब्द', 'परस' अरु 'गंध' ।
'रस' अरु 'रूप' और 'मन', 'बुद्धि', 'चित्त', 'अहंकार' मति अंध ।।८।।
'पान', 'अपान', 'व्यान', 'उदान', और कहियत 'प्रान', समान ।
"तक्षक', 'धनंजय', पुनि 'देवदत्त' और 'पौंड्रक', 'शंख', 'द्युमान' ।।९।।
'राजस', 'तामस', 'सात्विक' तीनों जीव' ब्रह्म सुखधाम ।
अट्ठाईस तत्त्व यह कहियत, सो कवि 'सूरज' नाम ।।१०।।

इस प्रकार द्विविध सर्गों के वर्णन के अनंतर ब्रह्मादि की उत्पत्ति से सूरदास विसर्ग का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नाभि कमल 'नारायण' की, सो वेद गरभ अवतार ।
नाभि कमल में बहुत ही भटक्यौ, तऊ न पायौ पार ।।११।।
तब आज्ञा भई यह हरि की नभ, करो परम तप आप ।
तब ब्रह्मा तप कियौ वर्ष सत, दूर किये सब पाप ।।१२।।
तब दर्सन दीन्हौं करुनाकर, परमधाम निज लोक ।
ताकौ दर्सन देखि भयौ अज, सब बातन निःसोक ।।१३।।

जहाँ आदि 'निजलोक' महानिधि, 'रमा सहस संजूत' ।
आडोलन झूलत करुनानिधि, रमा सुखद अति पूत ॥१४॥
अस्तुति करी बिबिध नाना करि, परम पुरुष आनंद ।
जै जै जै श्रुति गीत गाय कै, पढ़तहिं नाना छंद ॥१५॥
आज्ञा करी 'नाथ' चतुरानन, करी सृष्टि विस्तार ।
होरी खेलन को बिधि नीकी, रचना रचौ अपार ॥१६॥
दस ही पुत्र भये ब्रह्मा के, जिन संच्यौ संसार ।
स्वायंभू मनु प्रगट तब कीने अरु, सतरूपा नार ॥१८॥

सारावली के इस वर्णन से ब्रह्मा की उत्पत्ति नारायण के नाभि कमल से हुई ऐसा ज्ञात होता है। यह बात पूर्वोक्त 'पीठिका' के उल्लेख के अनुसार ही है। इसी प्रकार ब्रह्मा को जिस 'निज लोक' के दर्शन कराये हैं, वह अलौकिक 'सर्ग' का सूचक है। महाप्रभु ने—

"नमामि हृदयेशेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम् ।
'लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः' सेव्यमानं कलानिधिम् ॥"

इस श्लोक में भगवान् के दिव्य रूप का जो उल्लेख किया है, उसी के अनुसार सूरदास ने 'रमा सहस संजूत' आदि को यहाँ और अन्यत्र भी कहा है। यह महाप्रभु का कहा हुआ 'अलौकिक सर्ग' है।

यहाँ ब्रह्मा की उत्पत्ति और उनके द्वारा सृष्टि की रचना का कथन 'विसर्ग' है। इसमें 'आदि कर्त्ता' नाम सार्थक हुआ है।

महाप्रभु 'पुरुषाद्ब्रह्मादीनामउत्पत्तिविसर्गः' जिस प्रकार कहते हैं, उसी प्रकार सूरदास 'ब्रह्माकृत विसर्ग है सोय' कहते हैं। इसी के अनुसार यहाँ आदि पुरुष में ब्रह्मा और शतरूपा, स्वायंभू आदि की उत्पत्ति के वर्णन द्वारा विसर्ग का सूचन किया गया है।

फिर पृथ्वी आदि की स्थिति एवं चौदह लोक के निर्माण द्वारा 'स्थान' का निरूपण सारावली में तुक १९ से २४ तक किया गया है। यथा—

सातों द्वीप कहे सुकमुनि ने, सोई कहत अब 'सूर' ।
जंबू प्लक्ष क्रौंच शाल्मलि, कुश पुष्कर भरपूर ॥२४॥

इसी प्रकार पोषण (अनुग्रह) और ऊति लीला (कर्मवासना) का सूचन सूरदास ने तुक २५–२६ में इस प्रकार किया है—

अपने अपने 'स्थानन' पर 'फगुवा' दियौ चुकाय ।
जब सब हरि माया तें, बामव प्रकट भये हैं प्राय ॥२५॥

तब तब धरि अवतार कृष्ण ने, कीनों 'असुर संहार' ॥३६॥

यहाँ 'फगुवा' के नाम से स्थानाधिपतियों को अधिकार देकर अभिवृद्धि करने का सूचन है। यही पोषण-अनुग्रह रूप है। महाप्रभु आज्ञा करते हैं कि--

"स्थितानाम अभिवृद्धि पोषणं"।

इसी प्रकार देव और दानवों को कर्मों में प्रवृत्त कर सद्-असद् वासना रूप ऊति-लीला आप करते हैं। पुनः अवतार लेकर दानवों के नाश द्वारा आप भक्ति की प्रवृत्ति करते हैं--यही सद् वासना है। ऐसे सद् असद्, और सद्-असद् वासना रूपी ऊति-लीला का भी यहाँ सूचन हुआ है।

इस प्रकार ३५ तुकों से श्रीकृष्ण की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण और ऊति ऐसी पाँच लीलाओं को तत्वरूप से सूरदास ने सारावली में गाया है। तत्वरूप से इसलिए कि उनमें तत्तत्कथाओं का विस्तार नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि ये कथाएँ विस्तार से सूरसागर में कही जा चुकी हैं, अतः यहाँ पर उनको तत्वरूप से कहा गया है।

महाप्रभु के मत से भागवत की ये पाँच लीलाएँ 'भगवदन्वय' रूप हैं, अर्थात् इन पाँच लीलाओं में भगवान् का समन्वय है। भगवान् कारण रूप से उनमें रह कर इन लीलाओं को करते हैं। शेष मन्वंतरादि पाँच लीलाएँ 'व्यतिरेक' वाली हैं, अतः उनमें भगवान् भिन्न रूप से दिखायी देते हैं। इसीलिए उन लीलाओं का निरूपण सूरदास ने २४ अवतारों के कार्यों द्वारा सारावली में विस्तृत रूप से किया हैं। इस प्रकार सूरसागर रूपी भागवत में भगवान् के अनेक अवतारों का जो निरूपण किया गया है, उनके सार रूप से सारावली मे मुख्यतः २४ अवतारों का वर्णन हुआ है। अन्य पुराणादि के सहारे उनकी कथाओं का विस्तार और गौण रूप से अन्य अवतारों का भी उसमें उल्लेख हुआ है, जो कि तत्तत् लीलाओं के पोषक हैं। इस प्रकार सारावली में श्री वल्लभ गुरु द्वारा बतलाये हुए तत्व और दशधा लीलाओं का उल्लेख हुआ है।

महाप्रभु ने वाल्मीकि रामायण और महाभारत को भी शास्त्र रूप में प्रमाण माना है*, इसलिए इन दोनों ग्रंथों की विशेष कथाओं को भी सारावली में गाया है। जैसा कि--

---

* अर्थोऽयमेव 'निखिलैरपि वेदवाक्यै' 'रामायणैः' सहित 'भारत' पंचरात्रैः। अन्यैश्च 'शास्त्रवचनैः सह तत्व 'सूत्रै' निर्णीयते सहृदये हरिणा सदैव।

रामायण— ब्याह केलि सुख बरनन कीनों, मुनि बाल्मीकि अपार ।
सो सुख 'सूर' कह्यौ यह कीरति, जगत करो विस्तार ॥८३२

महाभारत— सभा रची चौपर क्रीड़ा करि, कपट कियौ अति भारी ।
जीत जुधिष्ठिर भई सब जानी, तउ मन में अधिकारी ॥७६८

सूरदास ने सागर और सारावली में अन्य पुराणों की कथाओं को : स्वीकार किया है। इसका उल्लेख भी उन्होंने कहीं-कहीं किया है। जैसा कि—

सो 'ब्रह्मांड पुराण' व्यासमुनि, कियौ वदन उच्चार ॥ १६२ ॥

इस प्रकार सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' और द्वादशस्कंध के कथात्मक 'सूरसागर' के तात्विक सार रूप सिद्ध होती है। भाषा, भाव, वर्णन शैली कथा के प्रकार और सिद्धांतादि के साम्य से भी इसकी पुष्टि होती है। इससे सारावली के निम्न कथन की प्रामाणिकता निर्विवादतः स्पष्ट होती है—

कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन, सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला वेद बतायौ ॥११०२॥
ता दिन तें हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि, गावत अति आनंद ॥११०३॥

उपर्युक्त विवेचन से भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि सारावली' के रचयिता अष्टछाप के सूरदास ही थे। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना सूरदास के लिए की थी; अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी के लिए नहीं, जैसा कि विद्वानों का मत है। सूरसागर के तात्विक सार रूप होने के कारण सारावली सूरदास की स्वतंत्र रचना सिद्ध होती है, क्यों कि सूरसागर और सारावली के दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हैं।

अब हम 'सारावली' में कथित '६७ बरस प्रवीन' और 'सरस संवत्सर लीला' इन दो महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करते हैं। ये दोनों कथन ऐतिह्य दृष्टि से एक दूसरे के सापेक्ष हैं, अतः हम इन दोनों पर एक साथ विचार करते हैं।

"सरस संवत्सर लीला" वाले कथन को स्पष्ट करने से '६७ बरस प्रवीन' वाला कथन अपने आप स्पष्ट हो जाता है, इसलिए सब से प्रथम 'सरस संवत्सर लीला' वाले उल्लेख पर ही विचार किया जाता है।

सूरदास की कही हुई "सरस संवत्सर लीला" कौन सी है, यह जानना सर्व प्रथम आवश्यक है। श्री मुंशीराम जी शर्मा 'सरस' नामक संवत्सर की कल्पना द्वारा व्यर्थ उलझन में पड़ गये हैं[1]। हमारा निश्चित मत है कि 'सरस' नाम का कोई संवत् नहीं होता है। ऐसी दशा में 'सरस संवत्सर लीला' का अर्थ होगा संवत्सर की सरस लीला। यहाँ संवत्सर की सरस लीला का तात्पर्य श्रीकृष्ण की वर्ष भर की दान-मानादि रसात्मक लीलाओं से है, जिनको सूरदास ने सारावली में गाया है। इन लीलाओं के उल्लेखों का महत्व तब समझ में आ सकेगा, जब हम वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांत और उसकी सेवा-प्रणाली विषयक आवश्यक अंगों को जान लेंगे।

वल्लभ संप्रदाय में 'रसोवैसः' 'सर्वरसः' आदि श्रुतियों के आधार पर परब्रह्म को रसात्मक माना । महाप्रभु के मत से यह रसात्मक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण हैं, अतः पुष्टिमार्ग के परमदैवत् तथाच उपास्य देव भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

ये रसात्मक श्रीकृष्ण अपने वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं संकर्षण व्यूहों से ब्रज में प्रगट हुए थे। उक्त चार व्यूहों से उन्होंने मोक्ष, वंशवृद्धि, धर्मोपदेश तथाच संहार कार्य किया था। धर्मी मूलस्वरूप रसात्मक श्रीकृष्ण ने तो एक मात्र आनंददायी लीलाएँ की हैं। महाप्रभु के मत से ये धर्मी स्वरूप की स्थिति केवल ब्रज में और भक्तों के हृदय में रहती है, क्यों कि इनको केवल भाव रूप माना गया है। भक्त जब जैसे और जहाँ इस स्वरूप की भावना करते हैं, तब वैसे और वहाँ स्वरूप प्रकट होकर भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करता है, इस लिए यह स्वरूप और उसकी लीलाएँ भी नित्य मानी गयी हैं। ऋग्वेद आदि से भी लीला की नित्यता का समर्थन होता है[2]।

रसात्मक भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रज में श्रुतियों को दिये हुए वरदान की पूर्ति के लिए प्रकट होकर उनके साथ अनेक प्रकार की आनंदमयी लीलाएँ की हैं। इन लीलाओं का वर्णन श्रीमद्भागवत तथाच पद्म, ब्रह्म, वाराह आदि पुराण और गर्ग संहिता, नारद पंचरात्रि आदि में प्राप्त है।

---

१. सूर सौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ३३

२. ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यैयत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमपदमवभाति भूरि॥
—ऋग्वेद २-२-२४

इन प्रमाणों के आधार पर पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना का निर्माण हुआ है। इसमें नित्य और वर्षोत्सव की भावनाएँ प्रधान हैं। नित्य की भावना में भगवान् श्रीकृष्ण नंदालय में बाल भाव से और निकुंज में किशोर भाव से प्रातःकाल से शयन तक अनेक प्रकार की आनंदात्मक लीलाएँ करते हैं। वर्षोत्सव की भावना में भगवान की प्रागट्य लीला से लगाकर हिंडोलना पर्यंत की षट्ऋतु की लीलाओं का समावेश हुआ है। ये सब लीलाएँ रसात्मक ब्रह्म के संबंध वाली होने से सरस हैं।

नित्य की भावना और वर्षोत्सव की भावनाओं का क्रमबद्ध वर्णन पुष्टि-मार्गीय सेवा प्रणाली के अनुसार सूरदास ने सारावली में ८७० से १०८६ तुकों तक किया है। पुष्टिमार्गीय सेवा का क्रम जन्माष्टमी से माना गया है, इसलिए सूरदास ने भी जन्माष्टमी से ही इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

जन्माष्टमी (भाद्र० कृ० ८-९)—

नितप्रति मंगल रहत महर के, नितप्रति बजत बधाई।
नितप्रति मंगल कलस धरावत, नितप्रति वेद पढ़ाई ॥८७०॥

ये सब बातें पुष्टिमार्ग की सेवा में प्रति वर्ष होती है। श्रीमद्भागवत् दशमस्कंध के जन्म प्रकरण की देवस्तुति भी पढ़ी जाती है।

राधाष्टमी (भाद्र० शु० ८)—

श्री वृषभानुराय के आँगन, नितप्रति बजत बधाई।

पुष्टिमार्ग में जन्माष्टमीवत् राधाष्टमी भी प्रतिवर्ष मानी जाती है।

बाललीला—

बाल केलि क्रीडत ब्रज आँगन, जसुमति कों सुख दीन्हों।

जन्माष्टमी और राधाष्टमी के बीच बाललीला गायी जाती है। पलना आदि भी होते हैं।

चंद्रावली आदि का उत्सव (भाद्र० शु० ५-६-७)—

चंद्रावली गोप की कन्या, चंद्रभाग गृह जाई ॥८७२॥

पुष्टिमार्ग में भादों सुदी ५ को चंद्रावली जी का, सुदी ६ विशाखा जी का तथा सुदी ७ को ललिता जी का प्रागट्योत्सव माना जाता है।

दान (भाद्र० ११ से)—

इसी दान के प्रकरण में सूरदास ने नंदालय और निकुंज की नित्यकेलि के क्रमों को भी ले लिया है, जो पुष्टिमार्गीय भावना के अनुकूल हैं।

पुष्टिमार्ग में दान, होरी, रास आदि उत्सवों में नित्य की तथाच वर्षोत्सव की सभी अनुकूल भावनाओं का समावेश किया जाता है। इस बात की पुष्टि इन पदों* से होती है—

(१) होरी में दान की भावना—

माई मेरौ मन मोह्यौ साँवरे, अब घर हो मोपे रह्यौ न जाय।

इस होरी की धमार में—

माई हों गोरस लै निकसी श्री वृंदावन ही मँझार।
आय अचानक औचका मटुकी हो मेरी दीनी ढार॥ (त्रिलोकी)

(२) दान की धमार—

सखी री रसिया नंदकुमार दधि बेचन गई री।
गलिन-गलिन सखी हौं फिरी दधि काहु नाँहि लई री॥ (सूरदास)

(३) **कनक पुरी होरी रची मोहन ब्रज बाला।**
कहाँ की तुम ग्वालिनी मोहन ब्रज बाला।
कहाँ दधि बेचन जाय मोहन ब्रज बाला। (छीतस्वामी)

होरी में मंगला से शयन पर्यंत की नित्य की भावना के अनेक पद प्राप्त होते हैं, जैसा कि—

आस भोरहि ब्रज जुवतिन रोर मचायौ॥ आदि

इन पदों से उक्त बात की पुष्टि होती है। इसी भावना के अनुसार सूरदास ने दान प्रकरण में निकुंज तथा नंदालय की नित्यकेलि की इस प्रकार संगत भावनाएँ की हैं—

इंदा वृंदा और राधिका चंद्रावलि सुकुमारि॥
बिमल-बिमल दधि खात सबन कौ करत बहुत मनुहारि॥८९५॥
गहि बहियाँ लै चले स्याम घन सघन कुंज के द्वार।
पहले सखी सबै रचि राखी कुसुमन सेज सँभार॥८९६॥

---

* १-२-३ पद 'वर्षोत्सव के पद' द्वितीय भाग, पृ० ४४४–४८० में प्रकाशित हुए हैं।

नाना केलि सखिन संग बिहरत नागर नंद कुमार ।
गोवर्धन की सघन कंदरा कीनों रैन निवास ।
भोर भये निज धाम चले अति आनंद विलास ।।६०१।।

नंदालय की मंगला से राजभोग पर्यंत की लीला—

नंद धाम हरि बहुरि पधारे पौढ़ रहे निज सैन ।
जसुमति मात जगावत भोरहिं जागे अंबुज नैन ।।६०२।।
करी मुखारी और कलेऊ कीनों जल असनान ।
करि शृंगार चले दोऊ भैया खेलन कों सुखदान ।।६०३।।
कहुँ खेलत मिल ग्वाल मंडली आँख मिचौनी खेल ।।६०४।।
भोजन समय जात जसुमति ने लीनें दुहुन बुलाय ।।६०६।।

पुनः निकुंज की नित्य लीला (मान आदि)—

राधा सों मिलि अति सुख उपज्यौ उन पूछी इक बात ।।६११।।
तृतीय रूप देख अबला को मान बढ़यौ तन छाँह ।।६१४।।

निकुंज के मंगला शृंगार आदि—

जागे प्रात निपट अलसाने भूषन सब उलटाने ।
करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस सिथिलाने ।।१०१६।।

साँझ की उत्थापन आदि की लीला बन की है, उसका वर्णन—

कंद मूल फल दीने गोधन, सो निसि कों मैं खायौ ।।६१३।।

दान के पद १५ दिन तक गाये जाते हैं। इसलिए भी नित्य की भावना संगत होती हैं।

निकुंज प्रकरण में सूरदास ने रास, व्रतचर्या, जल-विहार और हिंडोलन की लीलाओं को प्रसंगानुसंधान तथा इन भावनाओं के अनुकूल होने से लिया है, जैसा कि—

नित्यरास—

नाना बंध विधि रस क्रीड़ा खेलत स्याम अपार ।।६७६।।
यह निकुंज कौ बरनन करिवे वेद रहे पचिहार ।
नेति नेति कर कह्यौ सहस विधि तऊ न पायौ पार ।।१००६।।

इस स्थान पर सूरदास ने वृहद् बामन पुराण तथा पद्म पुराण की उन कथाओं का भी उल्लेख किया है, जिनका संबंध रासलीला से है। वृहद् बामन पुराण के अनुसार श्रुतियों को ब्रह्म ने अपने निर्गुण रसात्मक स्वरूप तथा

अपनी आनंदमयी लीला का दर्शन देकर उनको अपने स्वरूपानंद देने का वरदान दिया था। इसलिए सारस्वत कल्प में ये श्रुतियाँ ब्रज में गोपियों के रूप में प्रकट हुई थीं। इसी प्रकार दंडकारण्य के ऋषियों को रामचंद्र जी ने वरदान दिया था, अतः वे ब्रज में कुमारिकाओं के रूप में हुए। यह कथा पद्म पुराण में है।

इन गोपियों और कुमारिकाओं के साथ कृष्ण ने रासलीला की थी, अतः पुष्टिमार्ग में रास का उत्सव आश्विन शु० १५ को माना जाता है। इसके अनुसार सूरदास ने यहाँ दोनों प्रकार के रास का वर्णन किया है—एक नित्य-रास, जो निकुंजादि में विविध प्रकारों से होता है और दूसरा कृष्णावतार का रास।

'नाना बंध विधि रस क्रीड़ा' वाला सारावली का पूर्व वर्णन नित्यरास का सूचक है और तुक १००७ से १००९ का रास अवतार दशा का है। सूरदास ने वहाँ इस प्रकार उल्लेख किया है—

कृष्णावतार का रास—

> **सो श्रुति रूप होय ब्रजमंडल, कीन्हों रास विहार।**
> **नवल कुंज में अंस बाहु धरि, कीन्हीं केलि अपार ॥१००८॥**
> **पुनि ऋषि रूप राम वर पायो, हरि से प्रीतम पाय।**
> **'चरन प्रसाद राधिका देवी', उन हरि कंठ लगाय ॥१००९॥**

व्रतचर्या—

'चरन-प्रसाद राधिकादेवी' से यहाँ तात्पर्य है, श्रीकृष्ण की तामस आधि-दैविक शक्ति रूप 'कात्यायनी' से। 'राधिका' शब्द 'राधस्' मुख्य शक्ति वाचक है। उनकी आराधना से ही कुमारिकाओं को रास का वर प्राप्त हुआ था*। इसमें हेमंत मास की व्रतचर्या की भी सूचना मिलती है। पुष्टिमार्ग में व्रतचर्या का उत्सव मार्गशीर्ष कृ० १ से एक मास पर्यंत माना जाता है, अतः रास और व्रतचर्या का क्रम भी सेवा-प्रणाली के क्रमशः संगत ही रहता है।

इसके आगे सारावली में जल-विहार और झूला का जो वर्णन निकुंज की नित्य-केलि में आया है, वह वर्षोत्सव क्रम से संगत नहीं है, क्यों कि वर्षोत्सव के क्रम में ये उत्सव उष्ण काल और वर्षा ऋतु में होते हैं।

सूरदास ने इन उत्सवों का यहाँ उल्लेख कर जिस प्रकार निकुंज-केलि के वर्णन में विशेषता की है, उसी प्रकार यह भी सूचित किया है कि ये दोनों

---

* इस विषय का विस्तृत विवेचन महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी तथा श्री विट्ठलेश ने अपनी टिप्पणी में किया है।

उत्सव प्रत्येक ऋतु में होते हैं। इसलिए इनमें क्रम का प्राधान्य नहीं दिया है। युगलगीत के श्लोक और लीलाओं की संगति से भगवान् श्रीकृष्ण पौष में भी जलविहार करते हैं, यह सुबोधिनी प्रभृति से जाना जा सकता है। चूंकि संप्रदाय की सेवा में वात्सल्य भाव का प्राधान्य हैं, अतः जल-विहार को उष्ण-काल के क्रम में रखा गया है, अन्यथा किशोर भाव से तो शरद-ऋतु मे भी रासोत्सव के समय प्रभु ने जलक्रीड़ा की ही है।

इस प्रकार ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण के जल-विहार तथा हिंडोला के उत्सवों के क्रम को सारावली में निकुंज की नित्य-केलि के साथ ले लिया है। जैसा कि—

'कबहुँक' केलि करत जमुना जल, सुंदर 'सरद' तड़ाग ।
'कबहुँक' मधुर माधुरी 'झूलत', आनँद अति अनुराग ॥१०२३॥

इन वर्णनों के अनंतर सूरदास ने बसंत, होरी, डोल और बनविहार (फूलमंडलियों) की लीलाओं को तुक १०२४ से १०८८ तक गाया है, जो सांप्रदायिक वर्षोत्सव की भावनाओं से क्रम के अनुकूल हैं।

'प्रथम बसंत पंचमी' शुभ दिन मंगलचार बधाये ॥१०२४॥

संप्रदाय की प्रणाली के अनुसार बसंत माघ शु० ५ से शु० १४ तक माना जाता है। शु० १५ को होरी-दांडारोपण होता है। इसका उल्लेख सारावली में इस प्रकार है—

होरी दांडो दिवस जानि कैं, अति फूले ब्रजराज ॥१०५०॥
विप्र बुलाय वेद विधि करि कैं, होरी दांडो रोप ॥१०५१॥

फिर फाल्गुन कृ० १ से फाल्गुन शु० १५ तक तीस दिन की होरी मानी जाती है, जिसका मितिवार वर्णन सारावली में इस प्रकार प्राप्त होता है—

'परिवा' प्रथम दिवस होरी को, नंदराय गृह आई ॥१०५२॥
'शुक्लपक्ष' परिवा पुरुषोत्तम, क्रीडा करत अपार ॥१०६७॥
'पून्यौ' सुख पाये ब्रजवासी, होरी हरष लगाय ॥१०८४॥

फिर 'डोल'—

जसुमति माय लाल अपने कों, 'सुभ दिन डोल' झुलायौ ।

यहाँ शुभ दिन इसलिए कहा गया है कि पुष्टिमार्ग में श्री विट्ठलेश व निर्णय के अनुसार 'उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र' जिस दिन हो, उस दिन प्रभु को डोल झुलाने का नियम है। मिति निश्चित नहीं है। उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र १५-१-२ फाल्गुन शुक्ल और चैत्र कृष्ण के दिनों में किसी एक दिन आता है।

चैत्र कृ० २ को द्वितीया को पाट का उत्सव माना जाता है। उसमें गोपादि की यमुना स्नान की तथाच प्रभु के पाट विराजने की भावनाएँ हैं। इस आधार पर सूरदास ने सारावली में गाया है कि—

'जमुना जल क्रीडत' ब्रजबासी, संग लिये गोबिंद।
सिंहद्वार 'आरती उतारत', जसुमति आनँद कंद ॥१०८७॥

फिर बनविहार की भावना से संप्रदाय में दो-तीन मास तक फूलमंडलियाँ होती हैं। इनमें उपवन क्रीड़ा-कुंज और निकुंजादि की भावना है। इसीलिए उन दिनों में कुंज-निकुंजादि के पद भी गाये जाते हैं। यथा—'चलो किन देखन कुंज कुटी' इत्यादि। इस वन-विहार की भावना सारावली में इस प्रकार प्राप्त है—

यह विधि क्रीडत गोकुल में हरि, निज वृंदाबन धाम।
मधुबन और कुमुदबन सुंदर, बहुलाबन अभिराम ॥१०८८॥
नंदग्राम संकेत खिदरबन, और कामबन धाम।
लोहबन मांट बेलबन सुंदर, भद्र बृहदबन ग्राम ॥१०८९॥
चौरासी ब्रज कोस निरंतर, खेलत हैं बल मोहन।

इस प्रकार सूरदास ने पुष्टिमार्गीय वर्षोत्सव की लीला भावनाओं को सारावली में 'सरस संवत्सर की लीला' रूप में गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वर्षोत्सव की सेवा-भावना का विधि पूर्वक निर्माण गो० विट्ठलनाथ जी ने बड़ी अद्भुत रीति से किया था। इस रीति के अनुसार सेवा करने से कलियुग में भी द्वापर का अनुभव होता है। भक्तमाल के रचयिता नाभा जी ने इसीलिए गाया है कि—

राग भोग नित विविध, रहत परिचर्या तत्पर।
सज्या भूषन बसन, रुचिर रचना अपने कर ॥
वह गोकुल वह नंद-सदन, दीच्छित को सोहै।
प्रगट बिभौ जहाँ घोष, देखि सुरपति मन मोहै ॥

बल्लभ सुत बल भजन के, 'कलियुग में द्वापर कियौ'।
विट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों, लाड़ लड़ाय कै सुख लियौ ॥

गो० विट्ठलनाथ जी ने इस कलियुग में कृष्ण-लीलाओं की सेवा-प्रणाली द्वारा साक्षात् कर दिखाया था, इसीलिए सूरदास ने गाया कि 'गुरुप्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।' अर्थात् महाप्रभु और विट्ठलनाथ जी के प्रसाद से ही आज मुझे अपनी सरसठ वर्ष की आयु में यह संपूर्ण साक्षात्कार की भावनाओं वाली सेवा के नित्य और वर्षोत्सवों की लीलाओं के दर्शन हो

रहे हैं। इन लीलाओं के समझने में सूरदास उस समय 'प्रवीन' हो चुके थे, अतः उन्होंने अपने लिए 'प्रवीन' शब्द का भी प्रयोग किया है। इन लीला-भावनाओं के ज्ञान में प्रवीणता की नितांत आवश्यकता है, क्यों कि जब तक लीला-भेद नहीं जाना जाय, तब तक इन भावनाओं का वास्तविक ज्ञान भी नही हो सकता है। इसी महत्ता को प्रकट करने के लिए सूरदास ने शिवजी का दृष्टांत भी दिया है कि अनेक विधानों से बहुत दिनों तक तप करने पर मर्यादा भक्त शिरोमणि शिवजी ने भी इस लीला का पार नहीं पाया है, अर्थात् उनको भी इसका अनुभव नहीं हुआ है। शिवजी को भी यह लीला दुर्लभ है, इस बात को सूरदास ने रामचरित्र आदि कई स्थानों पर अन्यत्र भी कहा है—

सहस वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव, रामचरित सुखसार ।
अवगाहन करि कैं सब देख्यौ, तऊ न पायौ पार ॥१४७॥
नहिं प्रवेस अज सिव गनेस, पुनि कितक बात संसार ॥६६६॥

सूरदास अपने को अन्य स्थानों पर भी प्रवीन, चतुर,. सुजान आदि कहते हैं, यथा—

'ब्रज बधू बस कियौ मोहन, 'सूर' चतुर सुजान।'

संप्रदाय के इतिहास की संगति के अनुसार गो० विट्ठलनाथ जी ने वर्षोत्सव के अद्भुत सेवा प्रकार का निर्माण वि० सं० १६०२ में किया था। उस समय सूरदास ६७ वर्ष के थे। इससे सूरदास का जन्म वि० सं० १५३५ मे होना सिद्ध होता है, जैसा गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है।

सारावली के अनंतर सूरदास ने 'सेवाफल' की रचना की है। इसमें उन्होने सेवा के विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

सेवा की है 'अद्भुत रीत'। श्री विट्ठलेश सों राखैं प्रीत ॥

इस कथन से उक्त बात की पुष्टि होती हैं। श्री विट्ठलनाथ जी ने महाप्रभु की प्रकट की हुई सेवा में वर्षोत्सव की भावनाओं को अद्भुत रीति से स्थापित कर उनका विस्तार किया है। इसका रहस्य श्री विट्ठलनाथ पर प्रीति रखने से ही प्राप्त हो सकता है, क्यों कि ये भावनाएँ उनकी स्वतंत्र खोज की हुई हैं।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि सारावली में सर्गादि लीलाओं के साथ वर्षोत्सव की सेवा भावना को क्यों मिलाया गया है? इसका उत्तर इस प्रकार है

(१) वर्षोत्सव की सेवा-भावना का पर्यवसान निरोध में है । इससे प्रपंचासक्ति दूर होकर भगवदासक्ति सिद्ध होती है । इसलिए सारावली के तत्व रूप आठवीं निरोध लीला से उनकी संगति होती है, अतः उसका विस्तार यहाँ आवश्यक था ।

(२) वर्षोत्सव की इन लीलाओं की संगति सूरदास ने भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणि के प्रति कही हुई ब्रज-लीलाओं के वर्णन से की है, इसलिए भी ये आवश्यक है । जैसा कि—

एक दिना रुकमनि सों माधौ, करत बात सुखदाई ।
सुनि रुकमिनी राधिका बिनु, मोहि पल छिन कल्प बिहाई ॥८६१॥

श्रीकृष्ण का यह कथन भागवत की कथा में नहीं है, किंतु पुराणांतर में प्राप्त है, अतः उसकी पूर्ति सूरदास ने इस वर्णन से की है ।

विशेष मिलन—

सारावली—(१) **कंचन बरन जात तेरौ वपु, 'पीतांबर' पहिरावै ॥६३४॥**

पद— **वे जो धरत तन कनक 'पीतपट', सो तौ सब तेरी गति ठानी ।**

सारावली—(२) **बायस अजा सब्द मन मोहन, रटत रहत दिन रैन ॥८५५॥**

दृष्टिकूट पद—**वायस अजा शब्द कौ मिलिबौ, ता कारन उठि धावै ।**

कवि-छाप के प्रयोगों की शैली भी सूरसागर के समान होने के कारण इसी की पुष्टि करती है । जैसा कि—

सारावली—(३) **सातों द्वीप कहे सुक मुनि नें, 'सोई' कहत अब सूर ।**

फलश्रुति—

सूरदास की बड़ी-बड़ी सभी रचनाओं में जिस प्रकार फलश्रुति मिलती है, इसी प्रकार इसमें भी है । इससे भी इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि होती है ।

इस रचना की विशिष्टता यह है कि सारावली के प्रारंभ में जिस 'अविगत आदि अनंत अनूपम' स्वरूप और उसके नित्य अलौकिक विहार का संकेत किया गया है, उसी स्वरूप और विहार के वर्णन का अंत में भी उससे मिलान किया हैं । जैसा कि—

सदा 'एक' रस 'एक अखंडित' 'आदि', 'अनादि' 'अनूप' ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल सरूप ॥१०६६॥

इसी प्रकार होरी के वर्णन की समाप्ति भी इस प्रकार की है—

संकरषन के बदन अनल तें, उपजी अगिन अपार ।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सों, मानों होरी दई पजार ॥११००॥

यहाँ उत्पत्ति, पालन और प्रलय करने वाले 'आश्रय' स्वरूप ब्रह्म का वर्णन समाप्त होता है ।

इसी प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत का भी अंत में सूचन इस प्रकार किया गया है—

सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव, पुन माया सब बिधि काल ।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन, 'सबहिं अंस' गोपाल ॥११०१॥

इस प्रकार सारावली का प्रारंभ और अंत एकसा है । इससे कवि की काव्य-निपुणता भी प्रकट होती है । ऐसी रचना सूर के सिवाय और कोई नहीं कर सकता है ।

होरी-भावना का रहस्य—

सारावली में जगत् की उत्पत्ति का वर्णन होरी की लीला के रूपक से किया गया है । इसका रहस्य यह है कि होरी में जिस प्रकार ऊँच-नीच का भेद तथाच किसी प्रकार की संकुचित भावना नहीं रहती है, उसी प्रकार इस सृष्टि के खेल में ईश्वर सभी से सभी प्रकार का खेल करता है । इसमें सब एक-रस खेल होता है, इसीलिए यह सारा जगत् ईश्वर का होरी के खेल रूप है ।

इस प्रकार यह सारावली अष्टछाप के सूरदास की ही रचना सिद्ध होती है, और उसमें बड़ा भारी तत्वज्ञान भरा हुआ है ।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि—

(१) कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से यह सारावली निःसंदेह सूरदास की प्रामाणिक रचना है । इसमें प्राप्त आत्म-कथन और कवि छापों से भी इसकी पुष्टि होती है ।

(२) सारावली की रचना वि० सं० १६०२ में हुई है ।

(३) सारावली का आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' है ।

(४) सारावली का दृष्टिकोण सैद्धांतिक रहा है ।

(५) वि० सं० १६०२ पर्यंत सूरदास ने श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कंध के अतिरिक्त बल्लभ संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के जिन पदों को गाया था, उन्हीं का यह सूचीपत्र अथवा सिद्धांतात्मक सार है । सृष्टि रचना के

लिए उसकी प्रारंभिक 'विशिष्ट प्रस्तावना' और 'होरी खेल की कल्पना' इस सिद्धांतात्मक दृष्टि की पुष्टि करती है।

(६) द्वादश स्कंधात्मक भागवत के सार रूप से इसमें प्रधानतः २४ अवतारों का वर्णन और नित्य एवं उत्सव की सेवाओं के पदों के सार रूप से "सरस संवत्सर लीला" की भावनाओं का वर्णन है। इस प्रकार सारावली में "कथा वस्तु" को दो भागों में पृथक्-पृथक् बाँटना भी 'ताकौ सार सूर सारावलि' वाले कथन की पुष्टि करता है।

इस प्रकार सारावली सूरदास की एक स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना सिद्ध होती है।

२. साहित्य लहरी—सूरदास कृत चमत्कारपूर्ण रीति काव्य है। इसकी रचना दृष्टिकूट पदों में हुई है, जो अधिकतर कृष्ण लीला से संबंधित हैं। प्रायः ऐसा समझा जाता है कि इसके पद सूर-सागर में से संकलित किये गये हैं, जो सर्वथा भ्रमात्मक है। सूरसागर में भी अनेक दृष्टिकूट पद हैं; किंतु 'साहित्य-लहरी' का एक भी पद सूरसागर में नहीं मिलता है। इस ग्रंथ की कुछ प्रतियों के अंत में सूरसागर के कतिपय दृष्टिकूट पद संकलित किये गये हैं, किंतु वे वहाँ पर 'परिशिष्ट' रूप में हैं और उनका मूल 'साहित्य-लहरी' से कोई संबंध नहीं है। यह ग्रंथ सूरदास कृत एक स्वतंत्र रीति-रचना है।

इसकी मूल अथवा सटीक कोई प्राचीन हस्त लिखित प्रति हमारे देखने में नहीं आई है। इसकी कई मुद्रित प्रतियाँ सरदार कवि कृत टीका और भारतेन्दु हरिश्चंद्र कृत टिप्पणियों सहित उपलब्ध होती हैं। इनमें सबसे प्राचीन प्रति बनारस लाइट प्रेस द्वारा सं० १९२५ में छपी हुई है। इसके बाद की प्रति लखनऊ के नवल किशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित हुई है, जिसका प्रथम संस्करण सं० १९४७ में हुआ था। उसके बाद इसके कई संस्करण विभिन्न सवतों में हुए हैं। ये दोनों प्रतियाँ सरदार कृत टीका सहित हैं। तीसरी प्रति बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस में छपी हुई है, जिसका प्रथम संस्करण सं० १९४६ में हुआ था। यह प्रति सरदार कवि कृत टीका के अतिरिक्त किसी अन्य सटीक प्रति से मुद्रित हुई है और इसमें भारतेन्दु हरिश्चंद्र कृत टिप्पणियाँ भी हैं। चौथी प्रति लहेरिया सराय के पुस्तक भंडार द्वारा सं० १९९६ में प्रकाशित हुई है। इस प्रति का मूल पाठ और पद-क्रम तीसरी प्रति के अनुसार है और पदों की टीका श्री महादेव प्रसाद द्वारा की हुई है।

इसकी पाँचवी प्रति इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक द्वारा संपादित और उसी की विस्तृत टीका-टिप्पणियों सहित सं० २०१८ में मथुरा के साहित्य संस्थान द्वारा प्रकाशित हुई है। इसमें प्रामाणिक पाठ, पाठांतर, शब्दार्थ, भावार्थ, प्रसंग, काव्यांग विवेचन और अनुक्रमणिकाओं सहित ८० पृष्ठों की वृहत् भूमिका भी है। इस ग्रंथ का इतना विस्तृत अध्ययन और विवेचन प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है, जिससे इसके यथार्थ स्वरूप का स्पष्टीकरण हुआ है।

साहित्य-लहरी के अंत में इसके रचना-काल और कवि-वंश-परिचय के प्रसिद्ध पद मिलते हैं। कवि-वंश वाले पद छोड़ कर अन्य पदों को डा० ब्रजेश्वर वर्मा के अतिरिक्त सूर-साहित्य के प्राय: सभी विद्वानो ने प्रामाणिक माना हैं। कवि-वंश वाला पद अन्य विद्वानों की तरह हमारे मतानुसार भी अप्रामाणिक है। इसकी अप्रामाणिकता के संबंध में गत पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने शोध-प्रबंध 'सूरदास' में "साहित्य- लहरी" पर भी विशेष रूप से विचार करते हुए अपने 'विश्लेषण' से दो बातें स्पष्ट की हैं—

"एक तो यह कि 'साहित्य-लहरी' के प्रणयन में उसके कवि की मूल प्रेरणा साहित्यिक है, भक्ति नहीं और दूसरी यह कि इन हरिटकूट कहे जाने वाले पदों में राधा एवं राधाकृष्ण के नखशिख के वर्णन नहीं हैं। कुछ पद शृंगार से संबद्ध होते हुए भी राधा का उल्लेख नहीं करते तथा कुछ स्पष्टतया राधा और दाम्पत्य रति से असंबद्ध हैं।"

उन्होंने आगे लिखा है—

"सूरसागर का कोई प्रसंग और कदाचित कोई पद ऐसा नहीं है, जिसमें कवि की भक्ति-भावना किसी न किसी रूप में प्रकट न हुई हो'' "साहित्य-लहरी' का रचना-काल संवत् १६२७ मानें, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि सूरदास ने इसकी रचना की है तो अपनी मृत्यु के कुछ ही पहले उन्होंने अपनी भक्ति-भावनापूर्ण मनोवृत्ति में आकस्मिक परिवर्तन कर दिया और मानो वे अपने साधन को साध्य रूप से ग्रहण करके मरते-मरते एक असफल और शिथिल लक्षण ग्रंथ रच कर अपने भावी साहित्यिक बंधुओं का नेतृत्व करने के लिये तत्पर हो गये।.........सूरसागर जैसे वृहद् ग्रंथ में जो कवि अपनी रचना के विषय में मौन रहा हो, वह 'साहित्य-लहरी' जैसे असफल प्रयत्न में नाम और रचना-काल में इतना मुखर हो जाए, यह भी उसकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल जान पड़ता है*।"

---

* सूरदास, पृ० ८७, ९३

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर डा० वर्मा साहित्य-लहरी को भी सूरदास कृत नहीं मानते हैं। डा० वर्मा की मुख्य मुख्य शंकाओं का निम्न लिखित प्रश्नों में समावेश हो जाता है—

१. सूरदास जैसे विरक्त महात्मा और सिद्ध कोटि के ज्ञानी भक्त को अपनी पूर्ण वयोवृद्ध अवस्था में इस प्रकार के काव्य-साहित्य रस का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता थी ?

२. जब इसमें राधा के नख-शिख का वर्णन नहीं, तब इसे दृष्टिकूट शैली में लिखने की क्या आवश्यकता थी ?

३. सूरसागर जैसे वृहद् ग्रंथ में जब कवि ने रचना-काल आदि नहीं लिखा, तब ऐसे एक असफल प्रयत्न में संवतादि देने की क्या आवश्यकता हुई ?

इन तीनों प्रश्नों पर विचार करते समय हमको पुष्टि संप्रदाय की भक्ति-प्रणाली तथा उसके सिद्धांत को प्रथम जान लेना आवश्यक है। पुष्टि संप्रदाय में भगवान् श्रीकृष्ण को "रसोवैसः" श्रुति के अनुसार रसात्मक माना गया है और ब्रह्मांड में जहाँ कहीं आनंद-रस अभिव्यक्त है, वह भगवद्रूप कहा गया है—

'वस्तु तस्तु ब्रह्माण्ड मध्ये आनन्दोऽभिव्यक्तस्तिष्टति भगवद्रूप* ।'

इसी के आधार पर नंददास ने भी अपनी "रसमंजरी" में लिखा है—

रूप-प्रेम-आनंद-रस जो कछु जग में आहि ।
सो सब गिरिधर देव कौ निधरक बरनों ताहि ।।

अर्थात् जगत् में जहाँ कहीं भी और जो कुछ भी आनंद (रस) है, वह भगवान् श्रीकृष्ण का ही स्वरूप है। इसलिए शुकदेव जी ने भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की रास पंचाध्यायी के अंतिम अध्याय के २६ वें श्लोक में कहा है—

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः ससत्यकामोऽनुरताबला गणः ।
सिषेव आत्मन्युपरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथा रसाश्रयाः ।।२६।।

एक श्लोक के अंतिम चरण 'सर्वाः शरत्काव्य कथा रसाश्रयाः' से स्पष्ट होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्रोक्त प्रकारों से भी लीलाएँ की हैं। इसका स्पष्टीकरण महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने भी अपनी सुबोधिनी में इस प्रकार किया है—

---

* सुबोधिनी, दृ० स्कं० १५-२६

'काव्य कथा अपिनीताः । काव्योक्त प्रकारेण गीतगोविन्दोक्त न्यायेनापि रतिं कृतवान् । तत्र हेतुः रसाश्रया इति* ।'

अर्थात् काव्य कथाओं का भी इस प्रकार सेवन किया । काव्योक्त प्रकारेण, तथाच गीतगोविन्दोक्त न्याय से भी भगवान् ने रमण किया ।

इससे स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्र के अनुसार नायिकाभेद की पद्धति से भी रमण किया है । इन्हीं आधारों पर अष्टछाप के भक्त कवियों ने अनेक प्रकार की नायिकाओं को उपस्थित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गायन किया है ।

हमारे सूरदास ने भी श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त श्लोक के स्पष्टीकरण एवं विशदीकरण में ही समस्त 'साहित्य-लहरी' का निर्माण किया है । इसीलिए इसमें नायिकाभेद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है ।

सूरदास की समस्त रचनाओं का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत रहा है, क्योंकि महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उनको शरण में लेते ही तत्काल 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' और 'दशमस्कंध की अनुक्रमणिका' द्वारा श्रीद्भागवत की दशविध लीलाओं का बोध कराया था । इसी के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत की कथाओं का सामान्य अनुवाद और दशमस्कंध की अस्पष्ट एवं स्पष्ट लीलाओं का विशेष रूप से विस्तार के साथ वर्णन किया है । इसी में दशम-स्कंध की अस्पष्ट सांकेतिक लीलाओं में इस विषय का भी समावेश हो जाता है । यदि सूरदास ने इस ग्रंथ की रचना की होती, तो उनके द्वारा भागवत की लीलाओं का पूर्ण रूप से वर्णन न हो पाता । अब 'साहित्य-लहरी' नाम पर विचार करते समय यह बात द्रष्टव्य है कि उन्होंने भगवत् लीलात्मक नाम न रख कर 'साहित्य' शब्द का उपयोग क्यों किया ? इसके दो कारण हैं । एक तो यह कि इस रचना में किसी एक विशिष्ट लीला का उल्लेख नहीं है । इसमें केवल शृंगार-रस ही नहीं है, वरन् अन्य रसों का भी वर्णन किया गया है । ये रस काव्य-शास्त्र की आत्मा है, अतः इनके विवेचन के कारण इस रचना का नाम साहित्य से संबंधित रखा गया है । इसका दूसरा मुख्य कारण यह है कि इसमें भगवान् कृष्ण की लौकिक प्रकार की काव्य कथा होने के कारण अनधिकारी व्यक्तियों में अन्यथा भाव उत्पन्न न हो । राजा परीक्षित जैसे ज्ञानी भक्त को भी उक्त श्लोक को सुन कर जब शंका हुई थी, तब अन्य व्यक्तियों का तो कहना ही क्या है ! इसीलिए नायिकाभेद की रचनाएँ दृष्टिकूट शैली में

* सुबोधिनी १०–३६–२६

लिखी गई हैं, जिससे अधिकारी विद्वान ही उनका रसानुभव कर सकें। दृष्टिकूट शैली के आवरण के कारण ही इस रचना में काव्यानंद की स्पष्ट झलक नहीं नहीं दिखलाई देती है। यह आवरण जानबूझ कर रखा गया है।

उपर्युक्त सैद्धांतिक विवेचन से दो बातें स्पष्ट होती हैं—एक तो यह कि साहित्य-लहरी का नाम और उसका बाह्य कलेवर काव्य-साहित्य का सूचक होते हुए भी वह भक्ति की उच्चतम भावना से अनुप्राणित है। इससे कवि का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्ण की रहस्यमयी लीलाओं का गायन करना मात्र था, 'साहित्यिक-नेतृत्व' करना नहीं। दूसरी बात यह है कि इन पदों में काव्योक्त (लौकिक प्रकारों वाली) कृष्ण लीलाएँ होने से उन्हें गूढ़ रखना आवश्यक था, अतः इनमें प्राप्त नायिकाओं के उल्लेखों में भी कुछ गूढ़ता लाई गई है, जिसके कारण नखशिख वर्णन न होते हुए भी इसमें दृष्टिकूट शैली की नितांत आवश्यकता थी।

यहाँ एक गौण प्रश्न और हो सकता है। वह यह कि सूरदास कृत इस प्रकार की लीलाओं के ऐसे भी अनेक पद हैं, जिनमें दृष्टिकूट शैली का सर्वथा अभाव है—इसका क्या कारण है? इसका उत्तर यह है कि एक तो उन पदों में नायिकाओं का स्पष्ट कथन प्राप्त नहीं है; केवल लक्षणों से ही उनका ज्ञान होता है। दूसरे वे पद श्रीनाथ जी के सन्मुख स्वतः गाये हुए हैं, जहाँ उन्हें छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। 'साहित्य-लहरी' के पद भागवत की कथा के विशदीकरण रूप में विशिष्ट कारण से रचे गये हैं।

इस विवेचन से उक्त दोनों प्रश्न हल हो जाते हैं। अब रह जाता है तीसरा रचना-काल विषयक प्रश्न। इसका उत्तर यह है—

श्रीमद्भागवत की कथाओं का अनुवादात्मक सूरसागर सूरदास की परतंत्र रचना है। इसमें भागवत की कथाओं का अनुसरण है, अतः यह स्वतंत्र रचना नहीं है। फिर इस रचना के अनंतर ही इसके तत्वरूप से सूरदास ने सूर-सारावली की सैद्धांतिक स्वतंत्र रचना की थी। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख कर दिया है, जिससे सूरसागर का भी रचना-काल जाना जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से जहाँ साहित्य-लहरी की रचना का उद्देश्य ज्ञात होता है, वहाँ डा० ब्रजेश्वर वर्मा की शंकाओं का भी स्वतः समाधान हो जाता है; अतः उन शंकाओं पर पृथक् विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

डा० वर्मा का एक तर्क यह है कि—

"उक्त गोस्वामी जी के द्वारा साहित्य-लहरी का कोई उल्लेख न होना, जब कि इस रचना में कवि ने तिथि और नाम तथा अपनी वंशावली का उल्लेख किया है, वास्तव में इस रचना को सूरदास कृत न मानने के लिए एक प्रबल कारण है* ।"

वार्ता साहित्य के गंभीर अध्ययन से यह ज्ञात हो सकता है कि समग्र वार्ता-साहित्य प्रासंगिक रूप से कहा हुआ है, अतः जहाँ जिस विषय का प्रसंग चल पड़ा, वहाँ उसका वर्णन किया गया है। इसको ऐतिहासिक ढंग से आद्योपांत चरित्र रूप में नहीं लिखा गया है। यदि वार्ता में सूरदास की रचनाओं पर पूर्ण रूप से एक स्थान पर विचार किया गया होता, तब तो उक्त तर्क का महत्व सिद्ध होता; किंतु उसमें प्रासंगिक स्थानों पर सूरदास की अमुक-अमुक रचनाओं का उल्लेख हुआ है, अतः उक्त तर्क पर बल देना निरर्थक है।

साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली और उसके पदों के वर्ण्य विषय सूरसागर में तथा सूरदास की अन्य रचनाओं में भी प्राप्त हैं। इनसे भी इसकी प्रामाणिकता का अनुमान हो सकता है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने साहित्य-लहरी के रचयिता और उसके रचना-काल के विषय में इस प्रकार अनुमान किया है—

"संभव है इसका रचयिता कोई अप्रसिद्ध सूरजचंद नामक भाट हो और यह भी संभव है कि स्वयं उसी ने इसकी टीका की हो। ऐसी दशा में उसका समय भाषाभूषण-कार जसवंतसिंह के पहले नहीं माना जा सकता × ।"

यदि डा० वर्मा के मतानुसार 'साहित्य-लहरी' का रचयिता कोई अन्य सूरजचंद माना जाय और उसका समय सं० १७०० के पश्चात् का मानें, तो निम्न लिखित बातों का हमें प्रामाणिक उत्तर भी देना होगा—

१. साहित्य-लहरी के रचना-काल सूचक पद में प्राप्त संवत, मिति, वार, नक्षत्र, योग आदि का प्रामाणिक उल्लेख लगभग सौ वर्ष पश्चात् किस प्रकार जाना जा सकता था ?

२. उक्त रचना-काल सूचक पद से यह जाना जा सकता है कि रचनाकार अपने को अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि सूरदास के रूप में ही उपस्थित करता है, अतः किसी भी परवर्ती कवि को अपना अस्तित्व मिटा कर इस प्रकार का

* सूरदास, पृ० ९६ × सूरदास, पृ० ९७

नाम-साम्य करने से क्या लाभ हो सकता था ? फिर नक्षत्र आदि का सूक्ष्माति-सूक्ष्म विवेचन करने का अत्यंत कष्ट भी उसने क्यों उठाया, जब कि सामान्य संवतादि के सूचन से भी वह अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकता था ?

३. वास्तव में देखा जाय तो 'साहित्य-लहरी' काव्य नहीं, किंतु काव्य-शास्त्र है । इसमें नायिका, अलंकार और रसों की अत्यंत क्लिष्ट और जटिल रचनाएँ उपलब्ध है । इतना श्रम कोई साधारण कवि नहीं कर सकता है। उस दशा में एक प्रकांड कवि 'नाम-साम्य का अपराध' करे, यह कैसे संभव हो सकता है ?

जहाँ तक हम समझते हैं कोई आलोचक इन प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर नहीं दे सकता है; अतः 'साहित्य-लहरी' निश्चित रूप से सूरदास की प्रामाणिक रचना सिद्ध होती है । इसकी पुष्टि निम्न लिखित पदों के साक्ष्य से भी होती है—

कृष्ण जन्म-कुंडली का पद—

नंद जू, मेरे मन आनंद भयौ सुनि मथुरा त आयौ ।
लग्न सोधि जोतिस कौं गिनि कै चाहत तुम्हें सुनायौ ॥
संवत्सर ईश्वर कौ भादौं नाम जू कृष्ण धरयौ है ।
रोहिनि बुध आठैं अँधियारी हर्षन योग परयौ है ॥

वृष है लग्न उच्च के उडपति तन कौं अति सुखकारी ।
दल चतुरंग चलैं सँग इनके ह्वै है रसिक बिहारी ॥
चौथे भवन सिंह के दिनमनि महि मंडल कौं जीतैं ।
करि हैं नास कंस मातुल कौं निश्चै कछु दिन बीतैं ॥

पंचम बुध कन्या के सोभित पुत्र बढ़ेंगे सोई ।
षष्टम सुक्र तुला के सनि युत सत्रु बचै नहिं कोई ॥
नीच ऊँच युवती बहु भोगैं सप्तम राहु परयौ है ।
केतु मूर्ति में स्याम बरन चोरी में चित्त धरयौ है ॥

भाग्य भवन में मकर महीसुत अति ऐश्वर्य बढ़ैगौ ।
द्विज गुरुजन कौं भक्त होय कें कामिनि चित्त हरैगौ ॥
नव निधि जाके नाभि बसत हैं मीन वृहस्पति केरी ।
पृथ्वी भार उतारैं निश्चै यह मानौं तुम मेरी ॥

तब ही नंद-महर आनंदे गर्ग पूजि पहिरायौ ।
असन बसन गजराज धेनु धन, भूरि भंडार लुटायौ ॥
बंदीजन द्वारें जस गावें, जो जाच्यौ सो पायौ ।
ब्रज में कृष्ण - जनम कौ उत्सव, "सूर" विमल जस गायौ ॥

इस पद में प्राप्त श्रीकृष्ण की जन्म-कुंडली और नंदादि के वात्सल्य रस का वर्णन 'साहित्य-लहरी' के निम्न लिखित पद की दृष्टिकूट शैली में इस प्रकार मिलता है—

विप्र जू, पावन पुन्न हमारे ।
जो जजमान जानि कैं मो कहँ, आपु इहाँ पगु धारे ॥
एक बार जो प्रथम सुनाई, लगन-कुंडली सोई ।
पुनहीं मोहि सुनावहु, सुन कर कहन लगे सुख भोई ॥
संवत मास षष्ठ बसु तिथि है, रवि तें चौथौ बार ।
पुत्र पच्छ औ वेद नखत है, हरषन जोग उदार ॥
दुती लगन में है सिव भूषन, सो तन कौं सुखकारी ।
केहरि वेद रास त्रै मूरत, सेस भार सब लैहै ॥
बान ससौ सुत है पुत्री के, मदन बहुत उपजैहै ॥
साख्र सुक्र तुल के रवि सुत तें, बैरी हरता जोग ।
मुनि बस तिय बस करें, भूमि सुत भाग भवन में भोग ॥
लाभ थान पंचमौ काम धुज, ग्रहनिधि गृह में आई ।
मान लेहु मन अपने, भू सब हरौ भार इन भाई ॥
बान वर्ष में कब देखेंगे, कही तिहारी पूरो ।
"सूरदास" दोउ परे पाँइ तर, भूषन चित्र समूरी ॥८१॥

प्रथम पद में गर्ग नाम स्पष्ट है । उसको यहाँ दृष्टिकूट शैली के कारण विप्र कहा है । इसी प्रकार मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और ग्रहों का भी दृष्टिकूट शैली में वर्णन हुआ है । उन सब के फल भी वही कहे हैं, जो प्रथम पद में प्राप्त हैं । इसमें वात्सल्य रस को इन पंक्तियों मे विशेष रूप से प्रकट किया गया है—

एक बार सो प्रथम सुनाई, लगन-कुंडली सोई ।
पुनहीं मोहि सुनावहु, सुन कर कहन लगे सुख भोई ॥ × ×
बान वर्ष में कब देखेंगे, कही तिहारी पूरी ।
'सूरदास' दोउ परे पाँइ तर, भूषन चित्र समूरी ॥

इन दोनों पदों से कृष्ण की जन्म-कुंडली इस प्रकार निर्मित होती है—
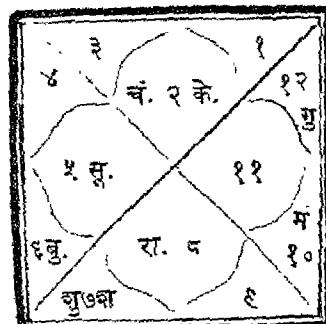
इसी प्रकार एक ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अनुरूप का साम्य देखिये—

नंदनंदन हँसे नागरी हर्ष चंद्रावलि कंठ लाई।
वाम भुजा बनी दक्षिण भुजा सखी पर चले बन धाम सुख कही न जाई॥
मनों बिंब दामिनी बीच नव घन सुभग देखि छबि काम रति सहित लाजै।
किधों कंचनलता बीच तरु तमाल भामिनी बीच गिरिधर बिराजै॥
गये गृह कुंज अलि गुंज सुमननि पुंज देखि आनंद भरे 'सूर' स्वामी।
राधिकारवन जुवतीरवन मनरवन निरखि छवि मन होत काम कामी॥

इस पद में राधिका को वाम भाग और चंद्रावलि को दक्षिण भाग में रखकर भगवान कृष्ण गृह को गये—ऐसा वर्णन है। राधिका को ज्येष्ठा और चंद्रावलि को कनिष्ठा कह कर साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली में इस प्रकार गाया गया है—

आज सलिल संग सरुचि साँवरी, करत रही जल केलि।
आइ गयौ तहाँ सरस साँवरो, प्रेम पसारत बेलि॥ × ×
भूषन हित परनाम 'छोट बड़', दोहुन कौं कर राखी।
'सूरज' प्रभु फिर चले गेह कौं, करत सत्रु-सिव साखी॥७॥

इसी प्रकार नेत्र वर्णन, नायक का मान, विपरीत रमण और खंडिता आदि साहित्य-लहरी के कई विशिष्ट विषय सूरदास के सागर और उनके अन्य पदों से मिलते हैं।

दृष्टिकूट पदों का साम्य—

सखी री! सुन, परदेसी की बात।
अरध बीच दै गये धाम कौं, हरि अहार चलि जात।
ग्रह नछत्र अरु बेद अरध कर, को बरजै मुहि खात॥
रवि पंचक सँग गये स्याम घन, तातें मन अकुलात।
कहु सहुत्त कवि मिलै 'सूर' प्रभु, प्रान रहत न तु जात॥२३॥

कहै न कोई परदेसी की बात ।
जब तें बिछुरे नंदसाँवरे ना कोई श्रावै न जात ।।
मंदिर अर्ध अवधि प्रभु बदि गये, हरि अहार चलि जात ।
अजया भख अनुसरत नाहीं, कैसे के समय सिरात ।।
ससि रिपु बरष भानु रिपु जुग सम, हरि रिपु कीन्हीं घात ।
नखद जोरि ग्रह बेद अरध करि, सोई बनै अब खात ।।
मघ पंचक लै गयौ साँवरौ, तातें जिउ अकुलात ।
"सूर" स्याम आवन की आसा, प्रान रहे न तु जात * ।।

साहित्य-लहरी के कतिपय विषय व्रतचर्या, नायक का मान आदि संप्रदाय से पूर्णत: संबंधित हैं । नायक का मान अष्टछाप में सूर एवं परमानन्द के अतिरिक्त और किसी ने नहीं कहा है । उसका आभास साहित्य-लहरी के कई पदों में मिलता है । इन कारणों से सिद्ध होता है संप्रदाय के मर्म से अपरिचित व्यक्ति इसकी रचना नहीं कर सकता है । इस प्रकार रचना की गंभीरता को देखते हुए भी यह साधारण कवि की कृति ज्ञात नहीं होती है । इसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के प्रतिपादन के लिए महाभारत आदि की कथाएँ भी उपलब्ध हैं । अन्य कवि, जिसका उद्देश्य केवल शृंगार वर्णन करना हो, इस प्रकार की रचना सर्वथा नहीं कर सकता है, अत: यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है । इसकी पुष्टि आंतर प्रमाणों से भी भली भाँति होती है ।

अब हम इसके रचना-काल विषयक पद पर विचार करेंगे । वह पद इस प्रकार उपलब्ध होता है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरीनंद कौ लिखि, सुबल संबत पेख ।।
नंदनंदन मास, छय तें हीन तृतीया, वार—
नंदनंदन जनम तें है बान सुख आगार ।।
तृतिय रिच्छ सुकर्म जोग, विचार 'सूर' नवीन ।
नंदनंदन दास हित, साहित्य-लहरी कीन ।।

उक्त पद की रचना-शैली भी साहित्य-लहरी के अन्य पदों की रचना-शैली के समान दृष्टिकूट वाली है, अत: इस पद में भी 'नंदनंदन मास' (माधव-

---

* लहेरियासराय द्वारा प्रकाशित प्रति में पृ० २७ पर इसे पाठांतर के रूप में उपस्थित किया गया है, किंतु यह एक स्वतंत्र पद है ।

वैशाख मास) और 'नंदनंदन जनम तें है बान सुख-आगार' (श्रीकृष्ण के जन्म दिन बुध से पाँचवाँ वार रवि) आदि वाक्य परोक्ष सूचक प्राप्त होते हैं। सूरदास विशिष्ट अवसर पर समय का भी अनुसंधान रखते थे, जैसा कि सारावली मे 'गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रवीन' यह वाक्य दिया हुआ है। इसलिए यहाँ पर दिये हुए संवतादि समय का कथन भी उनके स्वभाव के अनुकूल ही है। श्रीकृष्ण की जन्मपत्री सूचक पदों से यह भी ज्ञात होता है कि सूरदास ज्योतिषज्ञ भी थे, अतः यहाँ 'नक्षत्र'—'योग' आदि का कथन भी इस पद को सूरदास की रचना बतलाने में सहायक होता है।

सूरदास ने अपनी प्रायः सभी रचनाएँ किसी न किसी विशिष्ट हेतु से की हैं। जैसा कि—'सूर-पचीसी' बादशाह अकबर के लिए, 'सूर-साठी' एक बनिया के लिए, 'भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ' वाला पद चतुर्भुजदास के लिए, 'आज काम काल काम' यह पद भी एक बनिया के लिए, 'मन ! तू समझ सोच विचार' यह पद चौपड़ के खेलाड़ियों को देख कर, दान-मान आदि के अनेकानेक पद श्रीनाथ जी की सेवा के लिए, 'सूरसागर' महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की आज्ञानुसार और 'सूर-सारावली' उस 'सागर' की लीलाओं और वर्षोत्सव की सेवा-भावनाओं के तात्विक अनुसंधान के हेतु से रची गई हैं। इन हेतुओं को देखते हुए यह विचार उत्पन्न होता है कि 'साहित्य-लहरी' की रचना का भी कोई विशेष प्रयोजन अवश्य रहा है। इसका उल्लेख उक्त पद के 'नंदनंदन दास हित साहित्य-लहरी कीन' वाले वाक्य में किया गया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि 'नंदनंदन दास' अर्थात् कृष्ण के भक्तो के लिए यह 'लहरी' बनाई गई, तो वह एक सामान्य प्रयोजन कहा जायगा। उस सामान्य प्रयोजन का इस प्रकार विशेष प्रयत्न पूर्वक उल्लेख करना निरर्थक सा है, क्यों कि सूरदास की सभी रचनाएँ कृष्ण-भक्तों के लिए तो हैं ही; फिर 'साहित्य-लहरी' में इस बात का पृथक् उल्लेख क्यों किया गया ? अतः यह मानना होगा कि जिस प्रकार पूर्वोक्त विशेष रचनाओं के विशिष्ट हेतु रहे हैं, उसी प्रकार इस बृहद् रचना का भी कोई विशिष्ट हेतु अवश्य रहा है।

आख्यायिका और वार्ता से इस रहस्य का उद्घाटन होता है। आख्यायिका के अनुसार नंददास का नंदनंदन दास के नाम से संबोधन सूर द्वारा किया जाना स्पष्ट होता है। अष्टछाप के सातों कवि प्रारंभ से ही कृष्ण-भक्त थे, केवल नंददास ही पहले राम-भक्त थे। जब वे बल्लभ संप्रदाय में प्रविष्ट हुए, तब सूरदास ने ही उनको 'नंदनंदन दास' कहा था। इससे भी उक्त बात का समर्थन होता है।

इस गूढ़ उद्देश्य को समझने के लिए हमें अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। 'भावप्रकाश वाली वार्ता' से यह जाना जा सकता है कि नंददास ने जब पुष्टिमार्ग में प्रवेश किया, तब सर्व प्रथम वे सूरदास की संगति में छै मास तक चंद्रसरोवर पर रहे थे*।

'वार्ता' के इस कथन की पुष्टि नंददास की रचनाओं में सूरदास के पदों की भाषा, उनके भाव आदि के अनुसरण से हो जाती है। यहाँ पर दोनों कवियों के कतिपय ऐसे पद दिये जाते हैं—

सूर का पद—

भाई री ! कृष्ण नाम जब तें स्रवन सुन्यौ री, तब तें भूली री भवन बावरी सी भई री। भरि-भरि आवैं नैन, चित न रहत चैन, बैन नहीं सूधौ, भूली मन की दसा सब और ह्वै रही री।। कौन माता, कौन पिता, को बहिनी, कौन भ्राता, कौन ज्ञान, कौन ध्यान, मदन हई री। 'सूर' स्याम जब तें परे री मेरी दृष्टि बाम, काम-धाम, निसि-याम लोक-लाज कुल-कानि निनई री।।

नंददास का पद—

कृष्ण नाम जब तें स्रवन सुन्यौ री आली, भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री। भरि-भरि आवैं नैन, चित्त हू न परत चैन, मुख हू न आवै बैन, तन की दसा कछु औरें भई री।। जेतेक नैम धरम व्रत कीने री मैं बहु बिध, अंग-अंग भई हौं तो स्रवन मई री। 'नंददास' जाके स्रवन सुने यह गति माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री।।

सूर का पद—

**दौरि-दौरि आवत, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
गई तौ गई, न गई तौ न गई, ऐसी कहा कछु गरज भई री।।
सुनि राधे ! कैधौं मान मेरौ कह्यौ, तो बिनु लालन कछु न सह्यौ री।
'सूरदास' प्रभु मन हरि लीन्हों, हँसि-मुसिक्याय निकट गई री।।**

नंददास का पद—

**दौरि-दौरि आवति, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
अचरा पसारति, मोहि कों खिजावति, तेरे बाबा की कहा चेरी भई री।।
जा री, जा दूति ! तू भवन आपुने, लख बातन की एक बात कही री।
'नंददास' प्रभु वे क्यों नहीं आवत, उनके पाँयन कहा महेंदी दई री।।**

---

* प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३४०

(मकर संक्रांति)

सूरदास का पद—

'मेष' सी अचल कहा बैठी 'वृष' भान लली, 'मिथुन' के काजें तोहिं स्याम सुधि करी है। 'करिकै' सिंगार आज 'सिंह' ह्वै चलो री आली, प्यारी 'कन्या' रिझाव ह्वै कहा गुमान भरी है। 'तुल' रे बिरही कान, 'वृच्छ' के तरें ठाड़े आन, 'धन' 'मकर' करें आली, येही सुभ घरी है।। 'कुंभ' ज्यों मिलोगी जाय, व्याकुल कान कुंजन में, 'मीन' जैसे तलफत सुध करें घरी-घरी है। 'सूरदास' मदनमोहन सुमिरत हैं निस-दिन, द्वादस रासि रूप कृष्ण चरन जाय ढरी है।

नंददास का पद—

'मेष' सी ह्वै रही अति 'वृषभ' गति तेरी आली, 'मिथुन' के काजें हमारौ कह्यौ क्यों न कीजे। 'करक' मिटाओ आछे 'सिंह' की सरनि आओ, 'कन्या' कौ सुभाव सो तौ बेगि तजि दीजै।। 'तुला' लौ अतुल रस 'वृश्चिक' कौ विष मेटि, 'धन' घनश्याम जू की सरनि गहि लीजै। 'मकर' न कीजै आछे 'कुंभल' के गुन नेह, 'नंददास' भानमती 'मीन' गति लीजै।।

इसी प्रकार का एक पद कृष्णदास का भी प्राप्त है, जिसमें सूरदास के भावों का अनुकरण किया गया है—

कृष्णदास का पद—

'मीन' से चपल अरु 'मेष' हू न लागैं पल, 'वृषभ' सी गति लिए डोलत भवन में। 'मिथुन' पै चलै अंक 'करक' न लावै 'सिंह', 'कन्या' प्रवेस सो तौ आयौ तेरे तन में।। 'तुला' जिन करै आली 'वृश्चिक' व्यथा समान, 'धनुष' सी भौंह सोहैं 'मकर' तेरे मन में। 'कुंभ' जैसे कुच साज, भेंट पिय अंक आज, दंपति छबि निरख 'कृष्णदास' हरषि मन में।।

(ज्येष्ठ की दुपहरी)

सूरदास का पद—

सूर आयौ सीस पर, छाया आई पाँइन तर, पंथी सब झुक रहे देखि छाँह गहेरी। धंधीजन धंध छाँड़ि, बैठे धूपन के लिए, पसु-पंछी-जीव-जंतु चिरैया चुप रहे री।। ब्रज के सुकुमार लोग दै दै किवार सोए, उपवन की ब्यारि तामैं सुख क्यों न लहे री। 'सूर' अलबेली चलि, काहे कों डरात बलि, माह की मध्य राति जैसे ये जेठ की दुपहरी।।

नंददास का पद—

सूर आयौ माथे पर, छाया आई पाँइन तर, उतर परे देखि छाँह गहेरी ।। सोए सुकुमार लोग जोरि कै किवार द्वार, घोख मोख भवन भरत गहेरी । धंधौ जन धंध छाँड़ि जब त पसु-पंछी जीव-जंतु छिपत तरन सहेरी । 'नंददास' प्रभु ऐसे में कहुँ, माघ की आधी रात जैसे ये जेठ की दुपहरी ।।

इसी प्रकार नंददास के और भी अनेक पद हैं, जिनमें सूरदा ज्यों के त्यों शब्द और भाव के साथ उनकी रचना-शैली भी नददास का भ्रमरगीत भी सूरदास के भ्रमरगीत का विस्तार छाया रूप है ।

सूरदास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ को उपदेस' सुनो किन कान दै ।
सुंदर स्याम सुजान पठायौ मान दै ।।
कोउ आयौ उत ओर जितै नँदसुवन सिधारे ।
वहै बेनु धुनि होइ मनौं आये नँद-प्यारे ।।
धाई सब मल गाजि कै ऊधौ देखे जाय ।
लै आई ब्रजराज पै, हो आनँद उर न समाय ।।
अरघ आरती तिलक दूब दधि माथे दीन्हीं ।
कंचन कलस भराय आनि 'परिकरमा' कीन्हीं ।।
गोप भीर आँगन भई मिलि बैठे जादव जात ।
जल झारी आगें धरी हो 'बूझत हरि कुसलात' ।।
'कुसल छैम' वसुदेव 'कुसल' छैमहिं कुबजाऊ ।
'कुसल' छैम अक्रूर 'कुसल' नीके बलदाऊ ।।

नंददास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ कौ उपदेस' सुनो ब्रज-नागरी ।
रूप सील लावन्य सबै गुन-आगरी ।।
ऊधासिन बैठाय बहुरि 'परिकरमा' कीनीं ।
'बूझत सुधि नँदलाल की बिहँसत मुख ब्रजबाल ।
नीके हैं बलबीर जू बोलत बचन रसाल ।।
'कुसल'राम अरु स्याम ? सज संग) सब विनके ।
यदुकुल सगरे कुसल परम आनद हैं तिनके ।।

इस प्रकार सूरदास के भ्रमरगीत की पद्धति, उसके भाव और शब्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग नंददास ने अपने भ्रमरगीत में सर्वत्र किया है। फिर भी नंददास को सूरदास ने इसके लिए कभी टोका नहीं था। इससे निश्चित होता है कि नंददास सूरदास के काव्य-शिष्य थे और संप्रदाय की भावनाओं का ज्ञान भी उनको सूरदास से ही प्राप्त हुआ था। इसी लिए नंददास ने अपने अनेक पदों में सूरदास के पदों के कई वाक्य भी ज्यों के त्यों ले लिये है। उनको शिष्यत्वेण उनके वाक्य, भाव और भाषा का उपयोग करने का सपूर्ण अधिकार था; अन्यथा सूरदास ने जिस प्रकार कृष्णदास अधिकारी को उनके पदों मे प्राप्त अपने पदों की मामूली छाया को देख कर भी टोका था*, उसी प्रकार वे नंददास को भी अवश्य ही टोकते। नंददास की 'रस-मजरी' में जो नायिका भेद का उल्लेख मिलता है, उसके मूल में भी कदाचित 'साहित्य-लहरी' की अनुकरणात्मक प्रेरणा ही रही हो।

नंददास के अंतसाक्ष्य और सोरों की सामग्री के अनुसंधान से भी इस बात की पुष्टि होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नंददास बल्लभ संप्रदाय मे दीक्षित होकर सूरदास के आदेश पर अपने गृह गये थे। वहाँ पर उन्होंने गृहस्थाश्रम का उपभोग किया था। तत्पश्चात् वि० सं० १६२० के लगभग वे विरक्त होकर पुनः स्थायी रूप से ब्रज में आकर रहने लगे थे। उक्त कथन की पुष्टि नंददास के अंत:साक्ष्य और वार्ता के उल्लेख से होती है।

जिस पद से नंददास का गृहस्थ होना और दूसरी बार ब्रज में आना स्पष्ट होता है, वह यह है—

> प्रीति लगी श्री नंदनँदन सों, इन बिनु रह्यौ न जाय री।
> सास नँनद कौ डर लागत है, जाउँगी नैन बचाय री।।
> गुरजन, सुरजन, कुल की लाजन, करत सबहिं मन भाय री।
> 'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ, हम तुम लागत पाँय री।।'
> जाकों सिव नारद मुनि तरसत, श्रुति पुरान गुन गाय री।
> मुख देखें बिनु, प्रान नहिं रहि हैं, 'जाउँगी पौर ब्रजराय री।।'
> स्यामसुंदर मुख कमल अमृत रस, पीवत नाहिं अघाय री।
> 'नंददास' प्रभु जीवन धन मिले, 'जनम सुफल भयौ आय री।।'

---

* प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० २०६

उक्त पद में सामान्यतः गोपीजन का वर्णन दिखायी देता है, किंतु अर्थानुसंधान से इसमें गोपी-प्रेम-भाव-भावित नंददास का वृत्तांत ही स्पष्ट होता है। इस पद का 'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ' वाला वर्णन श्रीमद्भागवत के रास से संबंधित है। रास के समय गोपीजनों को उनके पुत्र आदि ने वन में जाने से रोका था; किंतु इसमें "जाउँगी पौरि ब्रजराय री" वाक्य उस अर्थ के विरुद्ध पड़ता है। श्रीमद्भागवत में ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता है कि "ब्रजराय की पौरि" अर्थात् नंदराय जी के घर जाने से किसी भी गोपी को उसके पुत्र-कलत्र आदि ने इस प्रकार विनय के साथ रोका हो। फिर इस पद के अंतिम चरण "जनम सुफल भयौ आय री" भी नंददास के द्वितीय बार ब्रजागमन की ही सूचना देता है; क्यों कि गोपीजनों का जन्म तो श्रीकृष्ण के जन्म और उनके नित्यप्रति के दर्शनादि के कारण प्रारंभ से ही सुफल हो चुका था, अतः उनके लिए इस प्रकार का उल्लेख प्रमाण-विरुद्ध और असंगत ज्ञात होता है। इसलिए यह मानना होगा कि नंददास गृहस्थ होने के पश्चात् घर से नाता तोड़ कर द्वितीय बार ब्रज में आकर स्थिर रूप से रहे थे, जिसका समय वि० सं० १६२० के आस-पास का, वार्ता में वर्णित "जयति रुकमनि नाथ पद्मावती प्राणपति" वाले कथन से सिद्ध हो सकता है। ब्रज के विरह सूचक पदों से भी नंददास के द्वितीय बार ब्रजागमन की पुष्टि होती है।

नंददास अपनी गृहस्थी को छोड़ कर ब्रज में आये थे, तभी तो उनके भाई तुलसीदास को उन्हें समझाने के लिए ब्रज में आना पड़ा, जिसका समय वि० सं० १६२६ गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है। इससे सूरदास और नंददास का विशिष्ट सांप्रदायिक एवं साहित्यिक संबंध भी ज्ञात हो सकता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि वार्ता में उनके दुबारा ब्रज में आने का स्पष्ट कथन क्यों नहीं मिलता ? इसका उत्तर वार्ता की कथात्मक शैली है। इस शैली में ऐतिहासिक उल्लेखों का क्रमबद्ध विवरण न मिलना स्वाभाविक है।

अब 'साहित्य-लहरी' के रचनाकाल का निश्चय करना हमारे लिए शेष रह जाता है। उक्त पद के "मुनि पुनि रसन के रस लेख। दसन गौरी-नंद कौ लिखि सुबल संवत पेख" से कुछ विद्वान इसकी रचना का समय वि० सं० १६०७ करते हैं। कुछ विद्वान अब १६१७ और कुछ १६२७ भी करने लगे हैं। इस भिन्नता का कारण 'रसन' शब्द के अर्थ का मतभेद है। हमारे मत से ज्योतिष के अनुसंधान एवं 'रसन' शब्द की वास्तविकता के आधार पर उसको 'एक' मानना अधिक समीचीन कहा जायगा

क्यों कि "रसन के रस" अर्थात् जिह्वा का षट रस अर्थ ही प्रामाणिक है। कुछ विद्वान "मुनि सुन रसन के रस लेख" ऐसा पाठ भी उपस्थित करते हैं। इसके आधार पर 'सुन' का अर्थ ० और 'रसन के रस' का अर्थ ६ करने से १६०७ संवत् स्पष्ट होता है। यहाँ पर हम इस रचना के उपर्युक्त हेतु का ऐतिहासिक अनुसंधान करना उचित समझते हैं, जिससे उक्त रचना के निर्माण काल पर विशेष प्रकाश पड़ सकेगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि इसकी रचना नंददास के हितार्थ की गई थी। इसके लिए नंददास के वल्लभ संप्रदाय में प्रवेश करने का समय निश्चित करना आवश्यक होगा।

नंददास के पुत्र का नाम कृष्णदास, रामपुर का नाम श्यामपुर आदि उल्लेख भी सोरों सामग्री द्वारा प्राप्त होते हैं और उससे यह भी ज्ञात होता है कि नंददास ने वि० सं० १६१३ में अपना विवाह किया था। इस अनुसंधान से उनका ब्रज में आना निश्चित होता है।

नंददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। इसकी पुष्टि गोकुलनाथ जी के प्रत्यक्ष वचनों से होती है, अतः तुलसीदास के जन्म के अनंतर ही उनका जन्म काल माना जा सकता है। यद्यपि तुलसीदास का जन्म-काल सं० १५८९ प्रायः सभी विद्वानों ने मान लिया है, फिर भी वह किसी प्रामाणिक और प्राचीन सूत्र से पुष्ट नहीं है, अतः तुलसीदास के जन्म का निश्चित समय अभी संदिग्ध ही कहा जावेगा। यदि हम तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ मान लें, तब नंददास का जन्म उसके बाद मानना उचित होगा। सोरों-सामग्री और वार्ता के अनुसंधान से नंददास का जन्म सं० १५९० माना जा सकता है। तभी वि० सं० १६१३ में उनके विवाह वाला कथन और उससे पूर्व उनका किसी संघ के निरीक्षण में ब्रज आदि स्थानों में जाना संभव हो सकता है। वार्ता से ज्ञात होता है कि नंददास किसी संघ के निरीक्षण में तुलसीदास द्वारा सर्व प्रथम यात्रा को भेजे गये थे, अतः उस समय वे शायद वयस्क नहीं थे, ऐसा ज्ञात होता है। फिर भी वे तरुण अवस्था में प्रवेश कर रहे थे, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति का वर्णन वार्ता द्वारा प्राप्त होता है। इन सब अनुसंधानों पर विचार करते हुए प्रथम ब्रजागमन के समय उनकी आयु ज्यादा से ज्यादा १८ वर्ष की मानी जा सकती है। इस अनुमान से उनका प्रथम ब्रजागमन वि० सं० १६०७ के आस-पास का स्पष्ट होता है। यही समय उनका वल्लभ संप्रदाय में प्रवेश करने का है। इस कच्ची अवस्था और लौकिक आसक्ति के कारण ही गोसाईं जी ने उन्हें

सूरदास जैसे सिद्ध कोटि और विरक्त ज्ञानी भक्त के पास रखा था। अवश्य ही उस समय तक वे संस्कृत विद्या के विशेष ज्ञाता हो चुके थे, जिसकी सूचना वार्ता और उनकी रचनाओं से भी प्राप्त होती है।

सूरदास ने नंददास के मन के अनुकूल विषय को साहित्य-लहरी द्वारा उपस्थित कर उनकी श्रीमद्भागवत के प्रति निष्ठा दृढ़ की, जिसके कारण उनका मन श्रीमद्भागवत की कृष्ण-लीलाओं में क्रमशः एकाग्र होता गया। सूरदास के उपदेशानुसार उन्होंने गृहस्थी का भी उपभोग किया था, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति सर्वथा निर्मूल हो गयी थी।

इस प्रकार के अनुसंधान से साहित्य-लहरी का समय वि० सं० १६०७ ज्ञात होता है। उक्त अनुसंधान के कारण यह मान लिया जाय कि नंददास के गृह जाने के अनंतर सूरदास ने समय-समय पर अन्य रस आदि के कुछ विशेष पदों की रचना कर वि० सं० १६१७ में इसकी पूर्ति की, तब भी उक्त विवरण में 'हेतु' की कोई असंगति नहीं दिखलायी देती है। अथवा नंददास के दूसरी वार ब्रज में आने पर उन्होंने इसकी रचना सं० १६२७ में की थी—ऐसा भी माना जाय, तब भी कोई असंगति नहीं दिखलायी देती है। इसकी रचना उपर्युक्त संवतों में से किसी भी संवत् में मान ली जाय, तब भी उक्त प्रमाणों से यह निश्चित है कि साहित्य-लहरी की रचना का मूल हेतु नंददास थे।

३. सूरसागर—यह सूरदास की प्रामाणिक और सर्व प्रधान रचना है। इसके दो संस्करण पहिले प्रकाशित हुए—एक बंबई के वेंकटेश्वर प्रेस से, दूसरा लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से। पहले संस्करण में श्रीमद्भागवत के प्रथम से द्वादश स्कंध पर्यंत के पद हैं। दूसरे में केवल दशम के पूर्वार्द्ध की लीलाओं के ही पद हैं। इन दोनों में सब मिलाकर करीब ५००० पद हैं। लखनऊ वाले संस्करण से प्रारंभ में कुछ नित्य-कीर्तन के भी पद हैं, जिनमें सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाएँ भी हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर के अन्य संस्करण में उक्त दोनों मुद्रित प्रतियों के अतिरिक्त अन्य हस्तलिखित प्रतियों से कुछ विशेष पद बढ़ाये गये हैं। उक्त सभा को प्रथम से द्वादश स्कंध वाले संस्करण की सबसे ज्यादा प्राचीन प्रति सं० १७५३ की लिखी हुई काशी से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार केवल दशम पूर्वार्द्ध वाले संस्करण की एक प्राचीन प्रति वि० सं० १६९७ की उदयपुर में है। इन दोनों प्राचीन प्रतियों से उक्त संस्करणों की प्राचीनता सिद्ध होती है।

उपलब्ध मुद्रित एवं हस्तलिखित प्रतियों के अध्ययन से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह श्रीमद्भागवत का न तो अनुवाद है, न इसमें इसकी प्रथम से द्वादश स्कंध की कथाओं का पूर्ण समावेश ही हुआ है। फिर भी हमें इस विषय पर सूरसागर में सूरदास का निम्न कथन ही मिलता है—

व्यास कहे सुखदेव सों द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाय॥

(स्कंध १, पद २२५)

इस उल्लेख से जान पड़ता है कि सूरदास ने द्वादश स्कंध पर्यंत की कथाओं को, जो व्यास जी द्वारा कथित हुई हैं, गाया है।

इन दोनों विरोधाभास वाले कथनों का एक अविरुद्ध निष्कर्ष यह हो सकता है कि श्री वल्लभाचार्य जी ने व्यास जी की जिस समाधि भाषा को प्रमाण रूप माना है, उसी का सूरदास ने गायन किया है।

श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्रीमद्भागवत में त्रिविध भाषा है—लौकिकी, परमत और समाधि। लौकिकी भाषा उसे कहते हैं, जो सूत जी द्वारा ऐतिहासिक चरित्र रूप से कही गयी है। परमत भाषा उसे कहते हैं, जो अन्य ऋषि-मुनियों के विभिन्न मतों के रूप में उपस्थित की गयी है। समाधि भाषा उसे कहते हैं, जो व्यास जी को समाधि में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था, उसी के वर्णन रूप में, व्यास-सुकदेव द्वारा कही हुई है। महाप्रभु जी ने इसी समाधि भाषा को प्रमाण चतुष्टय में स्वीकार किया है*। यह भाषा भक्तिमार्ग का मूल है। इसी के आधार पर चारों भक्ति-संप्रदायों की विविध भावनाओं का विस्तार हुआ है। संभव है सूरदास ने अन्य भाषाओं की आवश्यक कथाओं आदि पर ध्यान न दिया हो। इसी प्रकार परमत स्वरूप कर्म-ज्ञान वाले वर्णनों की भी उपेक्षा की गई हो। भक्ति में आवश्यक ऐसे कर्म-ज्ञान का तो सूरदास ने वर्णन किया ही है, जिसके फलस्वरूप ईश्वर में प्रेम बढ़ाने वाले कर्म और ब्रह्म के माहात्म्य सूचक अनेक प्रसंग और वर्णन प्राप्त होते हैं। सूरदास का हेतु श्रीमद्भागवत वर्णन से भगवान् की भक्ति और उनकी अनेक लीलाओं का कथन करना मात्र था—ऐसा ज्ञात होता है। इसीलिए सूरसागर की कथाओं में स्कंधानुक्रम होते हुए भी प्रत्येक प्रसंग या अन्य वर्णनों का भागवत-क्रम पूर्णतः अपेक्षणीय नहीं समझा गया है।

---

* 'समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्'। (निबंध)

सूरसागर के अध्ययन से दूसरी बात यह ज्ञात होती है कि श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की प्रत्येक प्रमुख कथा को वर्णनात्मक रीति से बड़े पदों में भी गाया है। उनके अंतर्गत जहाँ कहीं ईश्वर का माहात्म्य अथवा उनकी भक्ति के उल्लेखनीय वर्णन आते हैं, वहाँ सूरदास ने तद्विषयक अनेक छंदों में स्फुट पदों की रचना द्वारा प्रसंगों को ऐसा भावपूर्ण और रोचक बना दिया है, जिनसे श्रोता के हृदय में भक्ति का अनायास प्रादुर्भाव होता है। इन स्थानों में सूरदास ने श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराण, महाभारत आदि का भी आश्रय लिया है। इसके लिए 'द्रौपदी सहाय' तथा इसी प्रकार के अन्य पदों को देखना चाहिए। इससे भागवत की अपेक्षा भी सूरसागर विशेष आकर्षक और उपयोगी सिद्ध होता है।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास का अभिप्राय सूरसागर की रचना द्वारा 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ सर्वतोऽधिक स्नेह' रूप भक्ति का वर्णन और विकास करना मात्र है, और उसमें वे पूर्णतः सफल भी हुए हैं। यह एक विकल्प है।

दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि जब सूरदास सूरसागर के प्रारभ में यह स्पष्ट करते हैं कि—

व्यास कहे सुकदेव सों द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ॥

तब संभव है उन्होंने समस्त श्रीमद्भागवत का ही अनुवाद किया हो। उसके 'सहस्रावधि' पद होने के कारण उसकी आद्योपांत प्रतिलिपि न हो सकने से उसमें से मुख्य-मुख्य अंशों को किसी ने संगृहीत कर लिया हो और उसी की फिर अनेक प्रतिलिपियाँ होती रही हों, जो आज-कल उपलब्ध हैं।

इस अनुमान की पुष्टि सूरसागर की अनेक प्रतियों के पदों का मिलान करने से भी होती है। सूरसागर की उपलब्ध प्रतियों में दशम-स्कंध के पद ही विशेष रूप से मिलते हैं, किंतु काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सं० १७९८ की एक ऐसी प्रति का विवरण दिया गया है, जिसमें दशम-स्कंध का केवल १ पद है, और द्वादश स्कंध के १७४५ पद हैं। इससे ज्ञात होता है कि अन्य स्कंधों के भी अनेक पद रचे गये होंगे, जो इस समय किसी कारणवश उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।

जो भी हो, 'सूर-सारावली' के 'सार' वाले उल्लेख से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि—

(१) सूरदास ने अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी से श्रीमद्भागवत तत्व का उपदेश प्राप्त कर उसकी अनेकविध हरि-लीलाओं को गाया था, जिनका आधार श्रीमद्भागवत और उसके अनुकूल अन्य पुराण, महाभारत, रामायण, पचरात्र और संहितादि रहा है । ये लीलाएँ कथात्मक शैली की हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि इनको उन्होंने अपने सेवकों के उपदेशार्थ गाया था ।

(२) संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की लीलाओं को प्रति वर्ष नवीन भाव, छंद और वर्णन की विभेदता से सूरदास ने श्रीनाथ जी के सन्मुख स्वत उद्गार रूप से गाया था।

संभव है, ये दोनों संग्रह प्रारंभ में भिन्न-भिन्न रूप में लिखे जाते हों और पीछे किसी ने उन्हें एक कर दिया हो, जो आज द्वादश स्कंधात्मक और दशम पूर्वार्द्ध के रूप में उपलब्ध होते हैं।

द्वादश स्कंधात्मक उपलब्ध संस्करण निम्न लिखित पदों के अनुसंधान से सूरदास के बाद का संकलन निश्चित होता है। सूरसागर के जो पद अप्रासंगिक हैं, उनका ज्ञान उनके अध्ययन से स्वतः हो जाता है।

उदाहरणार्थ संख्या १६ से २२३ तक के पद स्पष्टतः सूरदास के दीनता, आश्रय और विनय आदि के हैं । इनका उस स्थान की कथा से कोई संबंध ज्ञात नहीं होता है। इनमें सूरदास के व्यक्तिगत उद्गार प्रकट हुए हैं। यथा—

महा मोह में परयौ 'सूर', प्रभु काहैं सुधि बिसरी ॥ पद १६ ॥
असरन सरन 'सूर' जाँचत है, को अब सुरति करावै ॥ पद १७ ॥

इसी प्रकार अन्य स्थानों में कई पद अप्रासंगिक हैं । इनसे सूरसागर के इस संस्करण का संकलन सूर के अनंतर किसी व्यक्ति द्वारा हुआ है, यह स्पष्ट ज्ञात होता है।

इस मान्यता के आधार पर सूरसागर के नवीन संस्करणों में भागवत के क्रमानुसार परिवर्तन करना चाहिए। इसके स्पष्टीकरण के लिए यहाँ सूरसागर-प्रथम स्कंध के कुछ पदों पर विचार किया जाता है ।

(प्रथम स्कंध)

प्रथम अध्याय—

सूरसागर के ३, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५ संख्या वाले पद मंगलाचरण (भागवत) के श्लोक में वर्णित निर्गुण स्वरूप की सगुण लीलाओं का बोध कराने वाले हैं। ये सब पद सूरसागर संख्या २

वाला पद—"अविगत गति कछु कहत न आवै" के अंतिम चरण वाले "तातें सूर सगुन-पद गावै।" कथन के विस्तार रूप हैं। इनसे भगवान का अनवगाह्य माहात्म्य, 'कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुं म सर्व सामर्थ्य रूप' तथाच भक्त-वत्सलता, शरणागत-वत्सलता आदि गुण भी प्रकट होते हैं।

"माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः स्नेहो भक्तिरिति"—इस प्रकार की आचार्य प्रतिपादित भक्ति को हृदयस्थ करने के लिए प्रथम ईश्वर का 'माहात्म्य', फिर उनके दिव्य गुणों का जानना जरूरी है। इसीलिए सूर ने भागवतोक्त भगवल्लीला वर्णन के पूर्व मंगलाचरण वाले श्लोक के भक्तिपक्ष को स्पष्ट किया है। यह कथन "सत्यं परम धीमहि" का ही भाष्य है—यदि ऐसा कहा जाय तो यथार्थ होगा।

उक्त संख्या वाले पदों में ८ वाँ पद "प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ" सूरसागर के उक्त प्रसंग में असंबद्ध है। वार्ता के अनुसार सूरदास ने इस पद का कथन अपने अंतिम समय में गो० विट्ठलनाथ जी के लिए किया था। इसकी सत्यता "बदन प्रसन्न कमल सन्मुख ह्वै देखत हो हरि जैसे" इत्यादि पंक्तियों से स्पष्ट होती है। इसके प्रत्यक्षदर्शी वचन हरि के सदृश किसी अन्य व्यक्ति के लिए कहे हुए स्पष्ट प्रतिभाषित हो रहे हैं।

सूरसागर के १६ से २२३ संख्या तक के स्फुट पद दीनता, आश्रय और विनय विषयक हैं, जो अप्रासंगिक हैं। सूरसागर का २२४ संख्या वाला पद भागवत के द्वितीय श्लोक में प्राप्त उसके कथा–माहात्म्य के अनुकूल है। भागवत तृतीय श्लोक "निगम कल्पतरु" के अनुसार यहाँ पर सूरसागर का 'निगम कल्पतरु' वाला पद देना आवश्यक था। इसी प्रकार सूरसागर का 'सुत व्यास सौं हरिगुन सुने' वाला संख्या २२८ का पद भागवत के ४–५ श्लोक के अनुसंधान से यहाँ देना आवश्यक था।

द्वितीय अध्याय—

इसके बाद "व्यास कह्यौ जो सुक सौं गाय" यह शुक के जन्म की कथा वाला सं० २२६ का पद भागवत श्लोक २ के व्याख्यान रूप होने से आवश्यक है। इसमें शुकदेव का वर्णन आने से सूरदास ने अन्य पुराणों से शुक के जन्म की कथा का आद्योपांत वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय—

इसमें भगवान के अवतारों का वर्णन है। सूरदास ने इन अवतारों में व्यास का सब से प्रथम वर्णन पद सं० २२९ मे किया है भागवत के श्लोकों

में जहाँ व्यास-जन्म का अत्यंत सूक्ष्म उल्लेख है, वहाँ सूरदास ने उसका बड़े रोचक ढंग से विस्तार के साथ वर्णन किया है। उसमें "देखो काम प्रताप अधिकाई। कियौ परासर बस रिषिराई ॥ प्रबल शत्रु आहै यह मार। यातें संतो चलौ सँभार॥"—इस प्रकार उपदेश भी दिया है। यहाँ अन्य अवतारों के उल्लेख वाला पद भी होना चाहिए था।

चौथा, पाँचवाँ, छठा अध्याय—

व्यास जी के असंतोष का विशद वर्णन—"भयौ भागवत जा परकार।" सं० २३० के पद में है। इसमें भागवत की महिमा और नारदजी के चरित्र का संकेत भी है। श्लोक २८ से ३७ तक के अंतर्गत लीला-कीर्तन का माहात्म्य है। इन्हें सूरदास ने पद सं० २३१ से २३५ तक माहात्म्य के रूप में गाया है। फिर विदुर-गृह-गमन और द्रौपदी-वस्त्र-हरण के पद २३७ से २५६ तक के वर्णनों से सूरदास ने उस भक्ति की महिमा के उत्कर्ष को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया है। इन पदों में सूरदास ने अनेक प्रकार से भक्ति को प्रकट किया है। इसके अध्ययन से हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता है।

सात से पंद्रह अध्याय—

इन अध्यायों में भागवत के मुख्य अधिकारी परीक्षित के जन्म से संबंधित और पांडव के उत्तर-गमन विषयक महाभारत की कथा है। इसके वर्णन में सूरदास ने पद सं० २६० से २६१ तक पांडव-राज्याभिषेक का समय संक्षिप्त एवं रोचक ढंग से गाया है।

इनके वर्णन में सूरदास ने भागवत के अध्यायों के क्रम का अनुसरण नहीं किया है, क्यों कि ऐसा करने से कथा में रोचकता और सरलता नहीं आ सकती थी।

भीष्म के कथन के तत्त्वरूप से सूरदास ने २६२ तक के स्फुट पद और गाये हैं। सं० २६६ का पद अप्रासंगिक है। सं० २६७ से २८० तक में भक्त-वत्सलता का वर्णन है। इसमें अर्जुन-दुर्योधन का कृष्ण-गृह-गमन, भीष्म के प्रति दुर्योधन के वचन, भीष्म-प्रतिज्ञा आदि का कथन किया गया है। पद २८२, २८३ में कुंती-स्तुति का वर्णन है, जो अध्याय ८ के अनुकूल होने के कारण पहले दिया जाना चाहिए था। पद २९१ में द्वारिका-गमन का वर्णन है, जो भागवत अध्याय १० के अनुकूल है। इसी प्रकार पद सं० २९४ से २९८ तक का वर्णन भागवत क्रम के अनुकूल एवं प्रासंगिक है, किंतु सं० २९९, ३०५, ३०९ और ३२५ वाले पद अप्रासंगिक हैं।

आज कल कई विद्वानों का ध्यान सूरसागर का प्रामाणिक संस्करण निकालने की ओर गया है, किंतु उनको सूरसागर का मूल स्वरूप निश्चित करने में बड़ी कठिनाई ज्ञात होती है। हमने अपने मतानुसार सूरसागर के मूल स्वरूप का निर्देश किया है। यदि इस प्रकार के परिवर्तन और संशोधन के अनुसार सूरसागर का संपादन किया जाय तो पूर्व विकल्प भी संगत हो जायगा और इससे श्रीमद्भागवत की संगति भी मिल जायगी। इस प्रकार के संपादन में विनय तथा नित्य एवं नैमित्तिक वर्षोत्सव वाले लीला-पदों को भिन्न-भिन्न रूप से परिशिष्टों में देना होगा। इनके अतिरिक्त प्रासंगिक एवं विशिष्ट स्फुट रचनाओं का संपादन उनके वृत्त के साथ स्वतंत्र रूप से करना उचित है। इस प्रकार संपादन होने पर ही हम सूरसागर के मूल रूप की वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। संपादन के पूर्व सूरदास के पदो की विशेष खोज भी नितांत आवश्यक है।

अब यहाँ पर सूरदास की उन १४ कृतियों पर भी विचार करना है, जिनको हमने सूरसागर के अंतर्गत उनकी प्रामाणिक रचनाएँ माना है।

भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरसागर-सार, सूर-रामायण—इन रचनाओं का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी मिलता है। इनके नाम और परिचय से ये स्पष्टतया सूरसागर के ही अंश ज्ञात होते हैं। सूर-रामायण सूरसागर के नवम स्कंध के राम विषयक पदों का संकलन है।

मानलीला और राधारसकेलिकौतुहल—ये दोनों रचनाएँ श्रीनाथ जी के मंदिर में आज तक गाई जाती हैं। 'मानलीला' में मान के स्फुट पदों का संग्रह है। 'राधारसकेलिकौतुहल' का दूसरा नाम 'मान-सागर' भी है, जो मान का विस्तृत वर्णन करने वाली बड़ी रचना है। यह मंदिरों में ग्रहण आदि के समय गाई जाती है।

गोबर्धनलीला—इसमें एक सौ से भी ज्यादा पद हैं, जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की कथा के विस्तृत अनुवाद रूप हैं, अतः इस रचना का समावेश भी सूरसागर के अंतर्गत हो जाता है। इसको सरस लीला भी कहते है। सूरदास के गोबर्धन-लीला विषयक फुटकर गेय पद भी प्राप्त हैं, जो अन्नकूट के समय मंदिरों में गाये जाते हैं।

दानलीला—सूरदास की तीन बड़ी-बड़ी दान-लीलाएँ प्राप्त हैं, जो 'अजनमरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मंदिरों में गाई जाती हैं। दानलीला के अन्य स्फुट पद भी प्राप्त होते हैं।

भँवर गीत---यह सूरदास की प्रसिद्ध और प्रशंसनीय रचना है। इसके भी तीन बड़े-बड़े पद उपलब्ध हैं, जो श्रीमद्‌भागवत दशम स्कंध के विस्तृत अनुवाद हैं। इनका समावेश सूरसागर के ही अंतर्गत हो जाता है।

नाग लीला---यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है और श्रीमद्भागवत दशम स्कंध की कथा से संबधित है। इसका समावेश भी सूरसागर के अंतर्गत हो जाता है।

ब्याहलो---इसके कई पद सूरसागर और वल्लभ संप्रदाय की कीर्तन-पुस्तकों में उपलब्ध हैं। इसका एक विस्तृत पद चौपाई और गीतिका छंद मे भी उपलब्ध होता है। ये सब पद संप्रदाय के मंदिरों मे देव प्रबोधिनी को गाये जाते हैं। इस रचना में राधाकृष्ण के विवाह का वर्णन है।

प्राणप्यारी---इस रचना को सूरसागर के अंतर्गत नहीं पाने से डा० दीनदयालु गुप्त ने इसे संदिग्ध माना है, किंतु यह रचना संप्रदाय के मंदिरो मे राधाष्टमी के अनंतर निश्चित समय में और निश्चित रूप से गाई जाती है। इसको श्याम-सगाई भी कहते हैं। यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है और इसका समावेश सूरसागर के अंतर्गत होना चाहिए।

दृष्टिकूट के पद और सूर-शतक---ये सूरदास के दृष्टिकूट पदों के स्फुट सग्रह हैं। संभवतः ये दोनों एक ही रचना के उभय रूप हैं। सूर-शतक मे सूरदास की दृष्टिकूट शैली के १०० पदों का सूरसागर से संग्रह किया गया है। इनकी टीका भी संग्रहकार ने ही की है। सूर-शतक के निम्न लिखित मंगला-चरण से उसका परिचय इस प्रकार मिलता है---

> **श्री 'गोबर्धनधरन' जय करन, सरन जन मोद।**
> **वृंदारक वंदित सकल, वृंदा विपिन विनोद॥**
> **'श्रीवल्लभ' 'बिट्ठल' पदन, वंदित विसद बिचार।**
> **बढ़त सुविद्या बुद्धि बल, विनसत विकट विकार॥**
> **भक्तन के पद हिय धरत, जिय कों प्रियकर होत।**
> **तम तजि उत्तमता उदित, बिदित जगत कौ पोत॥**
> **यह संसार असार में, हरि--कीर्तन सुख सार।**
> **कहे करत सबहून लों, बड्डे उबर बिसार॥**
> **उपकारक है सबन कों, हेतु अर्थ समुझाय।**
> **तातें गायें भक्त जन, भाषा सरल सुभाय॥**

सूरदास तिनमें भए, जगत 'जगत ज्यों सूर' ।
गाये सब विधि करि सुजस, हरि-लीला रस पूर ।।
जिनके पद में 'गूढ़' बहु, 'अर्थ भाव' कौ व्यंग ।
सूझ परे जेते तिते, संग्रह कियौ सुसंग ।।
श्री बल्लभकुल सकल कौ, कृपा पाय अनुकोस ।
'भाग नगर' दक्षिन दिसा, कियौ सुमति निरदोस ।।
"बालकृष्ण" कौ बीनती, सुनियै रसिक सुपंथ ।
लीजै सुमति सुधारि कै, "सूर सतक" यह ग्रंथ ।।

यह बालकृष्ण कवि श्री गुसाईंजी के २५२ सेवकों में से थे। उनकी वार्ता "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में है । इसमें उनको भागनगर दक्षिण के रहने वाला ब्राह्मण कहा है। यह कवि श्री गुसाईंजी का सेवक होने के कारण सूरदास का भी समकालीन था । कवि की उपस्थिति का समय उसके माला-प्रसंग के इस पद से जाना जा सकता है—

वल्लभकुल में कलहंस कुल कलसा । भक्ति मर्यादा राखी, चारों वेद वदै साखी तिलक और माल पहरे साँचे तुलसा ।। कलियुग में कीरत भई तिहुँ लोक जस गावै नारी नर घर-घर सरसा । 'बालकृष्ण' बलिहारी कहाँ लों कहै तिहारी गोकुलनाथ चिर जियौ कोटि बरीसा ।।

इस पद से कवि की स्थिति श्री गोकुलनाथ जी के माला-प्रसंग के समय अर्थात् वि० सं० १६७७ पर्यंत तो अवश्य थी—ऐसा निश्चित होता है। कवि ने 'सूर-शतक' में सूरदास के दृष्टिकूट वाले १०० पदों का अर्थ किया है। काशी नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट में लिखा है—

"यह टीका तथा संग्रह श्री बल्लभ संप्रदाय के आचार्य काशीस्थ गो० गोपाललाल जी के शिष्य बालकृष्ण ने अपने गुरु की आज्ञा से गुजरात भागनगर में किये।"

रिपोर्ट का यह उद्धरण भ्रमात्मक है। गुजरात में भागनगर नाम का कोई ग्राम नहीं है । बल्लभ संप्रदाय में मुसलमानों के नामों से संबंधित ग्राम एवं नगरों का उच्चारण नहीं होता है, इसलिए जिस प्रकार अहमदाबाद को राजनगर कहते हैं, उसी तरह दक्षिण हैदराबाद को "भागनगर" कहते है। यह नाम आज तक वहाँ की जनता में भी प्रसिद्ध है । अतः जैसा पहले कहा

* अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय पृ० १७४

जा चुका है, इसका संग्रह और इसकी टीका सूरदास के प्रायः समकालीन और श्री गुसाईं जी के सेवक बालकृष्ण कवि ने की है । यह रचना भी सूरसागर का ही अंश है। इसकी अनेक प्रतियाँ संप्रदाय में सर्वत्र प्राप्त हैं। इसका मुद्रण बंबई से प्रकाशित ठाकोरदास वाली "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" के अंत मे भी हो चुका है।

इस प्रकार सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचनाएँ हैं । सूरदास की जिन १४ छोटी रचनाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे वास्तव में सूरसागर के ही अंतर्गत हैं । उपर्युक्त तीनों प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त सूरदास की ४ स्वतंत्र रचनाएँ और हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

४. सूरसाठी—वार्ता के अनुसार सूरदास ने इसकी रचना एक वनिया के लिए की थी, अतः यह एक स्वतंत्र रचना है। सूरसागर में जिस स्थान पर यह प्राप्त होती है, वहाँ इसकी असंगति स्पष्ट ज्ञात होती है।

५. सूरपच्चीसी—वार्ता के अनुसार इसकी रचना सूरदास और अकबर की भेंट के समय हुई थी, अतः यह भी एक स्वतंत्र रचना है।

६. सेवाफल—महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के संस्कृत ग्रंथ "सेवाफल" के विवरण स्वरूप सूरदास ने इसकी रचना की थी। महाप्रभु जी ने अपने "सेवाफल विवरण" नामक संस्कृत ग्रंथ में कहा है—

"सेवायः फलत्रयं । अलौकिकसामर्थ्यं, सायुज्यं, सेवौपयोगिदेहो वा वैकुण्ठादिषु ।"

सूरदास रचित इस सेवाफल में भी "वैकुण्ठादिषु" का विशेषतः स्पष्टीकरण हुआ है, अतः यह भी एक स्वतंत्र रचना है।

७. सूरदास के पद—इसमें सूरदास के स्फुट पदों का संग्रह है। सूरदास ने मंदिर में प्रार्थना आदि के रूप में तथा कतिपय व्यक्तियों को वैराग्य आदि का उपदेश देते हुए जिन छोटे-छोटे पदों की रचना की थी, उन सब का इसमें समावेश हो जाता है । सूरसागर के प्रासंगिक वैराग्यादि के पद इन पदों से भिन्न समझने चाहिए। इन दोनों प्रकार के पदों का पृथक्करण इनके अध्ययन से हो सकता है । शयन के अनंतर और मंगला-आरती के पूर्व जो दीनता, आश्रय, और विनय आदि के पद मंदिरों में गाये जाते हैं, जिनमें कई स्थानों पर आत्म-चारित्रिक उल्लेख भी आ गये हैं, वही पद इस रचना के अंतर्गत हैं।

सूरदास की समस्त रचनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे स्वतंत्र और परतंत्र दो प्रकार की हैं। उनकी स्वतंत्र रचनाओं में आत्मानुभूति और भावानुभूति के सजीव वर्णन मिलते हैं, जिनके कारण वे साहित्य-गगन के सूर्य माने गये हैं। उनकी परतंत्र रचनाएँ श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों के अनुवाद रूप हैं। इनमें भी जहाँ मनोवैज्ञानिक ढंग का कथन हुआ है, वहाँ सूरदास की वर्णन-शैली के कारण वे परतंत्र होते हुए भी चमत्कृत हो गई हैं; जैसा कि भ्रमरगीत आदि से ज्ञात होता है। जिन परतंत्र रचनाओं मे केवल वर्णनात्मक कथन है, वहाँ कुछ शिथिलता भी दिखलाई देती है।

प्रामाणिकता की परीक्षा—

सूरदास नाम के कई कवि हुए हैं, अतः उनकी रचनाओं का सूरसागर मे मिल जाना स्वाभाविक है। इसके लिए सूरदास कृत रचनाओं की प्रामाणिता की जाँच करना नितांत आवश्यक है। अष्टछापी सूरदास कृत रचनाओ की प्रामाणिकता की जाँच उनकी रचना-शैली, भाषा-शैली, भाव, सिद्धांत और विचारों की विशिष्टता के कारण सरलता पूर्वक हो सकती है। बल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में परंपरागत प्रचलन और सार्थक शब्द-योजना सूरदास के प्रामाणिक पदों की मुख्य पहचान है। सार्थक शब्द-योजना की शैली सूरदास के पदो की विशिष्टता है, जो अन्य कवियों की रचनाओं में प्राय: कम मिलती है। सूरदास की सार्थक शब्द-योजना का कुछ परिचय हम गत पृष्ठों में उनके अंधत्व के संबंध में दे चुके हैं।

रचना-परिमाण—

सूर-सारावली के 'एक लक्ष पद बंद' वाले उल्लेख से अनेक विद्वानो ने अनुमान किया है कि सूरदास ने एक लाख पदों की रचना की थी। हम गत पृष्ठों में सूर-सारावली पर लिखते हुए यह स्पष्ट कर चुके है कि उपर्युक्त उल्लेख संख्यावाची नहीं है। फिर भी परंपरागत जनश्रुतियों और वार्ता के प्रमाण से यह ज्ञात होता है कि सूरदास ने लाख-सवालाख पदों की रचना की थी।

अनुसंधान करने पर अब तक सूरदास कृत ८—१० हजार से अधिक पद प्राप्त नहीं हुए हैं, इसीलिए उनके द्वारा लाख-सवालाख पद-रचना की बात अविश्वसनीय सी ज्ञात होती है। कुछ विद्वानों ने सूरदास के रचना-काल का हिसाब लगा कर यह सिद्ध किया है कि उनकी नेत्र-विहीनता और श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रति दिन एक नया पद गाने के कारण उनक द्वारा लाख पद रचना की बात समव भी ज्ञात नहीं होती है

अवश्य ही इस समय सूरदास कृत ८-१० हजार से अधिक पद प्रसिद्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त इसमें भी संदेह है कि पूर्ण अनुसंधान के अनंतर भी उनके रचे हुए लाख-सवालाख पद कभी मिल सकें। फिर भी हम यह देखना चाहते हैं कि उनके द्वारा इतने अधिक पद रचने की बात संभव भी है या नहीं।

सूरदास के चरित्र-प्रकरण में लिखा जा चुका है कि वे अपनी ३१ वर्ष की आयु में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के सेवक हुए थे। इससे पूर्व वे प्रायः १८ वर्ष की आयु से ३१ वर्ष की आयु तक अपनी स्वामी अवस्था में विनय-दीनता आदि के पदों द्वारा अपने शिष्य-सेवकों को उपदेश दिया करते थे। यह अवस्था यदि १३ वर्ष तक मानी जाय, और उस समय उन्होंने प्रति दिन कम से कम एक पद की रचना की हो, तो बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पूर्व वे कम से कम ४५०० पदों की रचना कर चुके थे।

श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् सूरदास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में रहे थे। गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि उनका श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन-सेवा में रहना वि० सं० १५६७ से प्रारंभ होता है। इससे पूर्व केवल कुंभनदास श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन किया करते थे; किंतु वे गृहस्थ होने के कारण आठों दर्शनों में उपस्थित नहीं रह सकते थे। इस आवश्यकता की पूर्ति महाप्रभु जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के यहाँ स्थायी रूप से कीर्तन सेवा में रख कर की थी। तब से सूरदास श्रीनाथ जी के मुख्य कीर्तनकार हुए। इस वृतांत के आधार पर श्रीनाथ जी के सन्मुख तब से नित्यप्रति आठों समय के कम से कम नये आठ कीर्तन भी गाये गये मान लिये जाँय, तब भी सूरदास ने प्रति वर्ष २८८० नये कीर्तनों की रचना की होगी।

यह सभव नहीं कि आशु कवि अपने बनाये हुए अमुक पदों का ही श्रीनाथ जी के सन्मुख नित्य प्रति पाठ करते हों। यह बात सूरदास जैसे प्रकृत आशु कवि के लिए तो और भी असंभव मानी जायगी। चूंकि श्रीनाथ जी सूरदास के इष्टदेव थे और सूरदास उनके सच्चे भक्त थे, इसलिए अपनी भक्ति के उद्रेक मे अनेक भावों द्वारा नित्य प्रति नये पदों की रचना कर श्रीनाथ जी को सुनाना और रिझाना ही उनका मुख्य ध्येय था। फिर सूरदास के हृदय में भगवल्लीलाओ की अनेक तरंगें भी उठती रहती थीं, जिनको वे तत्काल पद-रचना द्वारा व्यक्त करते थे। इन सब बातों का विचार करने पर यह सरलता से समझा जा सकता है कि सूरदास जिस पद को एक बार गा लेते थे उसको फिर नहीं गाते थे।

उक्त २८८० कीर्तनों में यदि आधे कीर्तन कुंभनदास के भी मान लिए जाँय,तब भी सूरदास प्रतिवर्ष श्रीनाथ की सेवा विषयक १४४० पद नये रचकर अवश्य गाये थे। इस संख्या का क्रम तब तक माना जायगा, जब तक कि परमानंददास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में नियुक्त नहीं हुए थे।

महाप्रभु जी ने वि० सं० १५७७ में परमानंददास को सूरदास के साथ श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करने की आज्ञा दी थी, अतः वि० सं० १५६७ से १५७७ पर्यंत के ११ वर्ष में सूरदास ने पूर्व हिसाब से कम से कम १५८४० नये पद अवश्य रचे होंगे। इस प्रकार वि० सं० १५७७ तक सब मिलाकर सूरदास २०००० से ऊपर पदों की रचना कर चुके थे।

परमानंद की नियुक्ति के पश्चात् हम कीर्तन के पदों की संख्या को तीन भागों में विभाजित कर देंगे। परमानंददास वि० सं० १५७७ से श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त हुए थे, अतः तब से अष्टछाप की स्थापना तक सूरदास के प्रति वर्ष लगभग ९०० पद मान लेना आवश्यक है।

महाप्रभु जी ने कृष्णदास को श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा नहीं दी थी। शरण में लेने के बाद उनको प्रारंभ में भेंट उगाहने की सेवा दी गयी थी। इसके बाद उनको भंडारी और अंत में अधिकारी बनाया गया। इसलिए अष्टछाप की स्थापना के पूर्व हम उनको श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा का साझीदार नहीं मान सकते हैं।

अष्टछाप के छीतस्वामी, गोविंदस्वामी और चतुर्भुजदास को भी हम तब तक कीर्तन-सेवा का साझीदार नहीं मानेंगे, जब तक कि अष्टछाप की नियमित स्थापना नहीं हुई थी। हाँ, उनको सहायक रूप में कीर्तन करने की आज्ञा अवश्य मिली होगी।

वि० सं० १६०२ में गो० विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की थी, अतः वि० सं० १५७७ से वि० सं० १६०२ पर्यंत के २५ वर्षों में प्रति वर्ष के ९०० पदों के हिसाब से सूरदास ने २२५०० पद और रचे होंगे। इस प्रकार अष्टछाप की स्थापना के समय तक सूरदास सब मिलाकर लगभग ४२५०० पदों की रचना कर चुके थे।

अष्टछाप की स्थापना के अनंतर प्रति वर्ष के २८८० पदों के ८ भाग कर देने से सूरदास द्वारा गाये हुए पदों की संख्या ३६० होती है। यह क्रम सं० १६०२ से सूरदास के अंतिम समय सं० १६४० तक चलता रहा था अतः इस अवधि के ३९ वर्षों में सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या १४०४०

होता है। इस संख्या को पूर्व संख्या में जोड़ देने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की कुल संख्या ५६५४० हो जाती है। यह संख्या सूरदास द्वारा नित्य गाये जाने वाले श्रीनाथ जी के आठों समय के क्रम से कम पदों की है।

गो० विट्ठलनाथ जी ने वि० सं० १६०२ से सेवा मार्ग का जो विस्तार किया था, उसमें अनेक वर्षोत्सव बढ़ाये गये थे। इनके अनुसार डोल, दुतिया पाट, संवत्सर, गनगौर, रामजयंती, महाप्रभु का जन्मोत्सव, अक्षय तृतीया, नृसिंह जयंती, ज्येष्ठाभिषेक, षष्ठपंड्यू, पवित्रा एकादशी, रक्षा, वामन जयंती, साँझी, दशहरा, शरदोत्सव, धनतेरस, रूप चतुर्दशी, दिवाली, अन्नकूट, भैया-दोज, गोपाष्टमी, प्रबोधिनी, व्रतचर्या, मकर संक्रांति, बसंत, होरी आदि उत्सवों का प्रचलन आरंभ हुआ। इनके अतिरिक्त फूलमंडली, खसखाना, हिंडोरा, रथ और श्री विट्ठलनाथ आदि के जन्मोत्सव भी इस वर्षोत्सव की सेवा में सम्मिलित हैं। रथ के उत्सव के सिवाय अन्य सब उत्सव गो० विट्ठलनाथ जी ने सं० १६०२ में आरंभ कर दिये थे।

गो० विट्ठलनाथ जी ने इन उत्सवों के दिन भी निश्चित कर दिये थे। जैसे जन्माष्टमी की बधाई श्रावण कृष्णा ४ से आरंभ होकर एक मास और चार दिन पर्यंत गायी जाती है। इस हिसाब से उक्त उत्सवों का सब मिलाकर समय प्रायः ९ मास का होता है।

९ मास पर्यंत के दिन विशेष उत्सवों का यदि एक-एक पद भी सूरदास का मान लिया जाय, तब भी उनके रचे हुए वर्ष भर के २७० पद होते हैं। इस हिसाब से उनके रचे हुए ३९ वर्ष के १०५३० पद और होते हैं। इस संख्या को पूर्व संख्या में जोड़ने से सूरदास के सब मिला कर ६७०७० पद होते हैं।

अब सेवा-पद्धति के अनुसार शयनोत्तर गाये जाने वाले दीनता-आश्रय के पदों का हिसाब भी लगाना चाहिए। यह प्रणाली महाप्रभु के समय से ही प्रचलित है; अतः सूरदास कृत प्रतिदिन कम से कम एक पद भी दीनता-आश्रय का माना जाय, तो उनके ७२ वर्ष के सांप्रदायिक काल में रचे हुए २६२८० पद और होते हैं। पूर्व संख्या में इस संख्या को जोड़ने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या ९३३५० निश्चित होती है।

अब रह जाते हैं सूरदास के सागरोक्त लीला, सिद्धांत और अनुवादात्मक पद। उन्होंने श्री भागवत की तृणावर्त-अघासुर वध, माटी भक्षण, कालीयदमन आदि लीलाओं में से प्रत्येक के अनेक पद रचे हैं जिनका हिसाब लगाना

भी कठिन है। यदि इन पदों को पूर्व संख्या में जोड़ा जाय तो सूरदास द्वारा रचे हुए लाख-सवालाख पदों की बात प्रामाणित हो जाती है। हमने सूरदास के पदों की जो आनुमानिक गणना की है, वह कम से कम है और प्रामाणिक आधार पर है, अतः उसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं है।

अब यहाँ पर अष्टसखाओं कृत सांप्रदायिक सेवा के प्राप्त पदों की संक्षिप्त सूची दी जा रही है, जिसमें सूरदास द्वारा रचित कई उत्सवों के आवश्यक पद भी नहीं मिलते हैं। कुछ के एक-दो पद मिलते हैं; इस लिए यह मानना होगा कि सतत खोज करने पर सूरदास के असंख्य पद और मिलने चाहिए। बल्लभ संप्रदाय के स्फुट कीर्तन ग्रंथों में भी अभी सूरदास के ऐसे अनेक पद उपलब्ध होते हैं, जो संप्रदायिक मंदिरों के अतिरिक्त अन्यत्र प्रसिद्ध नहीं है। इनका संकलन करने से भी सूरदास के प्राप्त पदों में कई हजार पद और बढ़ जावेंगे।

अष्टछाप कृत सेवा विषयक वर्षोत्सव के पद।

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों का प्रथम चरण
जन्माष्टमी—	सूरदास	ब्रज भयौ महरि कें पूत
,,	कुंभनदास	नंद महरि के पूत भयौ
,,	परमानंददास	जन्म फल मानत जसोदा माय
,,	कृष्णदास	गोकुल बरषत आनद मेहा
,,	गोविंदस्वामी	नंद महरि कें आज बधाई
,,	चतुर्भुजदास	नैंन भरि देखो नंदकुमार
,,	नंददास	पुत्र भयौ है आज श्री नंदराज के
पलना—	सूरदास	दिव्य कनक कौ बन्यौ पालनौ
,	परमानंददास	झुलावै सुत कों महरि पलना
,,	कृष्णदास	परम मनोहर बन्यौ है पलना
ढाढ़ी—	सूरदास	नंद जू मेरे मन आनंद भयौ
,,	कृष्णदास	नंद जू हौं ढाढी बृषभान गोप कौ
,,	गोविंदस्वामी	आज नंद-गृह कौतुक सुनिकें
,,	चतुर्भुजदास	हौं ब्रजराय की ढाढ़िन
		रगभीनी ढाढिन अति रुचि सो चारु गाव हो

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
मास दिना—	सूरदास	तेल भरे भरे केस सौंधे
अन्नप्राशन—	सूरदास	आज कान्ह करि हैं अन्न प्रासन
,,	परमानंददास	अन्न प्रासन दिन नंदलाल कौ करत यसोदा माय
कर्णछेदन—	सूरदास	कान्ह कों कर्णछेदन हाथ सुहारी भेली गुर की
,,	परमानंददास	गोपाल के वेध कर्ण कों कीजै
,,	कृष्णदास	आयौ कर्ण वेध दिन नीकौ
नामकरण—	परमानंददास	जहाँ गगन गति गर्ग कह्यौ
मृतिका भक्षण—	सूरदास	मोहन तैं माटी क्यों खाई
,,	परमानंददास	देखो गोपालजू की लीला ठाटी
करवट—	परमानंददास	करवट लई प्रथम नँदनंदन
ऊखल—	सूरदास	निगम साखि देखो गोकुल हरी
,,	परमानंददास	गोविंद बार-बार मुख भाखै
बाललीला—	सूरदास	आँगन स्याम नँचावहि यसोमति रानी
,,	परमानंद	रानी तेरे लाल सों कहा कहूँ
,,	कृष्णदास	लेउ लाल मेरे लाल खिलौना
,,	गोविंददास	गोपी नाँचति गोद लै गोविंद
,,	चतुर्भुजदास	माई लैन देहु जो मेरे लालहिं भावै
,,	नंददास	माधौ जू तनिक सौ बदन सदन सोभा कौ
पूतना वध—	सूरदास	देखो यह विपरीत नई
शकटासुर वध—	सूरदास	नृपति बचन यह स्रवन सुनायौ
तृणावर्त—	सूरदास	सोभित सुभग नंदजू की रानी
दावानल—	सूरदास	अब कै राखि लेहु गोपाल
कालीयदमन—	सूरदास	अति कोमल तनु धरयौ कन्हाई
चंद्रावली जू की बधाई-	कृष्णदास	चंद्रभान कें नवनिधि आई
राधिका जो की बधाई-	सूरदास	आज बरसाने बजत बधाई
,,	कुंभनदास	प्रगटि नागरी रूप निधान
,,	परमानंद	राधा जू कौ जनम सुन्यौ मेरी माई
,,	कृष्णदास	श्रीवृषभान राय जू के आँगन
,,	गोविंददास	सुनियत रावल होत बधाई

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
राधिका जी की बधाई—	छीतस्वामी	सकल लोक की सुंदरता वृषभान गोप कें आई
,,	चतुर्भुजदास	तू देखि सुता वृषभान की
,,	नंददास	बरसाने तें दौरी नारी एक नंद-भवन में आई
राधाजी की ढाढ़ी—	कृष्णदास	महिर जू ! याचन तुम पै आयौ
राधिका जी कौ पलना—	सूरदास	अहो मेरी लाड़िली कुँवरि
,,	परमानंददास	रसिकिनी राधा पलना झूलै
,,	कृष्णदास	लड़ैती पालने झूलै
राधिकाजी की बाललीला-	सूरदास	खेलन के मिस कुँवरि राधिका
,,	परमानंददास	एहै पीत पट कहाँ तें पायौ
नवल नागरी—	सूरदास	नवल नागरी सब गुन आगरी
दान—	सूरदास	मोहन तुम कैसे हो दानी
,,	कुंभनदास	हमारी दान दैहो गुजरैटी
,,	परमानंददास	पिछौडी बाहुन दैहो दान
,,	कृष्णदास	नीके दान निबेरत हो
,,	गोविंदस्वामी	गोरस बेचन लै चली
,,	छीतस्वामी	अहो बिधना तोपै अचरा पसार
,,	चतुर्भुजदास	कहो किन कीनों दान दही कौ
,,	नंददास	लाल तुम परे हमारे ख्याल
वामन जी—	सूरदास	राजा मैं दानी सुनि कें आयौ
,,	परमानंददास	वामन आये बलि पै माँगन
,,	गोविंदस्वामी	प्रगटे श्री वामन अवतार
झाँकी—	सूरदास	राधा प्यारी कह्यौ सखिन सों
देवी पूजन—	सूरदास	व्रत धरि देवी पूजी
,,	परमानंददास	श्री राधे कौन गौर तैं पूजी
,,	गोविंदस्वामी	पूजन चलो हो कदम बन देवी
मुरली—	सूरदास	मुरली हरि कों अपने बस कीने माय
,,	परमानंददास	यातें माई भवन छाँड़ि बन जैये
,,	कृष्णदास	बाँसुरी बाजत मदनमोहन

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
मुरली—	चतुर्भुजदास	नंदलाल बजाई बांसुरी श्री यमुना जू के तीर री
करखा—	सूरदास	परदेसनि नारि अकेली
”	कृष्णदास	पाँय तौ पूजि चले रघुनाथ
”	नंददास	कपि चल्यौ सीय सुधि कों
दशहरा (जवहारा)—	परमानंददास	सरद रितु सुभ जान अनूपम
”	गोविंदस्वामी	विजय दशमी और विजय महूरत
”	चतुर्भुजदास	जवारे पहिरत श्री गोवर्धननाथ
रास—	सूरदास	हा हा हो हरि नृत्य करो
”	कुंभनदास	यह गति नाँचत नाँच नई
”	परमानंददास	बन्यौ रास मंडल में माधौ
”	कृष्णदास	मन लाग्यौ गिरिधर गावै
”	गोविंदस्वामी	मदनमोहन कमलनयन
”	छीतस्वामी	लाल संग रास रंग लेत मान
”	चतुर्भुजदास	प्यारी भुज ग्रीवा मेलि
धन तेरस—	कुंभनदास	आज माई धन धोवत नंदरानी
”	परमानंददास	दूध सों स्नान करो मनमोहन
रूप चतुर्दशी—	कृष्णदास	आज न्हाग्रो मेरे कुँवर कन्हैया
दीपावली—	परमानंददास	आज दिवारी मंगलचार
गाय खिलायवौ—	सूरदास	आज दीपत दिव्य दीपमालिका
”	कुंभनदास	गाय खिलावत स्याम सुजान
”	परमानंददास	किलक हँसै गिरिधर ब्रजराय
”	कृष्णदास	ब्यार बड़ौ करि डार री सारंग
”	छीतस्वामी	खिरक खिलावत गायन ठाड़े
”	चतुर्भुजदास	गाय खिलायौ चाहत
”	नंददास	बड़े खिरक में घूँमरि खेलत
हटरी—	सूरदास	सुरभी कान जगाय खरिक वल मोहन बैठे राजत हटरी
”	परमानंददास	गिरिधर हटरी भली बनाई
”	गोविंदस्वामी	हटरी बैठे श्री गोपाल
”	नंददास	दीपदान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
अन्नकूट—	सूरदास	अपने-अपने टोल कहत ब्रजवासियाँ
,,	कुंभनदास	गोवर्धन पूजन चले री गोपाल
,,	परमानंददास	छैल छबीले लाल कहत नंदराय सों
,,	गोविंदस्वामी	गोवर्धन पूजा कों आये सकल ग्वाल लै संग
,,	चतुर्भुजदास	गोधन पूज सबै रँगभीने
इंद्र मान-भंग—	सूरदास	राख लेहु गोकुल के नायक
,,	कुंभनदास	आज कछु बदरन अंबर छायौ
,,	परमानंददास	आवो आवो रे भैया
,,	कृष्णदास	बलिहारी गोपाल की
,,	गोविंदस्वामी	ब्रजजन लोचन ही कौ तारौ
,,	छीतस्वामी	सब गोकुल कौ जीवन गोपाललाल प्यारौ
,,	चतुर्भुजदास	वारी मेरे कान्ह प्यारे
,,	नंददास	कान्ह कुँवर के कर पल्लव पर
गोचारण—	सूरदास	आज अति आनंद ब्रजराय
,,	परमानंदस्वामी	खेलन ही चले ब्रजराई
,,	गोविंदस्वामी	प्रथम गोचारन चले गुपाल
,,	चतुर्भुजदास	टेरत ऊँची टेर गोपाल
,,	नंददास	कैसे कैसे गाय चराइ गिरिधर
देव प्रबोधिनी—	परमानंददास	लाल कौ सिंगार करावत मैया
,,	कृष्णदास	प्रबोधिनी व्रत कीजै नीकौ
,,	गोविंदस्वामी	देव जगावत यसोदा मैया
,,	चतुर्भुजदास	बैठे कुंज मंडप में आय
ब्याह—	सूरदास	मेंहदी स्यामसुंदर कें रचि-रचि हाथन पाँय लगावै
,,	परमानंददास	मैया मोहि ऐसी दुलहिन भावै
,,	कृष्णदास	कंकन कुँवर कन्हैया के कर देखि री
,,	नंददास	एक दिन राधे कुँवरि नंद-गृह खेलन आई
मान—	सूरदास	ललन की बातन पर बल जैये
,,	परमानंददास	कुंज भवन में मंगलचार
,,	नंददास	लाड़िली न मानें लाल
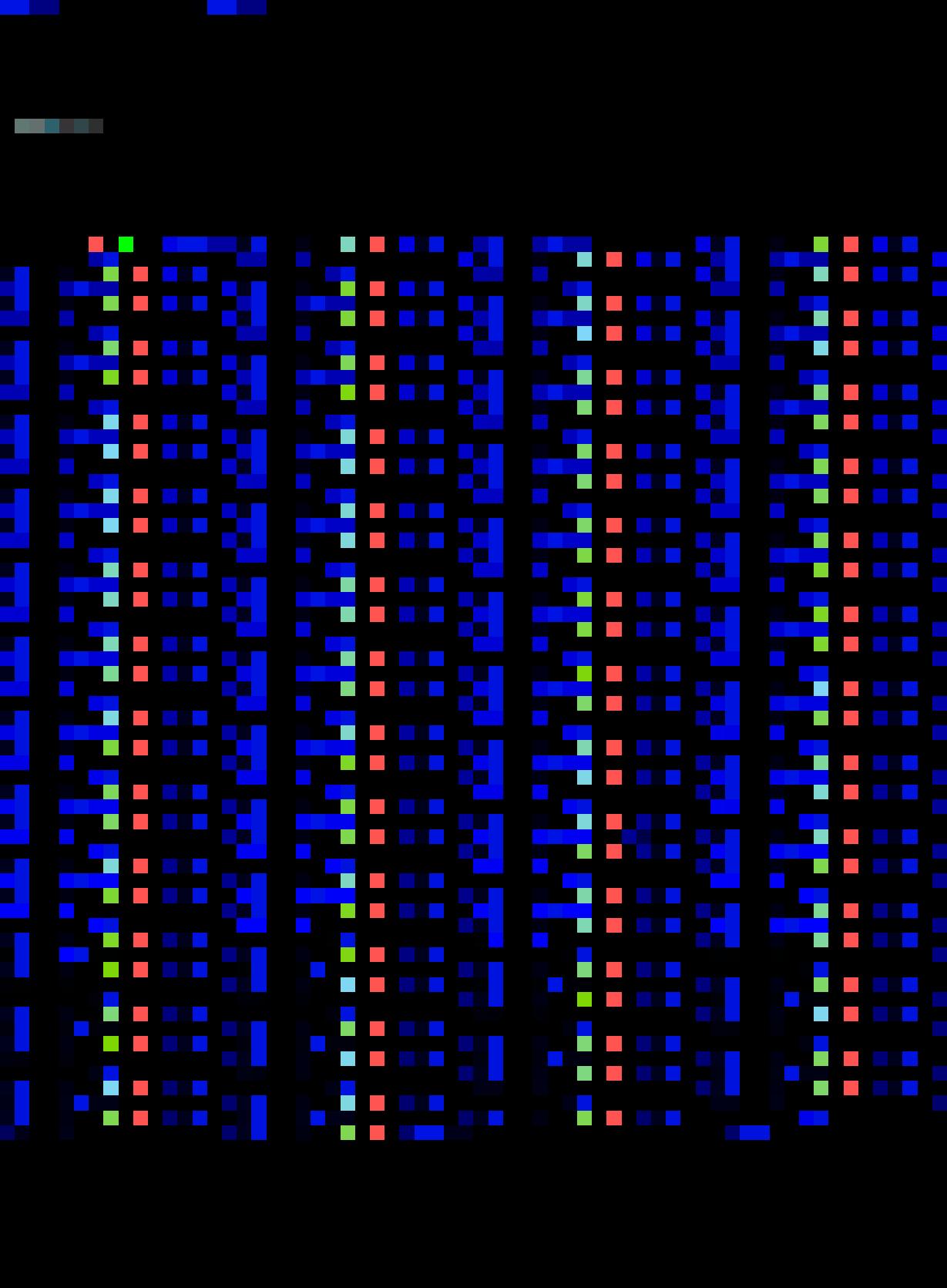
वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
भोगी (मकरसंक्रांति)–	परमानंददास	भोगी भोग करत सब रस कौ
,,	कृष्णदास	बन ठन भोगी रस बिलसत कों भोर
,,	नंददास	भोर भये भोगी रस विलस भयौ ठाढ़ौ
अभ्यंग स्नान—	सूरदास	कहत नंदरानी गोपाल सों तात कों बुलाय लावो बड़ौ परव उत्तरायन
,,	कुंभनदास	मात जसोदा परव मनावै
फूलमंडली—	कुंभनदास	बैठे लाल फूलन के चौबारे
,,	परमानंददास	मुकुट की छाँह मनोहर किये
,,	कृष्णदास	देखन सखी फूलन अठखंभा
,,	गोविंदस्वामी	फूलन की मंडली मनोहर
,,	छीतस्वामी	फूलन के भवन गिरधरन
,,	चतुर्भुजदास	फूलन की मंडली मनोहर बैठे
,,	नंददास	फूलन कौ मुकुट बन्यौ फूलन कौ पिछौरा
गनगौर—	परमानंददास	क्यों बैठी राधे सुकुमारी
,,	कृष्णदास	ठाड़े कुंज द्वार पिय प्यारी
,,	नंददास	छबीली राधे ! तू पूजि लै री गनगौर
रामनवमी—	सूरदास	रघुकुल में प्रगटे रघुवीर
,,	परमानंददास	नौमी के दिन नौबत बाजै
,,	गोविंदस्वामी	मेरौ रामलला कौ सोहिलौ
महाप्रभु की बधाई—	कुंभनदास	बरनों श्री बल्लभ अवतार
,,	परमानंददास	श्री बल्लभलाल आँगन निधि खेलन
,,	कृष्णदास	आनंद भयौ लक्ष्मण नंदकुमार
,,	गोविंदस्वामी	बधाई मिल सब गावो आज
,,	छीतस्वामी	श्री बल्लभ जू के देखें जीजै
,,	नंददास	लक्ष्मण-घर बाजत आज बधाई
शृंगार—	सूरदास	पीत पिछौरा कहाँ तें मानों पाद अति भीनी
,,	कृष्णदास	सगुन मनाय रही ब्रजबाला
,,	छीतस्वामी	ये ही सुभाव सदा ब्रज बसिवौ

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों का प्रथम चरण
ब्यारू—	नंददास	चंदन भवन मधि करत बयारू परोस धरी है कंचन थारी
चंदन—	कुंभनदास	चंदन पहिरत गिरधरनलाल
,,	गोविंदस्वामी	चंदन पहिर आय हरि बैठे कालिंदी के कूल
,,	चतुर्भुजदास	आज बने नँदनंदनरी नव चंदन कौ
नरसिंह चतुर्दशी—	सूरदास	तौलौं हौं बैकुंठ न जैहों
,,	परमानंददास	गोविंद तिहारौ रूप निगम नेति-नेति गावै
नौका—	परमानंददास	बैठे घनस्याम सुंदर खेवत हैं नाव
,,	नंददास	चंदन पहरि नाव हरि बैठे
गंगा दशमी—	छीतस्वामी	जय जय श्री सूरजा कलिंद-नंदिनी
,,	नंददास	जय जय श्री यमुना आनंद-कंदनी
स्नानयात्रा—	सूरदास	यमुनाजल गिरधर करत विहार
,,	परमानंददास	पूरनमासी पूरन तिथि श्री गिरधर करत स्नान मन भायौ
,,	गोविंदस्वामी	ज्येष्ठ मास सुदि पून्यौ सुभ दिन करत स्नान गोवर्धनधारी
रथयात्रा—	सूरदास	तुम देखो सखी री आज नयन भरि हरि जू के रथ की सोभा
,,	कुंभनदास	रथ बैठे मदन गोपाल
,,	परमानंददास	तुम देखो सखी रथ बैठे गिरधारी
,,	कृष्णदास	तुम देखो सखी रथ बैठे ब्रजनाथ
,,	गोविंदस्वामी	तुम देखो माई हरि जू के रथ की सोभा
,	नंददास	देखो माई नंदनंदन रथहिं बिराजें
मल्हार—	सूरदास	बोले माई गोवर्धन पर मुरवा
,,	कुंभनदास	सखी री बूँद अचानक लागी
,,	परमानंददास	उठत प्रात रसना रस लीजै
,,	कृष्णदास	करत कलेऊ किलकत दोउ भैया
,,	गोविंदस्वामी	स्यामहिं देख नाँचत मुदित मनमोहन
,,	छीतस्वामी	बादर झूमि-झूमि बरसन लागे
,,	चतुर्भुजदास	करत कलेऊ किलकत मोहन
--	नंददास	घुमड़ रहे बादर सगरी निसा के महो महरि लाल दोउ जगाय

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों का प्रथम चरण
...मी छठ—	कुंभनदास	पहरें सुभग अंग कसूमी सारी
"	परमानंददास	मोहन सिर धरें कसूमी पाग
"	कृष्णदास	बरषत मेघ मोर-पिक बोलत
"	चतुर्भुजदास	ठाँय-ठाँय नाँचत मोर सुन-सुन
"	नंददास	निकसि ठाड़ी भई री चढ़ नवल
घटा (गुलाबी)	सूरदास	रही झुकि लाल गुलाबी पाग
" (हरी)—	"	आज अति राजत हैं री हरे
" (श्याम)—	"	स्याम घन कारे-कारे बादर
" (पीली)—	कुंभनदास	झूलें माई जुगलकिसोर हिंडोरे
" (श्याम)—	परमानंददास	वन स्याम बिहार करें
" "	कृष्णदास	देखि सखी नीलांबर कौ छोर
" "	चतुर्भुजदास	देखो माई बसन ए रही चटक
" (गुलाबी)—	नंददास	गुलाबी कुंजन छबि छाई
चूनरी लहरिया—	परमानंददास	देखो माई भींजत रस भरे दोऊ
"	गोविंदस्वामी	लाल मेरी सुरंग चूनरी देउ
"	चतुर्भुजदास	स्याम सुन नेरे आए मेह
"	नंददास	लाल सिर पाग लहेरिया सोहै
हिंडोरा—	सूरदास	राधे जू देखिये बन सोभा
"	कुंभनदास	हरि संग झूलत हैं ब्रजनारी
"	परमानंददास	यह सुख सावन में बनि आवै
"	कृष्णदास	रोप्यौ हिंडोरौ नंद-गृह
"	गोविंदस्वामी	दंपति झूलत सुरंग हिंडोरे
"	चतुर्भुजदास	पावस ऋतु नीकी लागत
"	नंददास	हिंडोरे माई झूलत गिरधरलाल
पवित्रा—	परमानंददास	पहरि पवित्रा बैठे हिंडोरे
"	कृष्णदास	पवित्रा पहिरें नंद कुमार
कुल्हे—	कुंभनदास	सुरंग कुल्हे रंग अरुन पिछौरा
"	कृष्णदास	अब ही हौं आई लाल राधे कों मनाय

वर्षोत्सव की उपर्युक्त पदों की सूची से ज्ञात होगा कि उसके कई मुख्य विषयों पर सूरदास के दो–एक पद ही उपलब्ध हैं। किसी-किसी विषय पर तो उनका एक भी पद प्राप्त नहीं है। अब नित्य-सेवा के पदों को देखना चाहिए। नित्य-सेवा के निम्न लिखित प्रमुख विषयों पर अष्टसखाओं के अनेक पद मिलते हैं—

१. श्री यमुना आदि की स्तुति, २. जागरण, ३. कलेवा, ४. मंगला-आरती, ५. विविध शृंगार, ६. हिलग, ७. पनघट, ८. खंडिता, ९. बाल लीला आदि, १०. राजभोग, गृह-भोज, छाक, व्रज-भक्तों के यहाँ का कुनवारा, छप्पन भोग, बीरी आदि, ११. राजभोग दर्शन, १२. राजभोग-आरती, १३. मान, १४. उत्थापन, १५. गोवर्धन, १६. भोग का मान, १७. संध्या आरती, १८. शृंगार बड़ा होना, १९. चैया, २०. शयन-भोग, २१. शयन की बीरी, २२. शयन के दर्शन, २३. शयन आरती, २४. पौड़ना, २५, कहानी, २६. मान, २७. दीनता, आश्रय, विनयादि।

नित्य सेवा के उपर्युक्त विषयों पर सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा रचे हुए पदो की सूची हम स्थानाभाव के कारण यहाँ पर नहीं दे रहे हैं, किंतु वर्षोत्सव की तरह नित्य सेवा के उपलब्ध पदों में भी कई प्रमुख विषयों पर सूरदास के दो-एक पद ही उपलब्ध होते हैं, अथवा किसी-किसी विषय का एक भी पद उपलब्ध नहीं होता है। इससे सिद्ध है कि सूरदास के असंख्य पद अभी छिपे पड़े है, जिनको खोज निकालने की अत्यंत आवश्यकता है। अतीत की विषम परिस्थितियों ने अन्य प्राचीन कवियों की तरह सूरदास के भी अगणित पदों को अवश्य नष्ट किया होगा, किंतु परिश्रम पूर्वक अनुसंधान करने पर अब भी सूरदास के असंख्य पद प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार सिद्ध है कि जनश्रुति और वार्ता के अनुसार सूरदास के रचे हुए चाहें लाख-सवालाख पद इस समय प्राप्त न हो सकें, तब भी पूर्ण अनुसंधान होने पर उनके प्राप्त पदों की संख्या अब से कई गुना अधिक हो सकती है।

चतुर्थ परिच्छेद

सिद्धांत-निर्णय

१—सूरदास और शुद्धाद्वैत सिद्धांत

इतिहास और अंत:साक्ष्यों से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी एवं पुष्टिमार्गीय भक्त होना निश्चित है, तथापि सूरसागर के कतिपय पदों के कारण कुछ विद्वान प्रतिबिंबवाद और वृंदावनी संप्रदायों की भक्ति-भावना से भी सूरदास को प्रभावित मानते हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि-भक्ति के वास्तविक परिचय से उक्त मान्यता नितांत भ्रमात्मक सिद्ध होती है। हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि सूरदास की उपलब्ध प्रत्येक रचना शुद्धाद्वैत सिद्धांत और विशुद्ध पुष्टि-भक्ति से ही संपूर्णत: प्रभावित और संबद्ध है।

श्रीमद्‌बल्लभाचार्य जी ने वेद और भगवान् बादरायण व्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रों से शुद्धाद्वैत सिद्धांत का दोहन किया है, इसलिए उन्होंने इस सिद्धांत के गुरु व्यासदेव को ही माना है[1]।

सूरदास के पदों में परब्रह्म, अक्षरब्रह्म, जगत, जीव और माया आदि तत्वों का जो वर्णन किया गया है, वह शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार है। इन पदों के अध्ययन से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी होना निश्चित होता है। हम यहाँ पर उक्त तत्वों का विवेचन और तत्संबंधी सूरदास के पदों को उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत, पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना और सेवा-प्रणाली का किस प्रकार सफलता पूर्वक वर्णन किया है।

१. परब्रह्म

परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—वेद की श्रुतियाँ "नायमात्मा प्रवचेमलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन" आदि कह कर जिस आत्म-तत्त्व को निर्गुण बतलाती हैं, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में परब्रह्म कहा गया है। यही ब्रह्म प्रकृतिजन्य धर्मों के अभाव में जिस प्रकार निर्गुण कहलाता है, उसी प्रकार यह आनंदात्मक दिव्य धर्मों वाला होने से सगुण भी है[2]।

---

१. "व्यासोऽस्माकं गुरु।" —श्री बल्लभाचार्य जी

२. निर्दोष पूर्णगुणविग्रह आत्मतंत्रो। निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीन। आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि:। सर्वत्र च त्रिविध भेद विवर्जितात्मा॥ (निबंध)

इसीलिए वेद की श्रुतियाँ इसे "आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि" रूप में साकार सगुण भी कहती हैं[1]।

परब्रह्म अर्थात् कृष्ण—परब्रह्म के तीन मुख्य धर्म हैं—सत्, चित और आनंद; अतः यह "सच्चिदानंद" अथवा "सदानंद" भी कहलाता है। सदानंद का ही पर्यायवाची शब्द 'कृष्ण' है, अतः इसको कृष्ण भी कहा गया है[2]। इस प्रकार वेदांत में जिसको भगवान् कहा गया है, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में परब्रह्म कृष्ण कहते हैं[3]। ये परब्रह्म अपनी आत्म-माया से सदा आवृत रहते है[4], इसलिए ही उनको 'श्रीकृष्ण' कहते हैं।

परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार श्रीकृष्ण सर्व धर्मों के आश्रय रूप है, इसीलिए वे "धर्मी" कहलाते है। इनमें विरुद्ध धर्म भी एक साथ रहते हैं; यही इनकी विशेषता और विचित्रता है। इनके धर्म भेद सहिष्णु अभेद रूप वाले अर्थात् तादात्म्य भाव वाले होते हैं, जिस प्रकार सूर्य और उसके प्रकाश की स्थिति रहती है। इनका विरुद्धधर्माश्रय इस प्रकार है—

ये निर्धर्मक—प्राकृत धर्मों से रहित—होते हुए भी सधर्मक—दिव्य आनंदात्मक धर्मों से युक्त हैं। इसी प्रकार निर्दोष और निर्गुण होते हुए भी सविशेष और सगुण हैं। अणु से अणु है और महान् से महान् भी है। अनंत मूर्ति हैं तथापि एक ही व्यापक हैं। कूटस्थ हैं, तथापि चल है। अकर्तृ हैं, तथापि कर्तृ हैं। अविभक्त हैं, तथापि विभक्त हैं। अगम्य हैं, तथापि गम्य है। अदृश्य हैं, तथापि दृश्य हैं। ये नानाविध सृष्टिकर्त्ता हैं, फिर भी विषम नहीं है। क्रूर कर्म कर्त्ता हैं, फिर भी निर्घृण नहीं हैं—गाढ़ घनीभूत सैंधववत् बाह्याभ्यंतर सदा सर्वदा एक रस हैं।

इसी प्रकार पूर्णावतार दशा में—कृष्णावतार के समय में—वे बालक होने पर भी रसिक मूर्द्धन्य हैं। स्ववश हैं, तथापि अन्य (भक्त) वश हैं।

---

१. तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञान मयात्। अन्योन्तर आत्मानंदमयः। तेनैष पूर्णः॥ सर्वाद्दिव पुरुषविध एव। तस्य पुरुष विधताम्।

२. कृषिर्भूसत्तावाचकःणश्च निवृतिवाचकः। तयोरैक्यं परंब्रह्मकृष्ण इत्यभिधीयते॥

३ परंब्रह्म तु कृष्णं हि (सि० मु०)

४ पु० स० नाम)

अभीत हैं, तथापि (भक्ति के निकट) भीत हैं । भक्त सापेक्ष हैं, फिर भी निरपेक्ष हैं। चतुर हैं, फिर भी (भक्त के पास) मुग्ध हैं । सर्वज्ञ हैं, तथापि (भक्त के पास) अज्ञ हैं । आत्माराम हैं, फिर भी रमण कर्त्ता हैं। पूर्ण-काम हैं, फिर भी भक्त की कामना पूर्ण करने के लिए कामार्त्त हैं । अदीन हैं, तथापि भक्त के सन्मुख दीन भाषण करते हैं। स्वयं प्रकाश हैं, फिर भी (भक्त से अन्यत्र) अप्रकाश हैं । बहिःस्थ हैं, तथापि अंतःस्थिति करते हैं। स्वतंत्र हैं, तथापि (भक्त के पास) अस्वतंत्र हैं, पराधीन हैं, परवश हैं, रसिक-वश हैं । अवतार दशा में वे प्रापंचिक धर्म को अंगीकार करते हैं, तथापि अच्युत हैं, च्युतिरहित हैं।

इस प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्ण विरुद्ध धर्मों के आश्रय रूप होने से[1] कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम् सर्व-भवन-समर्थ हैं । वे अपने इस रूप का भक्तों को अनुभव करा कर निःसीम माहात्म्य को जगत् में प्रकट करते हैं । यही उनकी विचित्रता है । ज्यादा क्या कहें; वे अविकृत-होते हुए भी कृपा द्वारा परिणाम रूप होते हैं[2] ।

संपूर्ण वेदों का अक्षरशः प्रामाण्य मानने पर परब्रह्म का यही स्वरूप निर्धारित होता है, और तभी वेद की निर्गुण-सगुण स्वरूप प्रतिपादक श्रुतियों का मतैक्य भी हो सकता है; पौराणिक अवतार भावनाएँ भी तभी संगत हो सकती हैं । इस प्रकार समग्र वेद और शास्त्रों के मतों को एक-वाक्य करने का संपूर्ण श्रेय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी को ही प्राप्त हुआ है । इसीलिए उनके मत में आध्यात्मिक विचारों की परिपूर्णता और सुस्पष्टता दिखाई देती है। यही कारण है कि सूरदासादि महान् आत्माएँ भी इस सिद्धांत की अनुयायी हुईं ।

सूरदास के पदों में परब्रह्म विषयक वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—
परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—

१. करनी करुनासिंधु की कछु कहत न आवै ।
कपट हेतु परसै बकी जननी गति पावै ।।
वेद उपनिषद जस कहै, "निर्गुण" हि बतावै ।
सोई "सगुण" होय नंद कें दाँमरी बँधावै ।।

---

१. विरुद्ध सर्व धर्माणामाश्रयो युक्तयगोचरः । (निबंध)
२. "शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रदीप"

२. अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै॥
परम स्वाद सबही जु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कों अगम अगोचर, सो जानै जो पावै॥
रूप, रेख, गुण, जाति, जुगति बिनु, निरालंब मन चकृत
'सब विधि अगम' विचारहिं तातें 'सूर' 'सगुण' लीला पद
३. अविगत, आदि अनंत, अनूपम 'अलख' पुरुष अविनासी
'पूरनब्रह्म', 'प्रगट पुरुषोत्तम' 'नित' निज लोक विलासी
४. आदि सनातन 'हरि' अविनासी।
'निर्गुण-सगुण' धरे तन दोई······॥

परब्रह्म अर्थात् कृष्ण हरि—
कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहिं पावै।
'कृष्णहिं' तें यह जगत प्रगट है 'हरि' में लय ह्वै जावै॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों ही हरिलीला जग देखै।
तौ तिहि सुख-दुख निकट न आवैं, ब्रह्म रूप करि लेखे॥

परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व—
१. बलि-बलि चरित गोकुलराय।
दावानल कौ पान कीनों पिवत दूध सिराय॥
पूतना के प्रान सोषे रहे उर लपटाय।
कहति जननी दूध डारत खीझि कछु अनखाय॥
तृणावर्त्त अकास तें गहि सिला पटक्यौ आय।
डरत लालन झुलत पलना खरे देत झुलाय॥
यमल-अर्जुन तोरि, तारे हृदय प्रेम बढ़ाय।
झटक तात पलास पल्लव देहु देत दिखाय॥
कीर पिंजरा देत अंगुरी लेत स्याम भजाय।
बकासुर की चोंच फारी, दृष्टि अचरज लाय॥
बिना दीपक सदन में हरि, नेंकु धरत न पाय॥
अघासुर मुख पेठि निकसे, बाल बच्छ जिवाय।
हरे बालक बच्छ नव कृत हेत बौरी माय।
छूटि पसु जब रहत बन में ढ्रुमन ढूंढ़त जाय॥
लिख्यौ द्वारे बाग कारो देखि स्याम डराय।
नृत्य कासी फननि ऊपर सप्त ताल बजाय

धरैं गिरधर दोंहनी कर धरत बाँह पिराय ।
सकट भंजन प्रसूत कछु जुग कठिन लागत पाय ।।
घोष-नारिन संग मोहन रच्यौ रास बनाय ।
कहति जननी ब्याह की, तब लजत बदन दुराय ।।
वृषभ भंजन, हतन केसी हन्यौ पुच्छ फिराय ।
भजत सखन सनेह मोहन देखि आई गाय ।।
सेष महिमा कहि न आवै सहस रसना पाय ।
एक रसना "सूर" कहा कहे अंग अगनित भाय ।।
कौन सुकृत इन ब्रजवासिन को बदत-बिरंच-सिव-सेष ।
श्री हरि जिनके हेत मानुष वेष ।।
ज्योति-स्वरूप, जगन्नाथ, जगतगुरु, जगदपिता, जगदीस ।
जोग्य जग्य, जप, तप, व्रत तीरथ सो गृह गोकुल-ईस ।।
जाके जठर लोक-त्रय जल-थल पंचतत्व चौखाँन ।
सो बालक झूलत ब्रज-पलना जसुमति-भवन निधान ।।
एक रोम वैराट कूप सम अखिल लोक ब्रह्मंड ।
ताहि उछँग लिऐं मात जसोदा अपने निज भुज दंड ।।
रवि-ससि कोटि कला बिंब लोचन त्रिविध तिमिर भजि जात ।
अंजन देति हेत सुत के, चक्षु लै कर काजर मात ।।
क्षिति रति त्रिपद करि करुनामय बलि छलि दियौ पातार ।
देहरि उलँघ सकत नहीं सो प्रभु खेलत नंद जू के द्वार ।।
अनुदिन श्रवन सुधारस पंचम चिंतामनि सी धेनु ।
सो तजि जसुमति कौ पय पीवत भक्तन कों सुख दैनु ।।
वेद वेदांत उपनिषद षट रस अरपै, भुगतै नाथ ।
सो हरि ग्वाल-बाल मंडल में हँसि-हँसि जूठन खाय ।।
बैकुंठ दायक कमला-नायक, सुख-दुख जाके हाथ ।
काँधे कमरिया लकुट नगन पग, बत्स चरावन जात ।।
करन हरन प्रभु दाता भुक्ता, बिस्वंभर जग जानि ।
ताहि लगाय माखन की चोरी बाँधे नँद जू की रानि ।।
बकी बकासुर सकट तृणावर्त्त अघ धेनुक वृषभास ।
केसी कंस कों यह गति दीनीं राखे चरनन पास ।।
भक्त वत्स प्रभु पतित-उद्धारन रहे सकल भरपूर ।
मारग रोकि-पर्‌यौ हठि द्वारें पतित-सिरोमनि "सूर" ।।

कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम्—

दयानिधि तेरी गति लखि न परै।
धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि अकरम करम करै॥
जय अरु विजय अकर्म कियौ कहा ब्रह्म-सराप दिवायौ।
असुर योनि दोनौं ता ऊपर, धर्म उच्छेद करायौ॥ × ×
मुक्ति हेतु योगी स्रम कर हीं, असुर विरोधै पावै।
अविगत गति करुनामय तेरी "सूर" कहा कहि गावै॥

परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार पूर्वोक्त परब्रह्म एक, अखंडित, आदि, अनादि, अद्वैत तत्व रूप है। वह अद्वैत भी पूर्ण शुद्ध रूप वाला है। अर्थात् वह सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद रहित है*, इसलिए वह एक रस है।

सूरदास ने परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता का वर्णन निम्न पदों में इस प्रकार किया है—

१. पहले हौं ही हौं तब एक।
अमल, अकल, अज, भेद बिवर्जित, सुनि विधि विमल विवेक।
२. राधिका-गेह हरि देह वासी। और त्रियन घर तनु प्रकासी॥
ब्रह्म पूरन एक, द्वितीय न कोऊ। राधिका सबै हरि सबै एऊ॥
दीप तें दीप जैसे उजारी। तैसे हि ब्रह्म घर-घर बिहारी॥
३. ब्रजहिं बसै आपुनहिं बिसरायौ।
'प्रकृति पुरुष 'एक' करि जानहु वा तन भेद करायौ।
'द्वैत न जीव एक हम तुम दोऊ' सुख कारन उपजायौ॥
४. सदा 'एक रस' एक अखंडित, आदि अनादि अनूप॥

पुरुषोत्तम—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार निर्गुण परब्रह्म अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपनी आत्मा में निरंतर आंतर रमण करता है, इसलिए वह 'आत्माराम' कहलाता है। उसको जब बाह्य प्रकार से रमण करने की इच्छा होती है, तब स्वांतः स्थित दिव्य आनंद धर्मों वाले अपने "आधिदैविक" रूप से वह अपनी शक्तियों के साथ बाह्य रमण करता है। यही आनंद धर्मों वाला उसका बाह्य प्रकट रूप 'पुरुषोत्तम' कहलाता है। यह परब्रह्म का आधिदैविक साक्षात् रूप है, अतः आचार्य श्री ने श्रुतियों में प्रतिपादित तत्व-परब्रह्म को ही

* सजातीय विजातीय स्वगत द्वैत वर्जितम्। (निबंध)

पुरुषेश्वर-पुरुषोत्तम कहा है[1]। यह सत्यादि सहस्रों नित्य गुणों से युक्त है[2], इसलिए यह परब्रह्म का ही सगुण लीला रूप है। इसमें अपरिमित आनंद है, इसलिये यह "आनंदमय" अथवा "अगणितानंद" कहा गया है। यह काल-पुरुष अक्षरादि से पर-उत्तम है, अतः यह पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध है[3]।

इसी को सूरदास ने पुरुषोत्तम का इस प्रकार वर्णन किया है—

१. अविगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी॥
२. सोभा अमित अपार अखंडित आप आत्माराम।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम सब बिधि पूरन काम॥

पुरुषोत्तम की लीला—शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार परब्रह्म पुरुषोत्तम मे अनंत शक्तियों की निरंतर स्थिति रहती है। ये सब शक्तियाँ पुरुषोत्तम के सदा आधीन रहने वाली हैं। जब पुरुषोत्तम बाह्य रूपलीला करते है, तब उनकी शक्तियाँ भी वहिःस्थिति करती हैं, और विविध रूप, गुण और नामो से उनसे विलास करती हैं। उन अनंत शक्तियों में श्रिया, पुष्टि, गिरा और काल्या आदि द्वादश शक्तियाँ मुख्य हैं। ये ही श्रीस्वामिनी, चंद्रावली, राधा और यमुना आदि आधिदैविक रूप नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही नित्य-स्थिति करती हैं। इन द्वादश शक्तियो में से पुनः अनंत भाव प्रकट होते हैं, जो अनेक सखी-सहचरी रूप में उनके साथ रहते हैं।

इन शक्तियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए पुरुषोत्तम अपने मे से श्रीवृंदावन, गोवर्धन, यमुना, श्रीगोकुल, पशु, पक्षी और वृक्षादिक को भी प्रकट करते हैं। ये सब पुरुषोत्तम के आधिदैविक ऐश्वर्य रूप होने से आनंदमय चैतन्य रूप हैं; फिर भी कृष्ण ललित लीला के लिए इन सब ने जडता धारण कर रखी है।

पुरुषोत्तम नित्य होने से इनके धर्म रूप में लीलाएँ भी नित्य हैं। अत ऋग्वेद, तैत्तरीय उपनिषद तथा श्रीमद्भागवतादि में वर्तमान काल की क्रियाओ

---

१. यत्र येन यतो यस्य यस्मैयद्यद्यथा यदा।
स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधान पुरुषेश्वरः॥ (निबंध)

२. सत्यादिगुण साहस्रैर्युक्तमौत्पत्तिकैः सदा। (निबंध)

३. यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपिचोत्तमः।
अतोऽस्मि लोकेवेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ (गीता)

से इनका वर्णन हुआ है[1]। इस आनंदमयी नित्यलीला का ज्ञान अन्य को भी हो, इस प्रकार की जब पुरुषोत्तम की इच्छा हुई, तब सर्वप्रथम वेद की श्रुतियों की प्रार्थना से उनको इनका दर्शन हुआ। पुनः श्रुतियों की प्रार्थना से सारस्वत कल्प में ब्रज में अवतरित होकर उनको भी इस लीला का साक्षात् आनंद देने का पुरुषोत्तम ने वरदान दिया। कृपायुक्त होकर दिये हुए इस वरदान को पूर्ण करने के लिए ही पुरुषोत्तम ब्रज में श्रीकृष्ण के रूप में साक्षात् आविर्भूत हुए और श्रुतियाँ ब्रज-गोपियों के रूप में प्रकट हुईं। पुरुषोत्तम के आविर्भाव से उनका समग्र लीला परिकर और लीला के स्थान भी ब्रज की गोपियों और गोवर्द्धन आदि स्थानों में अपने आधिदैविक रूप से प्रविष्ट हुए[2]। तभी इस भूतल की सामग्री पूर्ण पुरुषोत्तम के भोग-योग्य हुई। साक्षात् गोलोक ने श्रीमद्गोकुल में प्रवेश किया। गोवर्धन ने इस गोवर्धन पर्वत में प्रवेश किया और वृंदावन ने इस वृंदावन में। इस प्रकार समग्र ब्रज तद्रूप हो गया। श्रीकृष्ण—पुरुषोत्तम—और उनके धर्म नित्य होने से उनका यह अवतार और उनकी यह अवतार लीला को नित्यता प्राप्त हुई। इसीलिए श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन वर्तमान काल की क्रियाओं से हुआ है और बृहद् वामन पुराण में भी कहा गया है कि "स्त्रियाँ अथवा पुरुषगण भक्ति-भाव से केशव को हृदय में धारण कर श्रुति रूप गोपिकाओं के किये हुए भजन के अनुसार यदि श्रीकृष्ण का भजन करें तो वे श्रुतिरूप गोपिकाओं की गति को प्राप्त होते हैं।" इससे भी इन गोपिकाओ की स्थिति की नित्यता सिद्ध होती है। इस प्रकार पुरुषोत्तम की मूल लीला और अवतार लीला का नित्य संबंध सिद्ध होता है।

सूरदास ने इन लीलाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—

नित्य लीला का वर्णन—

जहाँ वृंदावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिय-प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार॥

---

१. (१) ता वां वास्तून्युष्मसि............ऋग्वेद।
(२) ते ते धामान्युष्मसि............तैत्तरीय।
(३) बहूनि सन्तिनामानि............भागवत इत्यादि।

२ इस विषय को विस्तृत रूप से समझने के लिए गो० श्री विट्ठलनाथजी रचित 'विद्वन्मंडन' ग्रंथ देखना चाहिए

रतन जटित कालिंदी को तट अति पुनीत जहाँ नीर।
सारस-हंस-चकोर-मोर-खग कूजत कोकिल-कीर ॥
जहाँ गोवर्धन परबत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत 'निसदिन करत विहार ॥' ×
धीर समीर बहत त्यहिं कानन, बोलत मधुकर मोर।
प्रीतम-प्रिया बदन अवलोकत उठि-उठि मिलत चकोर ॥
अमित एक उपमा अवलोकत जिय में परत बिचार।
नहिं प्रवेस अज-सिव गनेस पुनि, कितक बात संसार ॥
'सहस रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।'
कुमुद कली बिगसित अंबुज मिलि मधुकर भागी सोय ॥
नलिन पराग मेघ माधुरी, सो मुकुलित अंब कंदब।
मुनिमन मधुप सदारस लोभित सेवत अज-सिव अंब ॥ ×
सुख पर्यंक अंक ध्रुव देखियत कुसुम कंद द्रुम छाये।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दंपति लगत सोहाये ॥
गोवर्धन गिरि रतन सिंहासन दंपति रस सुख मान।
निबिड़ कुंज जहाँ कोउ न आवत रस बिलसत सुखमान ॥
निसा भोर कबहूँ नहिं जानत प्रेम मत्त अनुराग।
ललितादिक सींचत सुख नैननि जुरि सहचरि बड़ भाग ॥
यह निकुंज को बरनन करिकै वेद रहे पचिहार।
नेति नेति कर कहउ सहस विधि तऊ न पायौ पार ॥
दरसन दियौ कृपा कर मोहन बेग दियौ बरदान।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान ॥

...ा का भूतल पर प्राकट्य वर्णन—

गोपी पद-रज-महिमा विधि भृगु सों कही। ।× ×
ब्रज सुंदरि नहिं नारि रिचा श्रुति की सब आहीं।
मैं अरु सिव पुनि सेष लच्छमी तिहि सम नाहीं ॥
अदभुत है तिनकी कृपा, कहो सु मैं अब गाइ।
यहिं सुनै जो प्रीति करि, सो हरि पदहिं समाइ ॥
प्रकृति पुरुष लय भई, जगत सब प्रकृति समाया।
रह्यौ एक बैकुंठ लोक, जहाँ त्रिभुवन राया ॥
अक्षर अच्युत, निराकार अविगत है जोई।
आदि अंत नहिं जाहि, आदि अंतहि प्रभु सोई ॥

श्रुतिन विनय कर कह्यौ सबै तुमही हो देवा।
दूरि निरंतर तुमहिं, तुमहिं जानत निज भेवा॥
इहि बिधि बहुरि अस्तुत करी, तब भई गिरा आकास।
माँगो बर मनभावतौ पुरवौं सो तुव आस॥
श्रुतिन कह्यौ कर जोर सच्चिदानंद देव तुम।
जो नारायन आदि रूप तुमरौ सु लख्यौ हम॥
त्रिगुन रहित निज रूप जो लख्यौ न ताकौ भेव।
मन-बाणी तें अगम जो, दिखरावहु सो देव॥
वृंदावन निज धाम, कृपा करि तहाँ दिखायौ।
सब दिन जहाँ बसंत, कल्पवृच्छन सौं छायौ॥
कुंज अतिहि रमनीक तहँ बेलि सुभग रहीं छाइ।
गिरि गोवर्धन धातु मय, झरना झरत सुभाइ॥
कालिंदी जल अमृत प्रफुलित कमल सुहायौ।
नगन जटित दोऊ कूल हंस सारस तहँ छायौ॥
क्रीड़त स्याम किसोर तहँ, लिए गोपिका साथ।
निरखि सुछबि स्रुति थकित भईं तब बोले जदुनाथ॥
जो मन इच्छा होइ कहो सो मोहि प्रकट कर।
पूरन करौं सुकाम, दियौ मैं यह तुम कौं वर॥
श्रुतिन कह्यौ ह्वै गोपिका केलि करैं तुव संग।
एवमस्तु निज मुख कह्यौ पूरन परमानन्द॥
कल्प सारस्वत ब्रह्मा, जब सृष्टिहिं उपावै।
अरु तिहिं लोकनि वर्ण-आश्रम धर्म चलावै॥
बहुरि अधर्मी होहिं नृप, जग अधर्म बढ़ि जाइ।
तब विधि पृथ्वी सुर सकल विनय करैं मोहि आइ॥
मथुरा मंडल भरतखंड निज धाम हमारौ।
धरौं तहाँ मैं गोप वेष सो तिन्हें निहारौ॥
तब तुम ह्वै कर गोपिका, करिहौ मोसौं नेह।
करौं केलि तुमसौं सदा सत्य वचन मम एह॥
श्रुति सुनि कै यह बचन, भागि अपुनौ बहु मान्यौ।
चितवन लागे समय दिवस जो जात न जान्यौ॥
भार भयौ जब भूमि पर तब हरि लियौ अवतार।
वेद रिचा ह्वै गोपिका हरि सौं कियौ विहार॥

'जो कोउ भरता-भाव हृदय करि हरि पद धावै।'
नारि पुरुष कोउ होइ श्रुति-रिचा गति सो पावै।।
'तिनकी पद-रज कोउ जो बृंदावन भुव माहिं।'
'परसै सोउ गोपिका-गति पावै संसय नाँहि।।'
भृगु तातैं मैं चरन रेनु गोपिन को चाहत।
श्रुति मति बारंबार हृदय अपने अवगाहत।।
बंदन रज बिधि सबै बिधि, दियौ रिषिन समुझाइ।
व्यास जु कह्यौ पुरान में, 'सूर' कह्यौ सोई गाइ।।

अवतार लीला और उसकी नित्यता का वर्णन—

सो श्रुति रूप होय ब्रज मंडल कीनों रास-विहार।
नवल कुंज में अंस बाहु धरि कीन्हीं केलि अपार।।
पुनि ऋषि रूप राम वर पायौ हरि से प्रीतम पाय।
चरन प्रसाद राधिका देवी उन हरि कंठ लगाय।।
बृंदावन गोवर्धन कुंजन यमुना पुलिन सुदेस।
'नित प्रति करत बिहार मधुर रस स्यामास्याम सुवेस।।

२. अक्षरब्रह्म

अक्षरब्रह्म परब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरूप है, इसलिए यह परब्रह्म-पुरुषोत्तम से भिन्न नहीं माना गया है। यह "सच्चिदानन्द" रूप भी कहलाता है और इसे पुरुषोत्तम का "चरणस्थान" रूप भी माना गया है। यह ओंकार ज्योति रूप होने से परब्रह्म का धाम रूप भी है, इसीलिए यह परब्रह्म के समान आदि, सनातन, अनुपम और अविगत है; फिर भी इसमें आनंद की न्यूनता रखी गयी है, अतः यह "गणितानंद" कहलाता है। आनंद की कुछ न्यूनता के कारण ही इस ब्रह्म को अपेक्षा होती है, तब यह अपने में से जीव-जगत् आदि का निर्माण करता है।

प्रथम यह काल, कर्म, स्वभाव और अक्षर रूप होता है तथा प्रकृति, जीव और अनेक देवादि रूप होकर सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता रूप भी होता है*। प्रकृति, पुरुष, नारायण आदि सब इन्हीं के अंस रूप हैं। प्रकृति के

* १. उत्पत्तिस्थितिनाशानां जगतः कर्तृ वै बृहत्। (अणुभाष्य)
२. व्यष्टि, समष्टिः पुरुषो जीव भेदस्त्रियो मतः।।
अन्तर्यम्यक्षरं कृष्णो ब्रह्मभेदास्तथा परे।
स्वभाव कर्मकालाश्च रुद्रोब्रह्माहरिस्तथा।। (निबंध)
३. अक्षरस्य स्वभाव कर्मकाला भेदा रुद्रादयः। (निबंध)

राजस तामस और सात्विक गुणों के अधिष्ठाता ब्रह्मा, शिव और विष्णु भी इसी ब्रह्म के अंशात्मक विविध रूप हैं।

अक्षर ब्रह्म के ही सत् धर्म से जगत्, चित् से जीव और आनंद से अंतर्यामी का आविर्भाव होता है।

सूरदास ने अक्षरब्रह्म विषयक वर्णन सारावली आदि में इस प्रकार किया है—

आदि, सनातन एक अनूपम, अविगत अल्प अहार।
ॐकार आदि वेद असुरहन, निर्गुण, सगुण अपार॥

अन्तर्यामी रूप—

१. हरि स्वरूप सब घट पुनि जानौ।
ईख माँहि ज्यों रस है सानौ॥
त्यौंही तन रस आतम सार।
ऐसो विधि जानौ संसार॥

२. अपने आप करि प्रकट कियौ है हरि "पुरुष अवतार"।
माया कियो क्षोभ बहु विधि करि "काल-पुरुष" के अंग।
राजस तामस सात्विक बहु करि "प्रकृति-पुरुष" कौ संग॥

ब्रह्मा-रुद्र-विष्णु विषयक वर्णन—

१. हरि सौ ठाकुर और न जन कौं।
तिहूँ लोक भृगु जाइ आइ कहि, या बिधि सब लोगन कौं॥
ब्रह्मा "राजस" गुन अधिकारी, सिव 'तामस' अधिकारी।

२. विष्णु रुद्र विधि एकहिं रूप। इन्हें जान मत 'भिन्न' स्वरूप॥

३. यज्ञ प्रभु प्रगट दिखायौ।
विष्णु विधि रुद्र मम रूप ए तीनि हू, दक्ष सौं बचन यह कहि सुनायौ॥

४. हरि-पद प्रीति करै सुख पावै।
उत्पत्ति, पालन, प्रलय, हेतु हरि तीन रूप धरि आवै।
विष्णु रुद्र ब्रह्मा हरि सब प्रेरक अंतरजामी सोई॥

५. प्रभु तुम मरम समुझि नहीं परयौ।
जग सिरजत, पालत संहारत पुनि क्यों बहुरि करयौ॥

३. जगत्

जगत् परब्रह्म का भौतिक स्वरूप है। ब्रह्म ही अपने सत् धर्म से २८ तत्व होकर इस जगत् स्वरूप हुए हैं[1], इसलिए शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार यह समग्र जगत् ब्रह्मरूप है, अतः यह ब्रह्म के समान सत्य है। क्वचित् जहाँ कहीं पुराणों में जगत् को मिथ्या कहा गया है, वह केवल वैराग्य सिद्धि अर्थ ही है—ऐसा आचार्य जी का मत है[2]। इस सिद्धांत के अनुसार जगत् और संसार दो भिन्न-भिन्न तथ्य हैं। जगत् २८ तत्व रूप है और संसार जीव की अविद्या से माना हुआ "मैं" और "मेरेपने" की कल्पना मात्र है, अतः आचार्य जी ने संसार को मिथ्या कहा है। ज्ञान द्वारा जीव की मुक्ति होने पर संसार की निवृत्ति होती है, किंतु जगत् ज्यों का त्यों स्थिर रहता ही है[3]। यही इस भेद को समझने के लिए प्रबल युक्ति है। इस बात को श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के अतिरिक्त किसी और ने भी नहीं समझा था। प्रलय के समय जगत् का तिरोभाव होता है, नाश नहीं। जिस प्रकार घट के भीतर का आकाश घट के टूट जाने से बृहद् आकाश में समा जाता है, उसी प्रकार जगत् प्रलय के समय में अपने मूल तत्व रूप से ब्रह्म में समा जाता है। इस प्रकार वस्तुतः जगत् का नाश न होने के कारण भी उसकी ब्रह्म रूपता सिद्ध होती है।

सूरदास के पद में भी जगत् विषयक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है—
२८ तत्व की उत्पत्ति—

(१) खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपुने आप करि प्रगट कियौ है हरी "पुरुष अवतार"॥
कीने तत्व प्रगट तेहि छिन सबै "अष्ट अरु बीस"।

(२) "आदि निरंजन निराकार" कोउ हतौ न दूसर।
करौं सृष्टि विस्तार "भई इच्छा" इह औसर॥
निर्गुण तत्व तें महतत्व, महतत्व तें अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंचौ तातें कियौ विस्तार॥
शब्दादिक तें पंच भूत सुंदर प्रगटाये।
पुनि सब कों रचि अंड आप में आप समाये॥

---

१. अष्टाविंशति तत्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः। (निबंध)
२. मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थमुदीर्यते। (निबंध)
३. संसारस्यलयौ मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कर्हिचित। (निबंध)

तीन लोक निज देह में राख करि विस्तार ।
आदि पुरुष सोई भयौ, जो प्रभु अगम अपार ।

(३) कृष्ण भक्ति करि कृष्णहिं पावैं ।
"कृष्णहि तें यह जगत प्रगट है, हरि में लय ह्वै जावैं" ॥

जगत् की सत्यता—

(१) जग प्रपंच हरि रूप लहै जब, दोष भाव मिटि जाही ।
"सूरदास" तब कृष्ण रूप ह्वै, हरि हिय में रहे आही ॥

(२) ब्राह्मण मुख क्षत्रिय भुज कहियै, वैश्य जंघनहि जान ।
शूद्र चरण यह विधि 'जग हरिमय', यही ज्ञान दृढ़ मान ॥
दोष दृष्टि यहि विधि नहीं उपजै, 'आनंदमय' दरसाय ।
'सूरदास' तब हरि हिय आवै, प्रेम मगन गुन गाय ॥

वैराग्यार्थ—

हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूप है, 'तउ माया कृत जानि*' ।
तातें मन निकारि सब ठाँ तें, 'एक कृष्ण मन आनि' ॥

संसार की निःसारता—

(१) अरे मन मूरख जनम गँवायौ ।
'यह संसार सुआ सेंमर ज्यौं', सुंदर देखि लुभायौ ॥
चाखन लाग्यौ रुई उड़ि गई, 'हाथ कछू नहीं आयौ' ।

(२) कहाँ तू कहाँ यह देह बिचार ।
........................."स्वप्न तुल्य यह संसार" ॥

मैं मेरी यह हरि की माया । सकल जीव जग यही नचाया ॥

निम्न पंक्तियों से सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया ज
वह सर्वथा भ्रमात्मक है—

जो हरि करै सो होई कर्ता नाम हरि ।
ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि करि ॥

प्रतिबिंबवाद में, माया में ब्रह्म का जब प्रतिबिंब पड़ता है तब म
जगत् की उत्पत्ति मानी गई है । इससे माया का कर्तृत्व सिद्ध होता है ।
यहाँ तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "जो हरि करै सो होई, कर्ता नाम
इससे हरि को ही कर्ता माना गया है ।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में पहले कहा जा चुका है कि परब्रह्म
आध्यात्मिक ज्योति स्वरूप अक्षरब्रह्म से सत् धर्म से जगत, चित्

* प्रपंचो भगवत्कार्यं स्वद्रूपोमायकाऽभवत् । (निबंध)

जीव और आनंद से अंतर्यामी रूप होते हैं। इसी बात को 'ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि करि।''—इस प्रकार कहा है। यहाँ दर्पण के स्थान पर ज्योति रूप अक्षर है और उसमें स्थिर ब्रह्म के साकार रूप में इस सृष्टि की रचना की गई है। इस साकारत्व के सूचनार्थ ही प्रतिबिंब शब्द का प्रयोग किया गया है। अपने साकारत्व के प्रतिबिंब रूप में इस सृष्टि की रचना की है, अन्यथा प्रतिबिंबवाद में माया को मलीन कहा गया है, इसलिए स्वच्छता के अभाव में उसमें न तो प्रतिबिंब ही पड़ सकता है, न उससे साकार सृष्टि की रचना हो सकती है।

निम्न लिखित पद से उक्त बात और भी स्पष्ट होती है—

'आदि निरंजन निराकार', कोऊ हतौ न दूसर।
करों सृष्टि विस्तार 'भई इच्छा' इह औसर॥
'निर्गुण' तत्व तें महतत्व, महतत्व तें अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंचौ, तातें कियौ विस्तार॥
शब्दादिक तें पंचभूत, 'सुंदर' प्रगटाये।
पुनि सब कौं रचि अंड, 'आप में आप समाये'॥
तीन लोक निज देह में, राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष सोई भयौ, जो प्रभु अगम अपार॥

इसमें "आदि निरंजन निराकार" शब्द इस ज्योति रूप अक्षर धाम के सूचक हैं और "रचौ सृष्टि विस्तार भई इच्छा इह औसर' वाला कथन उस धाम में स्थित साकार ब्रह्म का निरूपण करता है। "महत्तत्व" आदि की जिससे उत्पत्ति कही गई है, वह "निर्गुणतत्व" ज्योति रूप अक्षर ही है। उससे तीन लोक की रचना कर उनको अपने देह में रखा। इस कथन से पुनः ब्रह्म के साकारत्व का सूचन हुआ है। 'आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार।' इस कथन में "आदि पुरुष", "अक्षर ब्रह्म" की "अगम अपार" ऐसे पुरुषोत्तम परब्रह्म की अभेदता बतलाई गई है। यह सिद्धांत शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का ही है, जिसको हम पहले लिख चुके हैं।

इस प्रकार यह समग्र पद प्रतिबिंबवाद से असम्बद्ध है। सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया जाता है, वह निःसंदेह भ्रमात्मक है।

४. जीव

जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म के संदेश से जड़ और आनंदांश से अंतर्यामी हुए, उसी प्रकार उसके चिदंश जीवों की उत्पत्ति हुई है। अग्नि के विस्फुलिंगों

की तरह ब्रह्म में से जीवों की उत्पत्ति होने से ये ब्रह्म के अंश रूप कहे गये हैं[१], अतः विस्फुलिंगों में जिस प्रकार अग्नि की स्थिति रहती है, इसी प्रकार इस शुद्ध अवस्था में जीवों में भी भगवदैश्वर्यादि आनंदात्मक धर्मों की स्थिति रहती है, इसलिए इस अवस्था में जीव ब्रह्म रूप होता है।

ईश्वरेच्छा से जब जीवों को माया का संबंध होता है, तब उनमें से वह ऐश्वर्यादि भगवद्धर्म तिरोहित हो जाते हैं। तब वे जीव दीन, पराधीन एवं दुःखी होते हैं, और माया में बद्ध होकर संसारी बन जाते हैं[२]।

पुनः पंचपर्वा विद्या और भक्ति आदि से जीव जब अविद्या से निर्मुक्त हो जाता है, तब वह भगवत् कृपा से क्रमशः अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाता है। यह जीव की जीवन मुक्त अवस्था होती है।

इस प्रकार जीव की तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं। प्रथम अवस्था शुद्ध, द्वितीय संसारी और तृतीय मुक्त अवस्था है। "योयदंश सतांभजेत्" श्रुति के अनुसार इन तीनों अवस्थाओं में जीव के लिए अपने अंशी परमात्मा का भजन अवश्य कर्त्तव्य माना गया है।

इन तीनों अवस्था वाले जीवों का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित कथनों में उपलब्ध होता है—

शुद्ध अवस्था वाले जीवों का वर्णन—

> **जहाँ वृंदाबन आदि अजर जहँ कुंज-लता विस्तार।**
> **सारस-हंस-चकोर-मोर-खग कूजत कोकिल कीर॥** × ×
> **गोपिन मंडल मध्य बिराजत निस-दिन करत बिहार।**
> **'सहस रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय॥**

---

१. (१) विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।
आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः। (**निबंध**)
(२) तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतनाः।
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारस्तदिच्छया। (**निबंध**)
(३) ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (**गीता**)

२. अस्य जीवस्यैश्वर्यादि तिरोहितम्।................तस्माद् ईश्वरेच्छया जीवस्य भगवद्धर्मतिरोभावः। ऐश्वर्यतिरोभावाद्दीनत्वं, पराधीनत्व, वीर्यतिरोभावात् सर्वदुःखसहनं............आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो, येन जीवभावः अतएव काममयः। (**अणुभाष्य ३ अ०**)

संसारी जीवों का वर्णन—

(१) जब लौं सत्य स्वरूप न सूझत।
तब लौं मृगमद नाभि बिसारें फिरत सकल बन बूझत॥
अपनो ही मुख मलिन मंदमति देखत दर्पन माँहि।
ता कालिमा मेटिबे कारन पचत पखारत छाँहि॥

(२) अपुनपौ आपुनहो बिसरचौ।
जैसे स्वान कांच मंदिर में, भ्रमि-भ्रमि भूस मरचौ॥
ज्यों सपने में रंक भूप भयो, तसकर अरि पकरचौ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखि कै, आपुन कूप परचौ।
जैसे गज लखि फटिक सिला में दसननि आय अरचौ॥
मरकट मूठि छाँड़ि नहीं दीनौं, घर-घर द्वार फिरचौ।
"सूरदास" नलिनी कौ सुवटा कहि कौने जकरचौ॥

इस पद को आधार बनाकर कुछ लोग सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का प्रभाव मानते हैं, किंतु पूर्व सिद्धांत के अध्ययन से उन लोगों की धारणा गलत सिद्ध होती है। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं शुद्धाद्वैत सिद्धांत में जीव को उसकी शुद्ध अवस्था में ब्रह्म रूप माना है, किंतु जब वह माया से ग्रसित होता है, तब वह अपने सत्य स्वरूप को भूल कर भ्रमित हो जाता है, और जिस प्रकार स्वान अपने ही प्रतिबिंब को सच्चा स्वान समझ कर भूसता है, उसी प्रकार जीव भी अपनी कल्पना द्वारा "मैं" और "मेरेपने" के मिथ्या ज्ञान से अपने क्षण-भंगुर शरीर को ही आत्मा समझ कर दुखी होता है। इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान में जीव स्वयं फँस गया है। इसका उल्लेख इसी पद की अंतिम पंक्तियों में "मरकट मूठि छाँड़ि नहि दीनौ" तथा "सूरदास नलिनी कौ सुवटा कहि कौने जकरचौ" इस प्रकार हुआ है। इससे यह पद शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुकूल ही स्पष्ट होता है। शुद्धाद्वैत सिद्धांत में जीव को नित्य माना गया है। इसका उल्लेख निम्न लिखित पद में हुआ है—

तनु स्थूल और दूबर होइ। परम आत्म कों एक नहिं दोइ॥
तनु मिथ्या छन-भंगुर जानो। चेतन जीव सदा थिर मानो॥
जीव कों सुख-दुख तनु संग होइ। जोइ बिचरै तन के संग सोइ॥
देह अभिमानी जीवहि जानें। ज्ञानी तन अलिप्त करि मानें॥

मुक्त अवस्था वाले जीव का वर्णन—

(१) ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन के भेद भेद नहिं मानै॥
आतमा सदा अजन्म अविनासी। ताकों देह-मोह बड़ फाँसी॥

तातें ज्ञानी मोह न करै। तनु कुटुंब सों हित परिहरै ॥
जब लग भजै न चरन मुरारी। तब लगि होइ न भव-जल पारी ॥

(२) अपुनपौ आपुन ही में पायौ ।
शब्द ही शब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ ॥
ज्यों कुरंग नाभी कस्तूरी, ढूंढत फिरत भुलायौ ।
फिर चेत्यौ जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायौ ॥
राजकुमार कंठमनि भूषन, भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ ।
दियौ बताइ और सतजन तब, तनु कौ ताप नसायौ ॥
सपने माँहि नारि कों भ्रम भयौ, बालक कहूँ हिरानौ ।
जागि लख्यौ ज्यों कौ त्यों ही है, ना कहूँ गयौ न आयौ ॥
'सूरदास' समुझे की यह गति, मनहिं मन मुसकायौ ॥
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यों गूँगौ गुड़ खायौ ॥

५. आत्ममाया

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार आत्ममाया परब्रह्म की "सर्वभवन समर्थ' रूपा शक्ति है। यह परब्रह्म से सदा वेष्टित रहती है। आत्ममाया परब्रह्म के आधीन है, परब्रह्म इसके आधीन नहीं। इसलिए यह परब्रह्म के सत्य स्वरूप को कभी आच्छादित नहीं कर सकती है। श्रीमद्बल्लभाचार्यजी ने सुबोधिनी में इसके दो रूप बतलाये हैं–कि एक "व्यामोहिका" और दूसरा "करण"। व्यामोहिका भगवान के चरण की दासी है[1], इसलिए वह भगवान के अनुचर के पास जाने में लज्जित होती है[2]। दूसरी माया को "करण" रूप से स्वीकार कर भगवान इस समग्र जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं[3]।

माया संबंधी उपर्युक्त वर्णन सूरदास के पदों में इस प्रकार मिलता है—

१. इयं (माया) चरणदासी।·········इयं मोहिका (सु० २–७–४७)

२. ···येवाभिमुखश्चकारादनुचराश्चज्ञानिनो भक्ताश्रतया । सर्वत्रैव विलज्ज माना। (सु० २–७–४७)

३. माया सर्वभवन सामर्थ्यम्, शक्तिर्वा काचित. अप्रयोजिका. तामपि करणत्वेन स्वीकृत्य इद सवमेव पालयति नाशयति च

व्यामोहिका माया—

(१) सब तें परे कृष्ण भगवान । × ×
सो माया है "हरि की दासी", निस दिन आज्ञाकारी ।
काल कर्म हम सिव अरु विष्णुहिं सब के कारन हरि धारी ॥
पालत सृजन प्रलय के कर्ता माया के गुन जानो ।
मोमें रजगुन सिव में तमगुन, विष्णुहिं सतगुम मानो ॥

(२) मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया ।
मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि बिसराया ॥

(३) हरि बिनु कोऊ काम न आयौ ।
यह माया झूंठी प्रपंच लगि रतन सौ जनम गंवायौ ॥

"करण रूप" योगमाया—

(१) हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूपहिं तऊ 'माया कृत' जानि ।

सूर के पदों में मिथ्यावाद-मायावाद का इस प्रकार खंडन मिलता है—

(१) रूप देखि जस जानि जगत 'बिनु निरवलंब कहो किन भावै ?"
(२) प्रगट ब्रह्म 'दूरयौ नहीं' तू देख नैन पसार ।
(३) छाँड़ि स्याम अमोफल अमृत 'माया विष फल' खावै ।

२—सूरदास और पुष्टिमार्गीय भक्ति

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के निर्माण के अनंतर श्रीमद्‌बल्लभाचार्य जी ने सोचा कि मस्तिष्क प्रधान मनुष्य शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के विशुद्ध ज्ञान से शुद्ध होकर इस संसार से मुक्त हो जावेंगे, किंतु केवल हृदय प्रधान भावुक व्यक्ति किस प्रकार इस संसार से मुक्त हो सकेंगे ! इस विचार के फल स्वरूप उन्होंने प्रेम को अपनाया; क्यों कि प्रेम ही एक ऐसा अनुपम तत्त्व है, जिससे केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी प्रभावित रहते हैं । चैतन्य स्वरूप प्रत्येक जीव का हृदय इस प्रेम की ओर सदा झुका हुआ रहता है । शास्त्रों में भी प्रेम की अगणित महिमा बतलायी गयी है । यहाँ तक कि किसी भी साधन से सर्वदा अप्राप्य ऐसे परम-तत्व रूप श्रीकृष्ण भी प्रेम से सुलभ हो जाते हैं । प्रेम से ही भगवान् श्रीकृष्ण कृपा युक्त होकर गोपीजनों के आधीन हुए हैं, इस लिए प्रेममय श्रीकृष्ण की साक्षात् कृपा प्राप्त करने के लिए आचार्य जी ने इस प्रेम को ही अपनाया, ताकि जीव सरलता पूर्वक कृष्णासक्त होकर इस संसार से मुक्त हो जांय ।

आचार्य जी ने विशुद्ध प्रेम को ही शुद्ध पुष्टि कहा है[1], अतएव पुष्टि भक्ति मे प्रेम को अभिव्यक्त किया गया है। विशुद्ध प्रेम के दृष्टांत गोपीजन है, इस लिए उन्हीं को पुष्टि के गुरु मान कर आचार्य जी ने उनके प्रेमात्मक साधनो को पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है[2]।

देवादि विषयक रति-प्रेम को भाव कहते हैं[3], अतः विशुद्ध प्रेम भाव स्वरूप होता है। आचार्य श्री के मत से इस भाव को सिद्ध करने का एक मात्र साधन उसका भावना-सस्नेह क्रियात्मक चिंतन है[4]। इसी के भाव की प्राप्ति होती है। अन्य किसी भी साधन से उस भाव-प्रेम की सिद्धि प्राप्त नही हो सकती है। इसीलिए आचार्य जी ने भार-भाविक परमदेव श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपीजनों की प्रेम-भावना वाली सेवा को प्रगट किया है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

श्री गोपीजनों के विभेद के साथ आचार्य जी ने उनकी प्रेमात्मक भक्ति साधन रूप भावनाओं का इस प्रकार निरूपण किया है—

"गोपांगना सु पुष्टिः। गोपीषु मर्यादा। व्रजांगना सु प्रवाहः।.........
गोपांगनास्तु भुक्तमुक्ताः भुक्तं गृहे सुखं मुक्तं याभिस्ताः किं वा नाज्ञातो लोकवेदभययुक्तो याभिस्ता मुक्ता कुटंब मायापत्यवैभव गेहाधिपतिधनवपुः पत्यादिक सकल मर्यादार्था मुक्ता याभिस्ता सर्वाम् धर्मान्निकृत्यकेवलं श्रीपुरुषोत्तममेव भजंति। तस्मात्तासां पुष्टित्वम्।

अथ गोपीनां व्रजकुमारिणां गोपीजनवल्लभभजनेतर भजनं जातम्। किंचतद्गुजनोपायेऽपि कात्यानीभजनं कृतम्।'' ''अतएव तासां मर्यादा भक्तिः।

तथा व्रजांगननां मातृभावेनैव संग्रहः। तासाम् ईश्वरे पुत्र भावो वर्तते। तस्मात्तासां प्रवाहत्वम्। इति त्रिविधा गोप्यः। (भगवत्पीठिका)

इसका तात्पर्य यह है कि व्रज में तीन प्रकार की गोपीजन हैं—एक "गोपांगना", दूसरी "गोपी" अर्थात् "कुमारिकाएँ", तीसरी "व्रजांगनाएँ"।

इन तीनों में "गोपांगनाओं" ने लोक वेद भय से मुक्त होकर और सर्व धर्मों के त्याग पूर्वक शुद्ध प्रेम से केवल पुरुषोत्तम का ही 'साक्षात्' भजन

---

१. पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारता।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाति दुर्लभाः॥ (पुष्टिप्रवाहमर्यादा)

२. ''''''गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं चतत्। (संन्यास निर्णय)

३. रतिदेवविषया भाव इत्यभिधीयते।

४. भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते। (संन्यास निर्णय)

किया है, इसलिए ये "पुष्टिपुष्टि" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में परकीय भावना वाले उत्कृष्ट प्रेम व्यसन की स्थिति रहती है।

दूसरी 'गोपी' अथवा 'कुमारिकाओं' ने कात्यायनी व्रत आदि से पुरुषोत्तम का 'परोक्ष' भजन किया है, इसलिए "पुष्टिमर्यादा" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह-स्वकीय स्त्री भावना वाली आसक्ति की स्थिति रहती है।

तीसरी 'व्रजांगनाओं' ने पुरुषोत्तम का लोकवत् बाल भाव से भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिप्रवाह" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में केवल वात्सल्य भावना की स्थिति रहती है।

आचार्य जी ने इन तीनो भावनाओं को पुष्टि भक्ति का मुख्य साधन माना है। इसका विवेचन पुष्टिमार्गीय सेवा प्रकरण में आगे किया जायगा।

इन त्रिविध भावना-साधनों से जिस कलात्मक विशुद्ध प्रेम रूप शुद्ध पुष्टि की प्राप्ति होती है, उसको श्री वल्लभाचार्य जी ने "स्वाधीना" अथवा "स्वतंत्र भक्ति" कहा है। आचार्य जी का मत है कि जब तक कृष्ण की अधीनता रहती है, तब तक 'मर्यादा' है और स्वाधीन अवस्था को 'पुष्टि' कहते हैं*।

जिस प्रकार एक सिद्ध योगी योग-बल से अपने में से अनेक प्रकार के ऐश्वर्य-वैभवों को प्रकट कर उनके आनंद का स्व-इच्छानुसार उपभोग करता है और पुनः उस ऐश्वर्य को हृदय में स्थापित कर आंतर सुख का भी अनुभव करता है, उसी प्रकार स्वाधीना स्वतंत्र भाव संपन्न भक्त भी भाव बल से अपने में से अनेक प्रकार के लीलात्मक कृष्ण रूपों को प्रकट कर उनके विविध आनंद का अनेक रूप होकर उपभोग करता है और पुनः उनको अपने में स्थित कर आंतर प्रकार से भी उनके साथ विलास करता है। बाह्य स्थिति के समय वह भक्त पूर्ण-धर्मी-संयोग सुख का आनंद लेता है और आंतर स्थिति के समय वह पूर्ण-धर्मी-विप्रयोगात्मक सुख का आनंद भोगता है। इस प्रकार के प्रेम भक्ति-योग से उस भक्त का भौतिक देह अप्राकृत हो जाता है। उसके नेत्र में, वाणी में, हृदय में, मन में, तन में और सभी स्थानों में परमानंद स्वरूप लीलामय कृष्ण की स्थिति रहती है; इसलिए वह भाव रूप हो जाता है और भाव में ही निरंतर विलास करता है। "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इस श्रुत्योक्त फल का भोग 'स्वाधीना' भक्त ही पूर्ण रूप से कर

* कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते।

सकता है। इसी को आचार्य जी ने शुद्ध पुष्टि अथवा विशुद्ध प्रेम की तन्मय अवस्था माना है।

यद्यपि पूर्वोक्त प्रेम की तीन भावना अवस्थाओं से इस सिद्ध भाव अवस्था को उत्तम माना गया है और इसी को परम फल भी कहा गया है, फिर भी उक्त तीन अवस्थाएँ भी अपने-अपने समय में फल रूप ही मानी गई है। क्यों कि ये तीनों अवस्थाएँ भी पुष्टि के अवांतर निरोध-मोक्ष रूप ही मानी हैं। इनमें भी जो सुख मिलता है, वह चतुर्विध मुक्ति आदि में भी नहीं है। पुष्टि भक्ति की यही विलक्षणता और पूर्णता है।

सूरदास के पदों में उक्त चारों प्रकार की भावनाएँ और उनके निरोध सुख का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

पुष्टि प्रवाह की स्नेह रूप बाल भावना और उसका-सुख निरोध—

बनी सहज यह लूट हरि केलि गोपीन के, सपुने यह कृपा कमला न पावै।
निगम निर्धार त्रिपुरारि हू बिचारि रह्यौ, पच रह्यौ सेष नहिं पार पावै॥
किन्नरी बहुरि अरु बहुरि गंधर्वनी, पनगनी चितवन नहीं माँझ पावै।
देलि करतार वे 'लाल गोपाल सों', पकरि ब्रजबाल कपि ज्यों नचावै॥
कोऊ कहै 'ललन' पकराव मोहि पाँवरी, कोऊ कहै 'लाल' बलि लाओ पीढ़ी।
कोऊ कहै 'ललन' गहाव मोहि सोहनी, कोऊ कहै 'लाल' चढ़ि जाउ सीढ़ी॥
कोऊ कहै 'ललन' देखो मोर कैसे नँचै, कोऊ कहै भ्रमर कैसे गुंजारै।
कोऊ कहै पौरि लगि दौरि आवहु 'लाल', रीझि मोतीन के हार वारै॥
जो कछु कहै ब्रजबधू सोई सोई करत, तोतरे बैन बोलन सुहावै।
रोय परत वस्तु जब भारी न उठै, तब चूम मुख 'जननी' उर सों लगावै॥
बैन कहि लौनी मुख चाही रहत बदन हँसि स्वभुज बीच लै लै कलोलै।
'धाम के काम ब्रजबाम सब भूलि रही, कान्ह बलराम के संग डोलै॥
'सूर' गिरिधरन मधु चरित्र मधुपान के और अमृत कछू आन लागै।
और सुख रंक को कौन इच्छा करे, 'मुक्ति हू लौन सी खारी लागै'॥

इस पद में बाल-भावना और उसके निरोध सुख का वर्णन किया गया है। यह मातृ भाव वाली ब्रजांगनाओं की पुष्टि प्रवाह अवस्था है। इसके निरोध सुख के आगे मुक्ति भी नमक जैसी खारी लगती है। यही पुष्टि भक्ति का उत्कर्ष है।

पुष्टि मर्यादा की आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति और उसका निरोध सुख—

भजि सखी भाव–भाविक देव ।
कोटि साधन करो कोऊ, तऊ न मानै सेव ।।
धूम्रकेतु कुमार माँग्यौ, कौन मारग प्रीति ।
'पुरुष तैं त्रिय भाव उपज्यौ' सबै उलटी रीति ।।
बसन-भूषन पलटि पहरैं, भाव सौं संजोय ।
उलटि मुद्रा दई अंकन, बरन सूधे होय ।।
वेद विधि कौ नेम नहिं, जहाँ प्रेम की पहिचान ।
ब्रजबधू बस किये मोहन, 'सूर' चतुर सुजान ।।

प्रारंभ में अग्निकुमारों ने माहात्म्य ज्ञान से श्री रामचंद्र जी का भजन किया था । इससे उनको श्री रामचंद्र जी के कंदर्प रूप के दर्शन हुए थे, जिसके फल स्वरूप उनमें पुरुष होने हुए भी स्त्री भाव उत्पन्न हुआ था । इसीलिए श्री रामचंद्र जी के वर के अनुसार वे सब कृष्णावतार में गोप-कुमारिकाएँ रूप से अवतरित हुए और व्रत-चर्या आदि से "श्रीकृष्ण हमारे पति हों" यह वर प्राप्त किया । इस प्रकार की स्वकीय स्त्री भावना का सुख उनको रास-लीला द्वारा प्राप्त हुआ था और उस रसेश श्रीकृष्ण को अपने वश में कर वे निरुद्ध हुई थीं । यह पुष्टिमर्यादा अवस्था का निरोध-सुख है ।

पुष्टिपुष्टि के व्यसन रूप परकीय भावना और उसका निरोध-सुख—

(१) द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ ।
'बिनु देखै कल परत नहीं छिनु, ऐते पर कीन्ही यह टेऊ' ।।
'बार-बार छबि देख्यौइ चाहत' साथी निमिष मिले हैं येऊ ।।

(२) पलक-ओट नहिं होत कन्हाई ।
'घर गुरुजन बहुतै विधि त्रासत', लाज करावत लाज न आई ।।
नैन जहाँ दरसन हरि अटके, स्रवन थके सुनि बचन सुहाई ।
रसना और कछू नहीं भाषत, स्याम-स्याम रट इहै लगाई ।।
चित चंचल संगहि सँग डोलत, 'लोक-लाज मरजाद मिटाई' ।
मन हरि लियौ 'सूर' प्रभु तब ही, तन बपुरे की कहा बसाई ।।

(३) नंद के द्वार नंद-गेह बूझै ।
इतहिं तैं जाति उत, उतहिं तैं फिरति इत, निकट ह्वै जाति नहीं नैंक सूझै ।।
भई 'बेहाल' ब्रजबाल नंदलाल हित, अरपि तन-मन सबै तिन्है दीन्हौ
'लोक लज्जा तजी' लाज देखति भजी, स्याम कौं भजी, कछु डर न कीन्हौ ।
भूखि गयौ दधि नाम, कहति लैहो स्याम, नाँहि सुधि धाम कहुँ है कि नाँहीं
'सूर' प्रभु कौं मिली, मेटि भली अनभली, चून हरदी रली देह छाँहीं ।

(४) कहति नंद-घर मोहि बतावहु ।
द्वारहिं माँझ बात यह बूझति, बार-बार कहि कहा दिखावहु ॥
याही गाँव किधौं और कहुँ, जहाँ महरि कौ गेहु ।
बहुत दूरि तें मैं आई हौं, कहि जस काहे न लेहु ॥
अति ही संभ्रम भई ग्वालिनी, द्वारे ही पर ठाढ़ी ।
'सूरदास' स्वामी सों अटकी, 'प्रीति प्रगट अति बाढ़ी' ॥

परकीय भावना का निरोध-सुख—"मान"—

रूप–रस पुंज बरनों कहा चातुरी* ।
मान मेरौ कह्यौ चतुर चंद्रावली, निरखि मुख कमल उडुराज संकात री ॥
तिलक मृगमद भाल, द्विरद की सी चाल, देखि मोहे लाल मंद मुसकात री
'सूर' नगधर केलि अंस भुज मेलि, मुग्ध पद टेलि दें मदन-सिर लात री ॥

इसमें रसेश श्रीकृष्ण की स्वाधीनता के परम सुख का संक्षिप्त में वर्णन हुआ है । यह परकीय भावना वाली "पुष्टि-पुष्टि" अवस्था रूप है ।

सूरदास और माधुर्य-भक्ति—सूरदास के इस प्रकार के माधुर्य-भक्ति के पद को देखकर कुछ विद्वान उन पर गौड़ीय, हरिदासी एवं हरिवंशी संप्रदायों की भक्ति का भी प्रभाव होना मानते हैं; किंतु वास्तव में पुष्टि संप्रदाय की पूर्वोक्त भक्ति भावना का अध्ययन करने से उक्त मान्यता भ्रमात्मक सिद्ध होती है । स्वयं श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के वचनों के आधार पर हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि पुष्टि भक्ति में बाल, दाम्पत्य और परकीय कांता भाव की तीनों भावनाओं का भजन ग्राह्य है । श्री वल्लभाचार्य जी ने मधुराष्टक, परिवृढाष्टक और सुबोधिनी में माधुर्य-भक्ति का जो प्रवाह बहाया है, उससे भी उक्त बात की पुष्टि होती है । आचार्य जी अपने "परिवृढाष्टक" ग्रंथ में कहते हैं—

---

* इसी की छाया में अष्टछाप के कृष्णदास का भी एक पद मिलता है—

चतुर चारु चंद्रावलि मुख चकोरै ।
अस्तु में चरनरति ब्रज-जुवति भूषनौ, कमल लोचन नंद नृप किसोरै ॥
मान मेरौ कह्यौ अति सील रस-रीति ज्यों करावति सखी बहु निहोरै ।
मिलै किन धाय अब कुँवर चूड़ारत्न रसिकवर भूपाल चित्त चोरै ॥
नवरंग कुंज महँ तव नाम हित नाथ कुणित कल मुरलिका ठाट मोरै ।
सुनि "कृष्णदास" सुभ लग्न वह घरी, लाल गिरिधरन सौं हाथ जोरै ॥

कलिंदोद्भूतायास्तटमनुचरंतीं पशुपजां ।
रहस्येकां दृष्ट्वा नव सुभगवक्षोजयुगलाम् ।।
दृढं नीवी ग्रंथिश्लथयति मृगाक्ष्या हठतरं ।
रति प्रादुर्भावो भवतु सतत श्रीपरिवृढे ।।

इसमें श्रीराधा के साथ रहस्य लीला करने वाले परब्रह्म में मेरी सतत रति प्रादुर्भूत हो, इस प्रकार की आचार्य जी कामना करते हैं। इसी प्रकार अपने इष्ट देव के स्वरूप का वर्णन करते हुए आपने "मधुराष्टक" में कहा है—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।

इसमें आचार्य जी अपने इष्ट को "मधुराधिपति" कह कर उनके समग्र अंग, चेष्टा आदि को भी मधुर बतलाते हैं। इससे भी उनकी मधुर भक्ति का ज्ञान हो सकता है।

श्री बल्लभाचार्य जी भक्तिमार्गीय संन्यास का पर्यवसान रासलीला में ही मानते हैं, इसलिए आप पुष्टि-पुष्टि स्वरूप श्रुतिरूपा गोपांगनाओं को ही इसकी अधिकारी कहते हैं। "गायत्री भाष्य" में आचार्य जी ने लिखा है—

भक्तिमार्गीय संन्यासस्तु साक्षात्पुष्टिश्रुतिरूपाणां रासमंडल मंडनानाम् । स्वयमेवोक्तं "संत्यज्य सर्व विषयांस्तव पादमूलं प्राप्ता इत्यादि चतुर्थाध्याये ताः प्रति भगवता ।।

सुबोधिनी में तो आचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति के स्वरूप ज्ञान के लिए समग्र रतिशास्त्र को ही प्रकट कर दिया है। जैसा कि—

(१) "अनेन विपरीत रस उच्यते, बंध विशेषो वा तिर्यग्भेदः।" (१०–३१–७)

(२) "अनेन सर्व एव सुरतबन्धा आक्षिप्ताः। (१०–३१–१३)

(३) "अग्रे मर्यादा भंगो रसपोषाय। तदुक्तं "शास्त्राणां विषयस्तावद् यावदमन्द रसानराः। रतिचक्रे प्रवृत्तेषु नैव शास्त्रं न च क्रमः" (१०–३३–२६)

उपर्युक्त वचनों के अध्ययन से ज्ञात हो सकता है कि श्री बल्लभाचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख होने पर भी हिंदी साहित्य के प्रायः सभी विद्वानों को यह भ्रम हो गया है कि श्री बल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य भक्ति का ही उपदेश किया था और पुष्टि संप्रदाय में माधुर्य-भक्ति का प्रवेश श्री बल्लभाचार्य जी के

अनंतर उनके पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी द्वारा चैतन्य संप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुकरण पर हुआ। हिंदी साहित्य के अनेक विद्वानों ने बल्लभ संप्रदाय के सिद्धांतों का गंभीर अध्ययन नहीं किया है, इसलिए उनके उक्त मत पर हमको आश्चर्य नहीं होता है। हमको आश्चर्य तो तब होता है, जब हम पुष्टि संप्रदाय का गंभीर अध्ययन करने वाले डा० दीनदयाल जी गुप्त को भी इसी प्रकार का भ्रमात्मक मत प्रकट करते हुए देखते हैं! उन्होने आधुनिक विद्वानो के स्वर में स्वर मिलाते हुए लिखा है—

"मधुर भाव की भक्ति का समावेश लेखक के विचार से आचार्य जी ने भागवत के अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु से भी लिया[1]।"

पुष्टि संप्रदाय के इतिहास और श्री आचार्य जी रचित ग्रंथों के अध्ययन से उपर्युक्त मत नितांत भ्रमात्मक सिद्ध होता है। पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि अष्टछाप के कुंभनदास के अतिरिक्त पद्मनाभदास और श्रीभट्ट[2] आदि आचार्य जी के सेवकों ने संप्रदाय के आरंभिक काल में ही केवल मधुर भाव युक्त निकुंज लीला के पदों का गायन किया था, यहाँ तक कि वात्सल्य भाव का तो शायद उन्होंने एक भी पद नहीं गाया। कुंभनदास आदि का काव्य-काल श्री चैतन्य महाप्रभु के गृह-त्याग (सं० १५६६) से पूर्व का निश्चित है। इसी प्रकार श्री बल्लभाचार्य जी कृत माधुर्य-भक्ति पूर्ण "मधुराष्टक" और "परिवृढाष्टक" की रचना भी श्री चैतन्य के गृह-त्याग से पूर्व सं० १५५० के लगभग हो चुकी थी। चैतन्य संप्रदाय के इतिहास से ज्ञात होता है कि उक्त संप्रदाय का साहित्य महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के तिरोधान (१५८७) के अनंतर लिखा गया है। ऐसी दशा में चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति का प्रभाव पुष्टि संप्रदाय की भक्ति-भावना पर बतलाना असंगत कल्पना है।

इसके अतिरिक्त चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति से बल्लभ संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति का मौलिक मतभेद है। माधुर्य-भक्ति की मुख्य पात्र श्रीराधा हैं, जिनको बल्लभ संप्रदाय में स्वकीया माना गया है, किंतु चैतन्य संप्रदाय इनको परकीया माना गया है। पुष्टि संप्रदाय के मतानुसार परकीय भाव की पात्र श्रुतिरूपा गोपांगना—श्री चंद्रावली हैं।

---

१. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ ५२७

२. यह निंबार्क संप्रदायी श्रीभट्ट से पृथक कवि हैं।

श्री राधा-सहचरी का उल्लेख श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने ग्रंथ त्रिविध नामावली में भी किया है—"राधा सहचराय नमः।" इसी राधा मे कृष्णावतार के रास के समय ब्रह्म की मुख्य 'राधस्' शक्ति (लक्ष्मी) का प्रवेश हुआ था, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे विशेष रूप से रमण किया था। इस बात का ज्ञान सुबोधिनी (१०-३०-१७) तथा "राधाविशेष सभोग प्राप्त दोष निवारक:" इस प्रकार "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" के अनुसधान करने पर होता है।

इन सब कथनों से यह स्पष्ट है कि माधुर्य-भक्ति और राधा शब्द के प्रयोग आदि का प्रचार पुष्टि मार्ग में श्रीमद्वल्लभाचार्य जी द्वारा ही श्री चैतन्य के गृह-त्याग से पूर्व हुआ है। इसकी वहिः पुष्टि आचार्य जी के सेवक "श्रीभट" के निम्न पद से भी होती है—

श्री बल्लभ प्रगटत सब प्रगटी लीला स्यामघन की।
रसिकन उर अति उल्लास उद्भव भयौ,
रास विलास प्रकास प्रेम पुंज कुंज संपति वृंदाबन की॥
आनंद द्रुम उरझि रह्यौ सुरझाई लई कहि,
फेरि उरझाइ दई बातें ब्रज जन की॥
और दिखाई ठौर ठौर दान मान नित प्रसंग,
त्रिभंग तीनों लोक मांझ प्रेम पन की॥
कटि तें लै ग्रीव स्याम गोपीजन भाव भूषन,
सीस मुकुट जटित आभा नील पीतन की॥
विरह बसन लसत देह यही भेष नेह गेह,
आसा सब भाँति पूरी "श्रीभट" के मन की॥

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार श्री राधा परब्रह्म की आत्म शक्ति होने से उससे सर्वदा अभिन्न मानी गयी है। इसीलिए पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथ जी के साथ भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप नहीं रखा गया है। जहाँ कहीं भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप पाया जाता है, वहाँ मूल आत्म शक्ति के धर्मरूप से केवल लीला अनुभवार्थ है। लीला परत्वे श्री राधा के प्राधान्य को स्वीकार करते हुए भी शुद्धाद्वैत सिद्धांत में शक्तिवान् पुरुष का ही आधिपत्य माना गया है; क्यों कि इस मत में तत्वतः शक्ति शक्तिवान् के अधीन ही मानी गयी है। वस्तुतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार अभिन्न और एक ही रूप हैं।

गो॰ श्री हरिराय जी के इस विषय में निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं—

(१) मुख्य शक्ति स्वरूपं तु स्त्री भावो हरिरुच्यते।

(भावस्वरूप नि॰

(२) तत्र स्त्र्यंशः 'पराशक्ति' र्भावांशः कृष्ण शब्दितः।

(मूलरूप संशय निराकरणम्

इस प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार साकार पुंभाव अंश अ पराशक्ति रूप स्त्री अंश मिल कर ही परब्रह्म कृष्ण कहे गये हैं। इसके विपर "द्वैत" मत में तत्वतः दोनों भिन्न माने गये हैं।

सूर के पदों में यही अद्वैत सिद्धांत इस प्रकार मिलता है—

(१) ब्रजहि बसे आपुहिं बिसरायौ।
'प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु', बातनि भेद करायौ॥
जल-थल जहाँ रहौ तुम बिनु नहीं, वेद-उपनिषद गायौ।
'द्वैत न जीव एक हम तुम दोउ', सुख कारन उपजायौ॥
'ब्रह्म-रूप द्वितिया नहीं कोऊ', तब मन तिया जनायौ।
'सूरस्याम' मुख देखि अलप हँसि, आनँद पुंज बढ़ायौ॥

(२) राधिका-गेह हरि-देह बासी। और तियन घर तनु प्रकासी॥
ब्रह्म पूरन एक द्वितीय नहीं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै वोऊ॥
दीप तें दीप जैसे उजारी। तैसे ही ब्रह्म घर-घर बिहारी॥
खंडिता वचन हित यह उपाई। कबहूँ कहुँ जात, कहुँ नहिं कन्हाई॥
नारी रस वचन श्रवनन सुनावै। जनम कौ फल हरि तबहिं पावै॥
'सूर' प्रभु अनत ही गवन कीन्हौ। तहाँ नहिं गये जहाँ वचन दीन्हौ॥

(३) घर पठई प्यारी अंकम भरि।
कर अपने मुख परसि तिया कौ, प्रेम सहित दोऊ भुज धरि धरि॥
'राधा हरि आधा आधा तनु एकै, ह्वै द्वै ब्रज में ह्वै अवतरि।
'सूरस्याम' रस भरी उमँगि अँग,यह छवि देखि रह्यौ रतिपति डरि॥

इन पदों से राधा और कृष्ण की शुद्ध अद्वैतता तथा राधा की स्वकीय भावना स्पष्ट होती है, अतः सूरदास द्वारा किया गया राधा विषयक माधुर्य भाव का वर्णन पुष्टि संप्रदाय की भावना के अनुकूल है। सूरदास के पदों मे प्राप्त चंद्रावली जी की परकीय भावना से इसकी और भी पुष्टि होती है।

पुष्टिमार्ग में श्री चंद्रावली जी परकीया रूप में श्री कृष्ण के दक्षिण ओर स्थित रहती हैं जब कि श्री राधा उनके बांई ओर रहती हैं। सूरदास के निम्न लिखित पद मे यह भाव स्पष्ट हुआ है

श्री चंद्रावली जी का वर्णन—

नंदनंदन हँसे नागरी मुख चितै, हरषि 'चंद्रावलि' कंठ लाई।
बाम भुज रवनि[1],दच्छिन भुजा सखी पर[2], चले बन धाम सुख कहि न जाई
मनो बिब दामिनी बीच नव घन सुभग, देखि छवि काम रति सहित लाजै
किधौं कंचन-लतान बीच सु तमाल तरु, भामिनिन बीच गिरधर बिराजै
गये गृह-कुंज अलि गुंज सुमननि-पुंजि, देखि आनंद भरे 'सूर' स्वामी
'राधिका रवन' चंद्रावली रवन प्रिय, निरखि छवि होत मन काम कामी

विशुद्ध प्रेम की शुद्धि-पुष्टि—तन्मय अवस्था रूप "स्वाधीना" भाव स्वरूप और उसका स्वतंत्र संयोग-वियोगात्मक विलास—

(भाव-प्रेम स्वरूप वर्णन)

(१) भाव बिनु माल नफा नहिं पावै।
भाव बीज भक्तन कौ सर्वस, भावहिं हिरदै ध्यावै॥
भाव भक्ति सेवा सुमिरन करि, पुष्टि पंथ में धावै।
'सूर' भाव सब ही कौ कारन, 'भाव ही में हरि आवै'॥

(२) प्रेम में निस-दिन बसत मुरारी।
प्रेम ही तन-मन, प्रेम ही जीवन, प्रेम पगे बनवारी॥
प्रेम अहार-बिहार निरंतर, प्रेम करत व्यवहारी।
'सूरस्याम' प्रभु प्रेम रँगे हैं, और नहीं अधिकारी॥

(तन्मयता का वर्णन)

(१) आँखिन में बसै, जियरे में बसै, हियरे में बसै निस-दिन प्यारौ।
मन में बसै, तन में बसै, रसना हू में बसै नंदवारौ॥
सुधि में बसै, बुधि हू में बसै, अंग-अंग में बसै प्रिय प्रेम-दुलारौ।
'सूरस्याम' बन हू में बसै, घर हू में बसै संग, ज्यौं जल-तरंग न होत न्यारौ

(२) गोरस कौं निज नाम भुलायौ।
लेहु-लेहु-लेहु गोपालहिं, गलिन-गलिन यह सोर मचायौ॥

स्वतंत्र भावों का विलास—

(संयोग अवस्था)

(१) लाल तेरी बंसी नेंक बजाऊँ।
अपनौ भूषन पिय कौं पहिराऊँ, पिय कौ पहरि बताऊँ॥

१. श्री राधा   २. श्री चंद्रावली

तुम वृषभान लली बनि बैठो, मैं नंदलाल कहाऊँ ।
तुम तौ छिपौ पिय कुंज गलिन में, पकरि फेंट गहि लाऊँ ॥
तुम तौ मान मानिनी बनि बैठौ, मैं गहि चरन मनाऊँ ।
'सूरदास' प्रभु अचरज भारी, तुम राधे मैं माधौ कहाऊँ ॥

(विप्रयोग अवस्था)

(२) हरि बिन व्यथा कौन सों कहियै ।
मनमथ मथत रहत छिन छिन प्रति, अंतरगति में बहियै ॥
कानन भवन रैन अरु बासर, कहूँ नहिं सुख लहियै ।
मोकों भई यज्ञ-पसु ज्यों, यह दुःख कहाँ लों सहियै ॥
कबहुँक जिय में ऐसी आवै, जाय जमुन-जल बहियै ।
'सूरदास' प्रभु कमल-नैन बिनु, कहु कैसें ब्रज रहियै ॥

इस प्रकार के भावों का स्वतंत्र विलास ही पुष्टि की सर्वोच्च मोक्ष-संन्यास अथवा निरोध अवस्था है । यह सिद्ध हो जाने पर इसी देह से नित्य लीला का परम सुख निरंतर यहाँ बैठे ही बैठे प्राप्त होता है । इसमें लोक-वेद के संबंधो की तो गंध भी नहीं रहती है, कृष्ण के बाह्य स्वरूप की भी अधीनता या अपेक्षा नहीं होती । इस अवस्था का भक्त अपने भावानुकूल अनेक प्रकार के लीला स्वरूपों को क्षण-क्षण में प्रकट कर विविध प्रकारों से उनके आनंद का यथेच्छ भोग करता रहता है । कभी वह अपने में ही कृष्ण रूपता का अनुभव कर स्वयं को कृष्ण मानता है, तो कभी अंतस्तल में कृष्णानंद की खोज करता है । शुद्धाद्वैत ब्रह्म-भावना के सिद्धांत का प्रेम की इस अवस्था में ही पर्यवसान हो जाता है ।

३—सूरदास और पुष्टिमार्गीय-सेवा

श्री बल्लभाचार्य जी ने सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध कराने के लिए जीव को कृष्ण-सेवा का उपदेश किया है[1] । जब तक सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध नहीं होता, तब तक जीव को पूर्वोक्त दिव्य प्रेम की सिद्धि भी प्राप्त नहीं हो सकती । उस सिद्धि को प्राप्त किये बिना श्रुतियों की गति दुर्लभ है, अतः निरंतर कृष्ण-सेवा करना ही प्रेम-जिज्ञासु जीवों के लिए एक मात्र कर्तव्य कहा गया है ।

---

१. (१) ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् । (सिद्धांत मुक्तावली)
(२) कृष्ण सेवा सदा कार्या............... । (सिद्धांत मुक्तावली)

आचार्य जी ने कृष्ण-सेवा के दो भेद बतलाये हैं—एक क्रियात्मक और दूसरा भावनात्मक । क्रियात्मक सेवा पुनः दो प्रकार की कही गई है—एक तनुजा और दूसरी वित्तजा । तनुजा अर्थात् इस शरीर और उसकी एकादश इंद्रियाँ एवं स्त्री, पुत्र, कुटुंब आदि द्वारा की जाने वाली सेवा और वित्तजा अर्थात् द्रव्य और उससे संबंधित पदार्थों द्वारा की जाने वाली सेवा। भावनात्मक सेवा को आचार्य जी ने मानसी कहा है । उसका स्वरूप चित्त का श्रीहरि मे संपूर्ण रूपेण प्रवण होना है । इसकी सिद्धि तनुजा-वित्तजा प्रकार वाली सेवा से ही हो सकती है[1], इसलिए क्रियात्मक सेवा करना ही जीव का सर्व प्रथम कर्त्तव्य है । इस सेवा में ब्रह्म-भावना पूर्वक पूर्वोक्त बाल-भावना, स्वकीय स्त्री-भावना और परकीय भावनाओं से स्नेहात्मक चितवन करना है । इस प्रकार से मानसी सेवा सिद्ध हो सकती है । इससे जीव परागति को प्राप्त होता है[2] । क्रियात्मक सेवा में इस प्रकार के चितवन बिना न तो एकादश इंद्रियाँ—विशेषत: मन का ही विनियोग हो सकता है, न उससे चित्त की पूर्ण प्रवणता रूप मानसी सेवा ही सिद्ध हो सकती है ।

तनुजा-वित्तजा रूप क्रियात्मक सेवा के स्वरूप को तादृश करने के लिए आचार्य जी ने पुष्टिमार्गीय सेवा का इस प्रकार निर्माण किया है—

गुरु का आश्रय—कृष्ण-सेवा के जिज्ञासु जीव को सर्व प्रथम कृष्ण का माहात्म्य और उनके स्वरूप का ज्ञान आवश्यक रूप से होना चाहिए। इसके बिना उससे कृष्ण की कृपा को प्राप्त करने वाली सेवा सांगोपांग रूप से नहीं हो सकती है । अतएव इस प्रकार की ज्ञान-प्राप्ति के लिए कृष्ण-सेवा मे परमवीक्ष्य, दंभादि रहित और श्री भागवत-तत्त्व को जानने वाले पुरुष को गुरु करना आवश्यक है और श्रद्धा एवं जिज्ञासा पूर्वक 'सर्वात्मभाव' से इस गुरु का भजन-आश्रय करना इस जीव के लिए नितांत आवश्यक होता है[3] । जब तक जिज्ञासु जीव में गुरु और ईश्वर के बीच इस प्रकार की अभेद बुद्धि नही स्थापित होती, तब तक उसको शास्त्रों के ज्ञान-निष्कर्ष स्वरूप कृष्ण-माहात्म्य

---

१. चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धयै तनु वित्तजा । (**सिद्धांत मुक्तावली**)

२. युवां मां पुत्र भावेन ब्रह्म भावेन चासकृत् ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौयास्येथे मद्गति पराम् । (**भागवत १०, अ० ४**)

३. कृष्णसेवा परंवीक्ष्यं दम्भादिरहितं नरम् ।
श्रीभागवत तत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात् ।। (**निबंध**)

का विशुद्ध बोध भी नहीं हो सकता है। उपनिषद् के निम्न श्लोक से की पुष्टि होती है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

सूरदास के पदों में सर्वोत्तम भाव से गुरु के भजन का वर्णन इस मिलता है—

(१) श्री बल्लभ अब की बेर उबारौ।
सब पतितन में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारौ॥
और पतित नहीं मेरे सम, अजामिल कौन विचारौ।
भाज्यौ नरक नाम सुनि मेरौ, जम ने दियौ हरतारौ॥
कृपासिंधु करुनानिधि केसव, अब न करोगे उधारौ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं, 'बिना एक सरन तुम्हारौ'॥

(२) श्री बल्लभ भले-बुरे तोऊ तेरे।
तुमहिं हमारी लाज बड़ाई, विनती सुन प्रभु मेरे॥
अन्य देव सब रंक-भिखारी, देखे बहुत घनेरे॥
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भये सब 'चेरे'॥
सब त्यजि तुम सरनागति आयौ, दृढ़ करि चरन गहेरे।
'सूरदास' प्रभु तिहारे मिले तें, पाये सुख जु घनेरे॥

(३) भरोसौ दृढ़ इन चरननि केरौ।
श्री बल्लभ नख-चंद्र छटा बिनु, सब जग माँझ अँधेरौ॥
साधन और नहीं या कलि में, जासों होत निबेरौ।
"सूर" कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना माल कौ 'चेरौ'॥

(४) हरि-हरि, हरि-हरि सुमिरन करो। हरि-चरनारविंद उर धरो
श्रीमद्बल्लभ प्रभु के चरन। तिनके गहो सुदृढ़ करि सरन
विट्ठलनाथ कृष्ण* सुत जाके। सरन गहे दुख नासहिं ताके
तिनके पद-मकरंदहि पाऊँ। "सूर" कहे हरि के गुन गाऊँ

---

* अग्निरूपो द्विजाचारो भविष्यामि भूतले।
बल्लभोह्यग्निरूपः स्याद्विट्ठलः पुरुषोत्तमः॥(अग्निपुराण का भविष्योत्त
बल्लभोनाममेवत्स भुविसर्वे वदंतिहि।
यत्सूनु विट्ठलेशस्तु यशोदानंदनंदनः॥ (नारद पंचरात्र का तृतीय
अग्निसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, गौरी-तन्त्र, ब्रह्मयामल इत्यादि इसी प्रकार के उल्लेख मिलते हैं।

पूर्वोक्त शास्त्रीय आधारों से इस सेवा-मार्ग में सर्व - प्रथम गुरु का आश्रय कर्त्तव्य रूप कहा गया है। जब जीव गुरु का आश्रय करता है, तब गुरु भगवान् श्रीकृष्ण से उसका विस्मृत हुआ चिरकालीन अंशात्मक संबंध का ज्ञान कराते हुए उसका कृष्ण के चरणों में आत्म-निवेदन कराते है। इससे जीव कृष्ण का दास बनकर कृष्ण-सेवा का अधिकारी होता है। जिस मंत्र से आचार्य जी ने जीव का श्रीकृष्ण के चरणों में आत्म-समर्पण कराया है, उसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है—

श्री कृष्ण मेरा आश्रय (शरण) है। सहस्र परिवत्सर जितना काल व्यतीत हुआ, श्रीकृष्ण से मेरा वियोग हुआ है। उस वियोग जन्य तापक्लेशानंद का मेरे में से तिरोभाव हुआ है, अतः भगवान कृष्ण को देह, प्राण, इंद्रियाँ, अंतःकरण उसके धर्म, दारागार, पुत्र, आप्त-वित्त, इहलोक-परलोक और आत्मा सहित (मैं) समर्पित करता हूँ। मैं दास हूँ। कृष्ण मैं तुम्हारा हूँ।"

कृष्ण के स्वरूप (मूर्ति) के समक्ष वाह्याभ्यंतर शुद्ध प्रकार से आचार्य जी जीव को तुलसी की साक्षी से इस प्रकार की प्रतिज्ञा करवाते हैं। इसी को आत्म निवेदन कहा जाता है।

श्रीमद्भागवत एकादशस्कंध में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

ये दारागार पुत्राप्त प्राणान् वित्त निमं परं।
हित्वा मां शरणं यातः कथं तां रत्यक्तुमुत्सहे॥

अर्थात्—जो व्यक्ति दारागार पुत्राप्त प्राण और वित्त आदि सहित मेरी शरण में आता है, उसका मैं हे उद्धव! किस प्रकार त्याग कर सकता हूँ?

इस प्रकार के कृष्ण वाक्यों को प्रमाण मान कर ही आचार्य जी ने इस आत्म-निवेदन प्रणाली को प्रकट किया है और इसी से जीव अपने अंशी कृष्ण से अंगीकृत होकर साक्षात् दासत्व का अधिकारी हो जाता है, इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्"—इस भगवद्गीता का कृष्ण-वाक्य भी इस विश्वास की पुष्टि करता है, अतः अविश्वास न करने की आज्ञा करते हुए* आचार्य जी ने इस अधिकार को प्रत्यक्ष करने के लिए वाचिक रूप से जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्रिया और मन से अनुसरण करने को कहा है। इसी लिये सेवा मार्ग प्रकट किया गया है। सेवामार्ग द्वारा जीव मनसा-वाचा-कर्मणा भगवद्दासत्व को सिद्ध कर कृष्णानुगृहीत होता है। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

---

* अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा वाधकस्तु सः। (विवेक धैर्याश्रय)

इस प्रकार के आत्म-निवेदन और उसके क्रियात्मक रूप का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पद में मिलता है—

यामें कहा घटैगो तेरो ।
नदनंदन करि घर कौ ठाकुर आपुन ह्वै रहैचेरो ।।
भली भई जो संपति बाढ़ी बहुत कियौ घर घेरौ ।
कहुँ हरि-सेवा, कहुँ हरि-कथा, कहुँ भक्तन कौ डेरो ।।
जुवती-जूथ बहुत संकेले, बैभव बढ्यौ घनेरो ।
सबै समर्पन "सूर" स्याम कों, यह सांचौ मत मेरो ।।

जो लोग "तन मन धन गुसांईजी को अर्पन" इस कहावत के कारण पुष्टिमार्ग को बदनाम करने की धृष्टता करते है, उनको पूर्वोक्त आत्मनिवेदन के मंत्र के अक्षरार्थ तथा सूरदास के इस पद ध्यान देना चाहिए। इन दोनों मे गुरु को समर्पण करने का कहीं उल्लेख नहीं है, श्रीकृष्ण को ही सब कुछ समर्पण करने को कहा गया है ।

नित्य की सेवाविधि—श्रीवल्लभाचार्य जी का उपदेश है कि शरणस्थ जीवों को गुरु की बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार सेवा की कृति करनी चाहिए[1], इसीलिए आचार्य जी ने स्वमार्ग की सेवा-विधि का निर्माण किया है, जिससे पुष्टिस्थ जीव इस विधि के अनुसार सेवा की कृति कर सके ।

आचार्य जी ने सेवा-विधि में दो क्रम रखे हैं—एक प्रातःकाल से शयन पर्यंत की नित्य विधि का और दूसरा वर्षोत्सव का ।

हम पहले लिख चुके हैं कि आचार्य जी ने पुष्टि के गुरु स्वरूप गोपीजनो के भावना-साधनों को ही इस पुष्टिमार्ग के मुख्य साधन माने हैं, इसलिए आचार्य जी ने पूर्वोक्त ब्रजांगनाएँ, गोपी और गोपांगनाओं की विविध साधन रूप प्रेमात्मक भावनाओं के अनुसार ही इस सेवा-विधि का निर्माण किया है[2] ।

मातृभाव स्वरूप ब्रजांगनाओं ने भगवान् कृष्ण के प्रति बाल-भाव की भावना से प्रेरित होकर उनकी प्रातःकाल से शयन पर्यंत वात्सल्यता पूर्वक सेवा की है; इसलिए आचार्य जी ने इस नित्य की सेवा-विधि में उन्हीं की भावना को फलित किया है। इस भावना के अनुसार आचार्य जी ने

१. सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा । (नवरत्न)

२ सेवा-रीति प्रीति ब्रज जन की, जन हित जग प्रगटाई । (बधाई)

कृष्ण की सेवा के मुख्य आठ समय रखे हैं। इनका नाम और परिचय इस प्रकार है—

१. मंगला, २. शृंगार, ३. ग्वाल, ४. राजभोग, ५. उत्थापन, ६ भोग, ७. संध्याआरती, ८. शयन।

१. मंगला—श्री गुरु का स्मरण और उनकी वंदना कर भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को प्रातः जगाया जाता है। फिर उनको कलेऊ कराया जाता है, जिसको मंगल भोग कहते हैं। समयानुसार भोग कराकर मंगला-आरती होती है। ये सब प्रक्रियाएँ वात्सल्य बाल-भाव से मातृ-चरण श्री यशोदाजी की भाव-भावना से भावित होकर की जाती हैं। इसमें ऋतु अनुसार वस्त्र, सामग्री आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है।

२. शृंगार—मंगला-आरती के अनंतर श्रीकृष्ण के स्वरूप को उष्ण जल से स्नान कराया जाता है और तेल-फुलेल लगाकर वस्त्र, आभरण आदि धराये जाते हैं।

३. ग्वाल—शृंगार के अनंतर शृंगार-भोग आता है। फिर ग्वाल के भाव से 'घैया[1]' आरोगाई जाती है।

४. राजभोग—शीतकाल में ठंड के कारण भगवान् कृष्ण नंदादिक के साथ घर में भोजन करते हैं और उष्णकाल में धूप शीघ्र होने से माता यशोदा पुत्र को शीघ्र गायों के साथ बन में भेज देती है और पीछे से भोजन सामग्री सखियों के द्वारा भेजती है। इसे छाक कहते हैं। फिर राजभोग आरती होकर 'अनोसर' होता है।

५. उत्थापन—छे घड़ी दिन रहे पुनः प्रभु को जगाया जाता है।

६. भोग—जगाने के अनंतर फल-फूल आदि का भोग आता है। फिर दर्शन होते हैं।

७. संध्या आरती—बन में गायों को लेकर श्रीकृष्ण घर आते हैं, उस समय घर में आरती की जाती है।

८. शयन—व्यारू-शयन भोग आता है, फिर दर्शन आरती होती है। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के स्वरूप को पौढ़ाया जाता है।

इस प्रकार की दैनिक प्रक्रियाओं को नित्य की सेवा-विधि कहते हैं। इसमें मातृचरण श्री यशोदा जी की वात्सल्य-भावना की ही प्रधानता रहती है।

सूरदास ने उक्त नित्य की सेवा-विधि का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया है—

---

१. दूध के फेन का पदार्थ।

भजो गोपाल, भूलि जिनि जाउ । मानुष देह कौ यही है लाउ ॥
'गुरु सेवा' करि भक्ति कमाई । कृपा भई तब मन में आई ॥
यही देह सों सुमरौ देवा[1] । देह धारि करियै यह सेवा ॥
सुनो संत ! सेवा की 'रीति' । करै कृपा 'मन राखौ प्रीति ॥
उठिकै प्रात गुरुन सिर नावै । प्रात समय श्रीकृष्ण कों ध्यावै ॥
जोई फल माँगै, सोई पावै । हरि-चरनन में जो चित लावै ॥
जिन ठाकुर कौ दरसन कियौ । जीवन जन्म सुफल करि लियौ ॥
जो ठाकुर की आरति करै[2] । तीन लोक वाके पाँयन परै ॥
जो ठाकुर कों करै प्रनाम । विष्णु लोक तिनकौ निज धाम[3] ॥
जो हरि आगे वाद्य बजावै । तीन लोक रजधानी पावै ॥
जो जन हरि कौं ध्यान करावै । गरभ-बास में कबहु न आवै ॥
जो हरि क नित करै सिंगार[4] । ताकौ पूरन है अंगीकार ॥
जो दरपन ठाकुरहि दिखावै । चंद-सूर्य ताकों सिर नावै ॥
जो ठाकुर कों तुलसी धरावै[5] । ताकी महिमा कहत न आवै ॥
जो ठाकुर कों कीर्तन सुनावै । ताकों ठाकुर निकट बुलावै ॥
हरि-मंदिर में दीपक धरै । अंध-कूप में कबहुँ न परै ॥
जो ठाकुर की सेज बिछावै । निज पदवी पाय दास कहावै ॥
जो ठाकुर कों पलना झुलावै । बैकुंठ-सुख अपने घर लावै ॥
जो ठाकुर कों झुलावै डोल । नित-लीला में करै कलोल ॥
उत्सव करि मन आरती करै[6] । ता आधीन रहैं श्रीहरै ॥
जो ठाकुर कों भोग धरावै[7] । सदा परम नित आनंद पावै ॥

---

१. एको देवो देवकीपुत्राएव ।............कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा । (निबंध)

२. मंगला-आरती ।

३. सेवाय: फल त्रयम् । अलौकिक सामर्थ्यं, सायुज्यं, सेवौपयिक देहो वा वैकुंठादिषु । (सेवाफल विवरण)

४. शृंगार समय ।

५. शृंगार अनंतर ग्वाल के समय में तुलसी समर्पण करने की रीति है । इससे ग्वाल का संकेत है ।

६. राजभोग आरती का संकेत है ।

७. उत्थापन भोग ।

जो पद दीन्ह जसोदा मात[1] । ता सुख की कछु कही न जात[2] ।।
ग्वालन सहित गोपाल जिमावै[3] । सो ठाकुर कौ सखा कहावै ।।
जो ठाकुर कों स्वाद करावै । सो ताकौ फल तब ही पावै ।।
गोवर्धन की लीला गावै । चरन-कमल रज तब ही पावै ।
श्री जमुना जल करै जो पान । सो ठाकुर के रहै सन्निधान ।
जहाँ समाज वैष्णवी होवै । ताकी संगति नित-प्रति जोवै ।
श्री भागवत सुनै आनंद करि । ताके हृदै बसैं नित्य हरि ।
जो ठाकुर कों देह समर्पै । उत्तम श्रेष्ठ जानि कै अरपै ।
जिनि हरि की गागर भरि आनी । तिन बैकुंठ अपनी स्थिति ठानी ।
जो ठाकुर कौ मंदिर लेपै । माया ताकौ कबहू न लेपै ।
जो ठाकुर कौ सीधौ बीनै । जितने तीरथ तितने कीनै ।
जो ठाकुर की माला पोवै । सोई परम भक्त नित होवै ।
जो ठाकुर कों चंदन लावै । त्रिविध ताप संताप मिटावै ।
जो ठाकुर के पात्रन धोवै । सदा सर्वदा निरमल होवै ।
जो हरि-कीर्तन सुख सों करै । मुक्ति चारि हू पाँयन परै ।
सेवा में जो आलस करै । कूकर ह्वै कै फिरि-फिरि मरै ।
"मनसा जो सेवा आचरै । तब ही सेवा पूरी परै"
जो सेवा कौ आश्रय करि रहै । दुख सुख बचन सबन के सहै ।
जो सेवा में आलस लावै । सो जड़ जनम प्रेत को पावै ।
वेद पुरानन में यों भाख्यौ । 'सेवा - रस ब्रज गोपिन चाख्यौ'
सेवा की यह अद्भुत रीति । श्री विट्ठलेश सों राखै प्रीति ।
श्री आचार्य प्रभु प्रगट बनाई । कृपा भई तब मन में आई ।
सेवा को फल कह्यौ न जाई । सुख सुमिरै श्री वल्लभराई ।
सेवा कौ फल सेवा पावै । "सूरदास" प्रभु हृदै समावै ।

सूरदास के निम्न पदों में आठों समय की बाल-भावनाओं का इस प्रक[ार] वर्णन किया गया है ।

१. मंगला

जगाने का—

लाल नाहिं जगाय सकत, सुन सो बात सजनी ।
अपने जान अजहू कान्ह, मानत सुख रजनी ।।

---

१. बाल-भावना का संकेत है । २. संध्या आरती का संकेत है ।
३ शयन भोग ।

जब-जब हौं निकट जाऊँ, रहत लागि लोभा ।
तन की सुधि बिसरि गई, देखत मुख-सोभा ।।
बचनन जिय बहुत करत, सोचत मन ठाढ़ी ।
नयन नयन बिचारि परें, निरखत रुचि बाढ़ी ।।
यह बिधि बदनारबिंद, जसुमति जिय भावै ।
"सूरदास" सुख की रासि, कहत न बनि आवै ।।

कलेऊ का—

(१) दोउ भैया मैया पै माँगत, दै री मैया ! दधि-माखन-रोटी
सुनत भावती बात सुतनि की, झूठे हि धाम के काम अगोटी
बल जू गह्यौ नासिका मोती, कान्ह कुँवर गही दृढ़ करि चोटी
मानों हंस मोर भख लीन्हे, कहा बरनों उपमा मति छोटी
यह छबि देखि नंद आनंदे, प्रेम-मगन भये लोटा-पोटी
"सूरदास" मन मुदित जसोदा, भाग्य बड़े करमनि की मोटी

(२) अबहि जसोदा माखन लाई ।
मैं मथिकै अब ही जू निकास्यौ, तुव कारन मेरे कुँवर कन्हाई ।।
माँगि लेहु ऐसौ हो मोपै, मेरे ही आगै खाहु ।
और कहूँ जिन लैहो मोहन, डीठ लगैगी काहु ।।
तनक-तनक हो खाउ लाल मेरे, ज्यों बढ़ि आवै देह ।
"सूर" स्याम कछु होउ बड़े से, बैरिन के मुख खेह ।।

आरती का—

ब्रज-मंगल की मंगल आरती ।
रतन जटित कनक थारनि, ता मधि चित्र कपूर लै बारती ।।
लेति बलाइ करति न्यौछावरि, तन-मन-प्रान वारनै वारती ।
"सूरदास" भरी है जसोदा, मगन भई तन-मन न सँवारती ।।

२. शृंगार

न्हवायवे का—

जसुमति जबहि कह्यौ अन्हवावन, रोय गए हरि लोटत री ।
तेल उबटनौ लै आगै धरि, लालहि चोटत-पोटत री ।।
मैं बलि जाउँ न्हाउ जल मोहन, कत रोवत बिन काजै ।
पाछै धरि राख्यौ छपाय कै, उबटन तेल समाजै ।।
महरि बहुरि बिनती करि राखत, मानत नहीं कन्हाई ।
"सूर" स्याम अति ही बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पाई ।।

र का—

करति शृंगार मैया मन भावत ॥
सीतल जलहिं उष्ण करि राख्यौ* लै लालन कों बैठि न्हवावत ।
देखो मेरे लाल और सब बालक घर-घर तें कैसे बनि आवत ॥
पहरौ लाल झगा अति सुंदर, आँख आँजिके तिलक बनावति ।
"सूरदास" प्रभु खेलत आँगन, लेति बलैया मोद बढ़ावति ॥

३. ग्वाल

का—

दै री मैया ! दोहिनी, दुहिहौं मैं गैया ।
माखन खाए बल भयौ, करौं नंद-दुहैया ॥
कजरी धौरी सेंदुरी, धूमरि मेरी गैया ।
दुहि लाऊँ मैं तुरत ही, तू करि दै धैया ॥
ग्वालनि की सरि दुहत हौं, बूझहु बलभैया ।
"सूर" निरखि जननी हँसी, तब लेति बलैया ॥

४. राजभोग

काल भोजन का—

जेंवत स्याम नंद जू की कनियाँ ।
कछुक खात, कछु धरनि गिरावत, छबि निरखति नंद-रनियाँ ॥
बरी-बरा बेसन बहु भाँतिन, व्यंजन विविध अगनियाँ ।
आपुन खात नंदमुख नावत, यह सुख कहत न बनियाँ ॥
डारत, खात, खवावत ग्वालन, कर माखन दधि दोनियाँ ।
सद माखन मिश्री मिश्रित करि, मुख नावत छबि धनियाँ ॥
जो सुख नंद-जसोदा विलसत, सो नहिं तीन भुवनियाँ ।
भोजन करि अचवन जब कीनों, माँगत "सूर" जुठनियाँ ॥

ा काल छाक का—

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई ।
टेरि-टेरि हौं भई बावरी, दोउ भैया तुम रहे लुकाई ॥
जे सब ग्वाल गये घर-घर कों, तिनसों कहि तुम छाक मँगाई ।
लोंनी दधि मिष्टान्न जोरि कैं, जसुमति मेरे हाथ पठाई ॥
ऐसी भूख माँझ तू लाई, तेरी किहि विधि करों बड़ाई ।
'सूर' स्याम सब सखन पुकारत, आवत क्यों न छाक हू आई ॥

* केवल पुष्टि संप्रदाय में ही भगवत्स्वरूप उष्ण जल से बारहों मास न
ते हैं । अन्य संप्रदायों में उन्हें बारहों मास ठंडे जल से न्हवाया जाता

राजभोग सन्मुख का—

चक्र के धरनहार, गरुड़ के असवार,
नंद के कुमार मेरौ संकट निवारौ ।
यमला-अर्जुनहिं तारचौ, गज ग्राह तें उबारचौ,
नाग कौ नाथन हार, मेरौ प्रान प्यारौ ॥
गिरिवर कर धारचौ, इंद्र हू कौ गर्व गारचौ,
ब्रज के रखन हार, बिरद बिचारौ ।
द्रुपद सुता की बेर, नैक हू ना कीनीं देर,
अब क्यों अबेर, "सूर" सेवक तिहारौ ॥

५. उत्थापन

बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ ।
जब तें आजु नंदनंदन छबि, बार-बार करि पेख्यौ ॥
नख,अँगुरी,पग, जानु,जंघ, कटि, रचि कीन्हों निरमान ।
हृदय, बाहु, कर, हस्त, अंग-अँग, मुख अति सुंदर बान ॥
अधर, दसन, रसना, रस बानी, स्रवन, नैन अरु भाल ।
"सूर" रोम प्रति लोचन देतौ, देखत बनै गोपाल ॥

६. संध्या-आरती

(१) वह देखौ नंद कौ नंदन आवत ।
वृंदावन तें गाय चराय कै, कर धर बैनु बजावत ॥
सुंदर स्याम कमल दल लोचन, जसुदा के जिय भावत ।
कारी, धौरी, धुमरी, पियरी, लै-लै नाम बुलावत ॥
बाल-गोपाल सखा संग लीने, पतुचन दूध पिवावत ।
"सूरदास" प्रभु वेग धरत पग, जुवती प्रेम बढ़ावत ॥

(२) जसोदा मैया काहै न मंगल गावै ।
पूरन ब्रह्म सकल अविनासी, ताकौ गोद खिलावै ॥
कोटि-कोटि ब्रह्मांड कौ कर्त्ता, मुनि जन जाकों ध्यावै ।
ना जानों यह कौन पुन्य तें, तेरी धेनु चरावै ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, जप-तप ध्यान न आवै ।
सेष-सहर्स मुख रटत निरंतर, हरि कौं पार न पावै ॥
सुंदर बदन कमल-दल लोचन, गोधन के संग धावै ।
करत आरती मात जसोदा, "सूरदास" बलि जावै ॥

८. शयन

ब्यारू का—

माखन रोटी लेउ कान्ह बारे ।
ताती रुचि उपजावत, त्रिभुवन के उजियारे ॥
और लेउ पकवान मिठाई, मेवा बहु बिधि सारे ।
औंट्यौ दूध सद्य मधुर घृत रुचि सों खाउ मेरे प्यारे ॥
तब हरि उठिकें करी बयारू, भक्तन प्रान पियारे ।
'सूरदास' प्रभु भोजन करिकें सुचि जल सों वदन पखारे ॥

शयन के दर्शन का—

कुंडल मंडित कपोल, अति लोल डोलनि, बडरे नैन चपल सजल सरस भरे
नासा सुक वर सुढाल,अधर बिंब बिच प्रवाल,हसन दसन लसनि मानौ फूल झरे
कबु कंठ मुक्त-माल,नगन जटित पदक लाल,कंठ बाँह भुज मृनाल,सखा अंस धरे
नाभि नलिन कीर छोर, पाइन ज्वलत चटक-मटक, चरन कमल, चित्त
'सूर' बिनती करे ॥

पौढ़ने का—

(१) गिरिधरन सैन कीजे आय ।
चाँदनी यह घटत नाहीं, कहत जसोदा माय ॥
खेल सोई खेलियें बलि, जो तुमहीं सुहाय ।
जो खेल में तेरें चोट लागे, सो खेल देहु बहाय ॥
खेलि मदन गोपाल आये, जननी लेति बलाय ।
पियौ दूध तुम धौरी धेनु कौ, सुख कर हू माखन खाय ॥
स्वच्छ सेज सुगंध बहु बिधि, लाल पौढे आय ।
मदनमोहन लाल के 'सूर' चरन चांपत माय ॥

(२) सोवत नींद आय गई स्यामहिं ।
महरि उठी पौढाय दुहन कों, आपन लगी गृह कामहिं ॥
बरजत है घर के लोगन कौ, हरुवे लै-लै नामहिं ।
गाढ़े बोल न पावत कोऊ*, डर मोहन बलरामहिं ॥
सिव सनकादिक अंत नहिं पावत, ध्यावत हैं दिन-यामहिं ।
'सूरदास' प्रभु ब्रह्म सनातन, सो सोवत नंद-धामहिं ॥

---

* यह सांप्रदायिक परिपाटी आज भी श्रीनाथ जी प्रभृति के यहाँ प्रचलित है

वर्षोत्सव विधि—नित्य-सेवा विधि के अतिरिक्त आचार्य जी ने सेवा-मार्ग में वर्षोत्सव विधि का भी समावेश किया है। श्रीकृष्ण के नित्य और अवतार लीलाओं के वर्ष भर के उत्सव तथा षट् ऋतुओं के उत्सवों का इसमें प्राधान्य है। इन्हीं उत्सवों के साथ यह समग्र जगत् ईश्वर कृत होने से सत्य है। इस सिद्धांत के आधार पर लोक-त्यौहारों को भी स्थान दिया गया है। इसी प्रकार ब्रह्म-भावना के माहात्म्य-ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए वैदिक पर्व तथा भक्ति प्राधान्य कृष्ण के अन्य अवतारों की जयंती आदि को भी इस सेवा मार्ग में स्वीकार किया गया है। इन सब का परिचय इस प्रकार है—

नित्य एवं अवतार लीलाओं के उत्सव—संवत्सर, गनगौर, अक्षय तृतीया, रथयात्रा, पवित्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, दान, सांझी, नवरात्रि, रास, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।

षट् ऋतुओं के उत्सव—बसंत ऋतु का उत्सव डोल, ग्रीष्म ऋतु का उत्सव फूल-मंडली, वर्षा ऋतु का उत्सव हिंडोरा, शरद ऋतु का उत्सव रास (द्वितीय दिन का), हेमंत ऋतु का उत्सव देव प्रबोधिनी का जागरण, शिशिर ऋतु का उत्सव होली।

लोक त्यौहार—रक्षा बंधन (ब्राह्मणों का) दशहरा (क्षत्रियों का) दिवाली (वैश्यों की) होली (शूद्रों की) इत्यादि।

वैदिक पर्व—मकर संक्रांति, ज्येष्ठाभिषेक आदि।

अन्य अवतारों की जयंतियाँ—राम जयंती, नृसिंह जयंती, वामन जयंती।

इन उत्सवों में आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति तथा व्यसन रूप परकीय भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। त्यौहार और वैदिक पर्वों में लोक-भावना और वेद की ब्रह्म-भावना का आधार लिया गया है। लोक-भावना वाले त्यौहारों का समावेश बाल-भावना में तथा ब्रह्म भावना वाले पर्वों का समावेश माहात्म्य ज्ञान से संबंधित स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति में हो जाता है।

इन उत्सवों की भावनाएँ सूरदास के निम्न लिखित पदों से जानी जा सकती हैं—

१ **संवत्सर**—(चैत्र शु० १) "चक्र के धरन हार गरुण के असवार" यह माहात्म्य ज्ञान वाला पूर्वोक्त पद उपलब्ध है। भक्ति का हेतु माहात्म्य ज्ञान होने से इसका गान नये वर्ष के प्रारम्भ में होता है। इससे भक्ति रूप 'संवत्सर की सरस लीला' में जीव को अधिकार प्राप्त होता है।

२. गनगौर—(चैत्र शु० ३) यह ब्रज की कन्याओं का त्यौहार है श्री राधिका प्रभृति ने जिस प्रकार 'नंद-सुत हमारे पति हों' इस मनोरथ सिद्धि के लिये मार्गशीर्ष और पौष में व्रतचर्या कात्यायनी और भद्रकाली आराधना की थी, इसी प्रकार चैत्र में गनगौर के रूप में ब्रज की आध्यात्मि शक्ति रूपा 'गौरी' की पूजा है। 'कौन गौर तें पूजी राधा' आदि अष्टछाप परमानंददास के कई पद इस विषय के उपलब्ध हैं। सूरदास का पद इ विषय का उपलब्ध नहीं होता है। फिर भी निम्न लिखित पद से उक्त बा की पुष्टि होती है—

सिव सों बिनय करति कुमारि।
सीत भीतर जोरि कर सुख स्तुति करत त्रिपुरारि॥
व्रत संयम करति सुंदरि कृस भई सुकुमारि।
'छैहौ ऋतु तप करति नीके', गृह कौ नेह बिसारि॥
ध्यान धरि कर जोर लोचन, मूंदिक एक-एक याम।
विनय अंचल छोरि रवि सों, करति हैं सब बाम॥
हमहिं होउ कृपालु दिनमनि, तुम विदित संसार।
काम अति तनु दहत, दीजै 'सूर' स्याम भरतार॥

इसमें 'छैहौ ऋतु तप करति नीके' वाले कथन में चैत-वसंत ऋतु क गनगौर आराधना का भी समावेश हो जाता है।

३. अक्षय तृतीया—(वैशाख शु० ३) नित्य लीला उत्सव है—

(१) आजु बने नंदनंदन री, नव चंदन अंग अरगजा लाये।
उरकत हार सुढार जलज मनि, गुंजत अलि अलकन समुदाये॥
पीत बसन तन बन्यौ पिछौरा, टेढ़ी पाग तोर लटकाये।
अक्षय तृतीया, अक्षय लीला, अक्षय 'सूरदास' सुख पाये॥

(२) कैसे कैसे आये हो पिय, ऐसी दुपहरी तपन में।
भवन बिराजो बिजना दुराऊँ, स्रम झलकत सगरी देहन में॥
स्रम निवारिऐ, अरगजा धारिऐ, जिय तें टारिऐ और संदेह।
चतुर सिरोमनि याही तें कहियत, 'सूर' सुफल करो नेह॥

४. रथ यात्रा—(आषाढ़ शु० २) इस उत्सव का प्रचलन संप्रदाय गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था। इसका प्रधान संबंध श्री कृष्ण क द्वारका-लीला से है। फिर भी इसमें ब्रज की बाल तथा किशोर भावनाओं क भी इस प्रकार स्थापित किया गया है—

बाल-भावना से—

देखो माई रथ बैठे हरि आजु ।
आगें 'ब्रज जन सखा स्यामघन' सबै मनोहर साजु ।।
हाटक कलसा, धुजा पताका, छत्र-चँवर सिरताज ।
चपल अस्व चालहिं अति चलिहैं,देखि पवन मन लाज ।।
आषाढ़ सुदी दुतिया 'नक्षत्र पुष्य' अचल नंदसुत राज ।
'सूरदास' हरषत ब्रजबासी, रह्यौ घोष सिरताज ।।

किशोर-भावना से—

देखो माई रथ बैठे गिरिधारी ।
छतरी अनुपम हाटक जराव की, झूमक-लर मुक्तारी ।।
गादी सुरंग ताफता सुंदर, फेरि बाज छबि न्यारी ।
डोरी दिव्य पाट पचरंग की, कर गहे 'कुंज बिहारी' ।।
चपल अस्व वर चलत हंस गति,बुधि नहिं परति बिचारी ।
लाल पाग सिर लाल छबि कर,जुही-माल गल भारी ।।
नीलमनी तन कमल नैन कौं सोहैं पीत पट धारी ।
बिहरत ब्रज-बीथिन बृंदाबन, 'गोपीजन' मनुहारी ।।
देखि-देखि फूले ब्रजबासी, सुख की रासि अपारी ।
कुसुमावलि बरषत इंद्रादिक, 'सूरदास' बलिहारी ।।

द्वारका-लीला के भाव से—

वा पट पीत की फहरानि ।
कर गहि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरत वह बानि ।।
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच-रज की लपटानि ।
मानौं सिंधु सैल तें निकस्यौ, महा मत्त गज जानि ।।
'जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि बेद की कानि' ।
'सोई अब 'सूर' सहाय हमारे, निकट भए प्रभु आनि' ।।

५. पवित्रा—(श्रा० शु० ११) यह नित्य-लीला तथा बल्लभ-लीला का उत्सव है । श्रा० शु० ११ को अर्धरात्रि को साक्षात् पुरुष प्रकट होकर श्रीगोकुल के ठकुरानी गोविंद घाट पर श्री बल्लभाचार्य ब्रह्म संबंध का उपदेश दिया था[२] । तब आचार्य जी ने नित्य लीला के

---

१. मर्यादा के उल्लंघन को ही पुष्टि कार्य कहा गया है, इसलिए यह पुरुषोत्तम का वर्णन है ।

२. श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि ।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ।। (सि० र०

पुरुषोत्तम को पवित्रा धराया था। तब से यह उत्सव प्रति वर्ष सम्प्रद
ाया जाता है।

रदास के निम्न लिखित पद में उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

पवित्रा पहरन कौ दिन आयौ।
केसर कुमकुम रंग रस बागौ, फुँदना हार बनायौ॥
जै-जैकार होत बसुधा पर, सुर-मुनि मंगल गायौ।
पहरि पवित्रा लिऐं नंदसुत, "सूरदास" जस गायौ॥

. जन्माष्टमी—(भाद्र० कृ० ८) यह कृष्णावतार लीला का उत
रदास ने अनेक पदों में अनेक प्रकार से इसका वर्णन किया है।
का एक पद यहाँ दिया जाता है—

आज गृह नंद-महिर के बधाई।
प्रात समै मोहन मख निरखत, कोटि चंद छबि छाई॥
मिलि ब्रज-नारी मंगल गावति, नंद-भवन में आई।
देति असीस जियौ जसुमति सुत, कोटि बरीस कन्हाई॥
नित आनंद बढ़त वृंदाबन, उपमा कही न जाई।
"सूरदास" धन्य धन्य नंदरानी, देखत नैन सिराई॥

राधाष्टमी—(भा० शु० ८) यह राधिकावतार लीला का उत्सव
ास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

आज वृषभान के आनंद।
बदन प्रभा ऐसी लागत, मानों प्रगट्यौ पूरन चंद॥
एक जूथ बधावत गावत, एक सुनावत हेल।
सुनि सब नारि बधाई आई, अपुने-अपुने मेल॥
जो आवत सो करत न्यौछावरि, तृन तोरत बलि जात।
परम भाग दंपति कहियत है*, फूली अंग न समात॥
अपुने-अपुने मन कौ भायौ भयौ, कहत सब लोग।
"सूरदास" प्रगटी भू ऊपर, भक्तन के हित जोग॥

८ दान—(भाद्र० शु० ११) यह नित्य लीला और कृष्णावतार ल
त्सव है। इस लीला के सूरदास के असंख्य पद मिलते हैं। उनमे से
हाँ दिया जाता है—

---

* स्वकीय भावना

गढ़ तें ग्वालिन उतरी हो, सीस मही की माट ।
आड़ौ कन्हैया ह्वै रह्यौ सोतौ, रोकत ब्रजवधू बाट ॥ मोहन जा
कहाँ की हो तुम ग्वालिनी हो, कहा तिहारौ नाम ।
बरसाने की ग्वालिनी सोतौ, चंद्रावलि मेरौ नाम ॥ मोहन०
वृंदाबन की कुंज में हो, अचरा पकरयौ दौरि ।
नाम दान कौ लेत हो, लाल चाहत हो कछु औरि ॥ मोहन०
मेरे संग की दूरि गई हो, तुम रोकी बन माँझ ।
घर तौ दारुन सास है सोतौ, होन लगी है साँझ ॥ मोहन०
तुम एकेले हम अकेलीं, बात नहीं कछु जोग ।
तुम तौ चतुर प्रवीन हो, लाल कहा कहेंगे लोग ॥ मोहन०
तुम ओढ़ी है चूनरी हो, हम पहरयौ है चीर ।
उमड़ घुमड़ आई बादरी, अब कहा बरषावत नीर ॥ मोहन०
लै मटुकी आगै धरी हो, परी हैं स्याम के पाँय ।
मन भावै सो लीजिये, लाल बचै सो बेचन जाँय ॥ मोहन०
प्रेम मगन भई ग्वालिनी हो, हरि कौ दरसन पाय ।
मुख सों बचन न आवही, सो तौ रही ठगोरी लाय ॥ मोहन०
सुख बाढ़यौ आनंद भयौ हो, रही स्याम-गुन गाय ।
सुंदर सोभा देखिकै, "सूरदास" बलि जाय ॥ मोहन जा

९. साँझी—(भाद्र० शु० १५ से), यह नित्य और अवर उत्सव है ।

सूरदास के एक पद में इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है—

सखियन संग राधिका बीनत, सुमनन बन माँह
साँझी पूजन कों आतुर ही, ठाड़े कदंब की छाँह ।
सखी भेष दै मोहन कों, लै चली आपुने गेह
पूछी कीरति, यह को सुंदरि ? तब कह्यौ मेरी सनेह ।
साँझी खेल बिदा करि सब कों, दोउ पौढ़े सेज सँभार
सगरी राति "सूर" के स्वामी, ब्रसि सुख कियौ अपार ।

१०. नवरात्रि देवी-पूजन—(आश्विन शु० १ से ६ तक) लीला का उत्सव है । सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है

व्रत धरि देवी पूजो । जाके मन अभिलाष न दूजो ।
कीजै नंद-पुत्र पति मेरे । पैहों जो अनुग्रह तेरे ।

कर अनुग्रह बर दियौ, जब बरस भर लौं तप कियौ ।
त्रैलोक सुंदर पुरुष - भूषन, रूप नाहिंन बियौ ॥
इत उबटि सोलह सिंगार सखियनि, कुँवरि चौरी जहाँ बनी ।
जा हित किये व्रत-नेम-संयम, सो घरी विधिना ठनी ॥
मुकुट रचि मोर बनायौ । माथें धरि हरि बर आयौ ॥
तन साँवल पीत दुकूले । देखतही घन दामिनि भूले ॥
दामिनी घन कोटि वारों, जब निहारों मुख छवि ।
कुंडल बिराजत गंड मंडन, नहीं सोभा ससि-रवि ॥
और कौन समान त्रिभुवन, सकल गुन जा माँहि है ।
मानों मोर नाँचत, संग डोलत मुकुट की परछाँहि है ॥
गोपी सब न्यौते आईं । मुरली धुनि पठै बुलाईं ॥
जहाँ सब मिलि मंगल गाये । नव फूलन मंडप छाये ॥
छाये जु फूलन कुंज-मंडप, पुलिन में वेदी रची ।
बैठे जु स्यामा-स्याम बर, त्रैलोक्य की सोभा सची ॥
उत कोकिला गन करें कुलाहल, इत सबें ब्रज-नारियाँ ।
आईं जु न्यौते दुहू दिसि तें, देत आनंद गारियाँ ॥
रास मंडल भुज जोरी । स्याम साँवरे श्री राधा गोरी ॥
पानिगृहन-विधि कीनीं । तब मंडप भ्रमि भाँवर दीनीं ॥
दीनीं जु भाँवर कुंज मंडप, प्रीति गाँठ हृदय परी ।
सरद निस पून्यौ बिमल ससि, निकट वृंदा सुभ घरी ॥
गाये जु गीत पुनीत सखियन, बेद-रुचि मंगल ध्वनी ।
नंद - सुत वृषभान - तनया, रास में जोरी बनी ॥
जहाँ मन्मथ बैन बराती । तहाँ द्रुम फूले नाना भाँती ॥
सुर बंदीजन जस गाये । तहाँ मघवा वाजित्र बजाये ॥
वाजित्र बाजे सब्द नभ सुर, पुष्प अंजलि बरष ही ।
देव व्यौम विमान बैठे, जय शब्द करिकैं हरष ही ॥
''सूरदास''हि भयौ आनंद, पूजी मन की साधिका ।
मदनमोहन लाल दूल्हे, दुलहनी श्री राधिका ॥

१. रास—(आश्विन शु० १५) यह नित्य और अवतार लीला है । सूरदास के पदों में इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है—

हा हा हो हरि नृत्य करो ।
जैसे कै मैं तुमहि रिझाऊँ, त्यों मेरो मन तुम हू हरो ॥

तुम जैसे स्रम बाहु करत हो, तैसे मैं हू डुलाऊँगी ।
मैं स्रम देखि तिहारे उर कों, भुज भरि कंठ लगाऊँगी ।।
मैं हारी त्योंही तुम हारे, चरन चाँपि स्रम मेटोंगी ।
'सूर' स्याम ज्यों उछंग लेहु मोहि, त्योंही हँसि मैं भेटोंगी ।।

घोष—नागरी मंडल मध्य नाँचत गिरिधारी लाल,
लेत गति अनेक भाँति चरन पटकनी
गिडगिडता गिडगिडता ताता तत ततत्तत थेई थेई,
बीच बीच अधर मधुर मुरलिका मटकनी
भुज सों भुज जोरि जोरि, लेत तान नव किसोर,
गावत श्रीराग मिलि ग्रीव लटकनी
"सूरदास" प्रभु सुजान, नंदनंदन कुंवर कान्ह,
मदनमोहन छबि निरखि काम सटकनी

१२. अन्नकूट—(का० शु० १) यह उत्सव श्रीकृष्ण की अवता का है । सूरदास ने इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है—

अपने - अपने टोल कहत ब्रजबासियाँ ।। टेक ।।
सरद कुहू निस जानि दीपमालिका जो आई ।
गोपन मन आनंद फिरत उनमद अधिकाई ।।
एपन थापे दीजिये, घर - घर मंगल - चार ।
सात बरस को साँवरो, हो खेलत नंद द्वार ।। कहत०
बैठे नंद - उपनंद बोलि वृषभान पठाये ।
सुरपति पूजा जानि तहाँ चलि गोविंद आये ।।
बार - बार हा हा करें, कहो बाबा यह बात ।
घर - घर गोरस संचिए, कौन देव की जात ।। कहत०
कान्ह तुम्हारी कुसल जानि यह मंत्र उपेहैं ।
खटरस व्यंजन साज भोग सुरपति कों देहैं ।।
नंद कह्यौ चुमकार कै, जा दामोदर सोय ।
बरस द्यौस कौ द्यौस है, महा महोत्सव होय ।। कहत०
तब हँसि बोले लाल मंत्र बहोरयौ फिर कीनों ।
आदि पुरुष निज जानि रैन सुपनौ मोहि दीनों ।।
सब देवन कौ देवता, गिरि गोवर्धन राज ।
ताहि भोग किन दीजिये सुरपति कौ कहा काज कहत०

बाढ़ै गोधन बृंद, दूध दधि कौ कहा लेखो।
यह परचौ विद्यमान, नैंन अपने किन देखौ।।
तुम देखत बलि खायगौ, मुह मांग्यो फल देय।
गोप कुसल जो चाहिए, तो गिर गोवर्धन सेय।। कहत०
गोपन कियौ विचारि, सबनि मिलि सकट जो साजे।
बहु बिधि करि पकवान, चले जहाँ बाजत बाजे।।
एक बनही बन कों चले, एक नंदी सुर भीर।
एकन पैंडो पावही, फूले फिरत अहीर।। कहत०
एक उबट ह्वै चले, एक बन ही बन छाये।
एक गावें गुन गोविंद, प्रेम उमंगे न समाये।।
गोपन कौ सागर भयौ, गिरि भयौ मंदरा चार।
रत्न भई सब गोपिका, कान्ह बिलोवन हार।। कहत०
व्रज चौरासी कोस, परे गोपन के डेरा।
लंबे चौबन कोस, जहाँ व्रज-वास बसेरा।।
सबहिन के मन सांवरो, देखियत सबन मँझार।
कौतुक भूले देवता, आये लोक बिसार।। कहत०
लीन्हे विप्र बुलाय, जग्य आरंभन कीन्हौ।
सुरपति-पूजा मेटि, राज गोवर्धन दीन्हौ।।
दिवस दिवारी प्रात ही, सब मिलि पूजे जाइ।
नंद प्रतीत जो चाहिए, तौ तुम देखत बलि खाइ।। कहत०
प्रथम दूध अन्हवाइ, बहुरि गंगाजल डार्यौ।
बड़ौ देवता जानि, कान्ह कौ मतौ विचार्यौ।।
जैसे हैं गिरिराज जू, तैसौ अन्न कौ कोट।
मगन भए पूजा करें, नर-नारी बड़-छोट।। कहत०
सहस भुजा कर धरैं, करैं भोजन अधिकाई।
नख-सिख लों अनुहारि, मनों दूसरौ कन्हाई।।
राधा सों ललिता कहै, चलहु देखियैं जाइ।
गहे अंगुरिया नंद की, सो ढोटा पूजा-खाय।। कहत०
पीत दुमालौ बन्यौ, कंठ मोतिन की माला।
सुंदर सुभग सरीर, झलमले नैन बिसाला।।
स्याम की सोभा गिरि भयौ, गिरि की सोभा स्याम।
जैसैं परबत भात कौ, ढिग भैया बलराम।। कहत०

व्यंजन बहुत बनाय, कहाँ लों नाम बखानों।
भयो भात को कोट, ओट गिरिराज छिपानों।।
बरा बिराजै भात पै, चंदा पटतर सोय।
यज्ञ-पुरुष भोजन करै, सो सब देवन सुख होय।। कहत०
जैसी कंचनपुरी जु, दिव्य रतनन सों छाई।
बलि दीन्ही परभात छांह, पूरब चलि आई।।
बदरौला वृषभान की, रही बिलोवन हारि।
ताकी बलि उन देवता, लीनी भुजा पसारि।। कहत०
सब सामग्री अरपि, गोपि-गोपिन कर जोरे।
अगनित कीन्हे खाद, दास बरने कछु थोरे।।
यह बिधि पूजा पूजिकै, गोबिंद के गुन गाइ।
"सूरदास" सब सों कही, लीला प्रगट सुनाइ।। कहत०

१३. गोपाष्टमी—(का० शु० ८) यह उत्सव कृष्ण की अवतार-लीला का है—

आज मैं गाय चरावन जैहों।
बृंदाबन के भाँति-भाँति फल, अपने कर मैं खैहों।।
ऐसी अबहि कहो जिनि बारे! देखो अपनी भाँति।
तनक-तनक पग चलि हो कैसे, आवत ह्वै है राति।।
प्रात जात गैया लै चारनि, घर आवत है साँझ।
तुम्हरो बदन कमल कुम्हलैहै, रेंगत घामहिं माँझ।।
तेरी सों मोहि घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
"सूरदास" प्रभु कह्यौ न मानत, परे आपनी टेक।।

१४—व्रतचर्या—(मार्गशीर्ष कृ० ११ से) यह उत्सव कृष्ण की अवतार-लीला का है—

ब्रज बनिता रवि कों करि जोरें।
सीत-भीत नहिं करति छहों रितु, त्रिविध काल जमुना जल खोरें।।
गौरी-पति पूजति तप साधति, करति रहति नित नेम।
भोग रहित निसि जागि चतुर्दसि, जसुमति सुत के प्रेम।।
हमकों देहु कृष्ण पति ईस्वर, और नहीं मन आन।
मनसा-वाचा-कर्म हमारें, "सूर" स्याम को ध्यान।।

षट ऋतुओं के उत्सव—भिन्न-भिन्न ऋतुओं के उत्सवों का गायन सूरदास ने अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१. **डोल**—(फा० शु० १) यह बसंत ऋतु का उत्सव है—

गोकुलनाथ विराजत डोल ।
संग लिएँ बृषभान नंदिनी पहिरे नील निचोल ॥
कंचन खचित लाल-मनि-मोती, हीरा जटित अमोल ।
झुलवहि जूथ मिलैं ब्रज सुंदरि, हरषत करति कलोल ॥
खेलति हँसति परस्परि गावत, बोलत मीठे बोल ।
"सूरदास" स्वामी पिय प्यारी, झूलत हैं झकझोल ॥

२. **फूल मंडली**—यह ग्रीष्म ऋतु का उत्सव है—

फूलन के महल, फूलन की सेज्या, फूले कुंज बिहारी, फूली राधा प्यारी
फूले वे दंपति नवल मगन फूले, करें केलि न्यारी-न्यारी
फूली लता-बेलि, विविध सुमन फूले, आनन दोऊ हैं सुखकारी
"सूरदास" प्रभु प्यारी पै वारति हरषि, फूले फूल चंपक-बेलि निवारी

३. **हिंडोरा**—(श्रा० कृ० १ से) यह वर्षा ऋतु का उत्सव है—

झूलै माई गिरधर सुरंग हिंडोरें ।
रतन जटित पटुली पर बैठे, नागर नंद किसोरें ॥
पीत बसन घनस्याम मनोहर, सारी सुरंग ही बोरें ।
अंसन बाहु परस्पर जोरें, मंद हसन पिय ओरें ॥
घोष नारि मिलि गावें चहुँ दिस, झुलवति थोरे-थोरें ।
'सूर'प्रभु गिरिधरन लाल छबि,ब्रज जुबतिन चित चोरें ॥

४. **रास**—(आश्विन शु० १५) यह सरद् ऋतु का उत्सव है—

(१) रिझवत पियहि बारंबार ।
निरखि नैन लजाति पिय के, नहीं सोभा-पार ॥
चाल सुलप, गज-हंस मोहति, कोक-कला प्रवीन ।
हँसि परस्पर तान गावति, करत पिय आधीन ॥
सुनत बन-मृग होत व्याकुल, रहत चकित आइ ।
'सूर' प्रभु बस किए नागरि, महा जानिन राय ॥

(२) रीझे परस्पर बर-नारि ।
कंठ भुज-भुज धरे दोऊ, सकत नहिं निरवारि ॥
गौर-स्याम कपोल सुललित, अधर अमृत धार ।
परस्पर दोउ पीय-प्यारी, रीझि लेत उगार ॥
'प्रान एक द्वै देह कीन्हे, भक्ति-प्रीति प्रकास ।
'सूर' स्वामी स्वामिनी मिलि, करत रंग बिलास ॥

जागरण ब्याह—(कार्तिक शु० ११) यह हेमंत ऋतु का उत्सव है—

अहो मेरी प्रान पियारी । भोर ही खेलन कहाँ सिधारी ।
कुमकुम भाल तिलक किन कीनौं । किन मृगमद कौ बेंदा दीनौं ।
बेंदा जु मृगमद दियौ मस्तक, निरखि ससि संसय परयौ ।
सरद निसि कौ कला पूरन, मैन नृप कौ मद परयौ ॥
बिहँसि कै मुख कहति जननी, अलप बेंनी किन गुही ।
"सूर" के प्रभु मोहिबे कौं, रची मनमथ की तुही ॥
नंद महरि की तरुनी सोहै । मेरौ बदन फिरि-फिर कर जोहै ।
खेलत डोलत ढिग बैठारी । कछु मन में आनंद कियौ भारी ॥
आनंद जु मन में कियौ भारी, निरख मुख विह्वल भई ।
बाबा जू कौ नाम लै-लै, तोहि हँसि गारी दई ॥
पाटी जु पार, सँवार भूषन, गोद में मेवा भरी ।
"सूर" के प्रभु निरखि मन में, विधना सौं बिनती करी ॥
सुनि यह बात कीरति मुसकानी । मैं ब्रज रानी के जिय की जानी ॥
मेरी सुता है रूप की रासी । वे तौ कान्ह बनबासी उपासी ॥
कान्ह बनबासी उपासी, रंग-ढंग ये क्यों बनें ।
मेरे ढिग तौ रत्न अमोलक, काँच कंचन क्यों सनें ॥
ललिता बिसाखा सौं कह्यौ, तुम लली तजि कित कूँ गई ।
"सूर" के प्रभु भवन बाहिर, जान दीजो मत कहीं ॥
दिन दस-पाँच अटक जब कीनी । सुंदर स्याम दिखाई दीनी ॥
मुरझि परी तब सुधि न सँवारे । प्यारी डसी भुजंगम कारे ॥
कारे भुजंगम डसी प्यारी, गारुड़ी हारे सबै ।
नंदनंदन मंत्र बिन सखि, विष क्यों हू ना दबै ॥
मनुहार करि मोहन कों लाई सकल विष देखत हृये ।
"सूर" के प्रभु और अविचल जोवो जुग-जुग दोउ बने ।

ठि बैठी तब बदन सँभारे। कछु मोहन तन हँसत निहारे।
रि बैठी मन भयौ हुलासा। कीर्ति गई अपने पति पासा।
अपने जु पति पै गई कीर्ति, प्रीत की रीति बिचार हीं।
मंत्र कीयौ ब्याह कौ, सब सखी मंगल गावहीं॥
वृंदा जु बन में रच्यौ स्वयंवर, पुष्प मंडप छाइयौ।
"सूर" के प्रभु स्याम दूल्हे, श्री राधिका बर पाइयौ॥
वधिना बिधि सब कीनी। मंडप करिकै भाँवर दीनी
बबिध कुसुम बरसाये। तहाँ भामिनी मंगल गाये
गावें जु भामिनी मिलि कै, मंगल कहत कंकन छोरियौ।
नहीं होय यह गिरि उचक लेवो लाल हँसि मुख मोरियौ॥
छोरियौ न छूटै डोरना यह, प्रीति-रीति ग्रंथो कही।
"सूर" के प्रभु जुवति-जन मिलि, गारी मन भावति दई॥

६. **होली**—(फाल्गुन सु० १५) यह शिशिर ऋतु का उत्सव है।

सौंधे की उठति झकोर, मोहन रंग भरे।
चोबा चंदन अगरु कुमकुमा, सोहैं माट भरे॥
रतन जटित पिचकारी कर गहे, बालक वृंद खरे।
भरि पिचकारी प्रेम सौं डारी, सो मेरे प्रान हरे॥
सब सखियन मिलि मारग रोक्यौ, जब मोहन पकरे।
अंजन आँजि दियौ अँखियन में, हा-हा कर उबरे॥
फगुवा बहुत मँगाइ साँवरे, कर जोरे अरज करे।
धनि-धनि 'सूर' भाग ताके, प्रभु जाके संग बिहरे॥

लोक-त्यौहार—सूरदास ने लोक-त्यौहारों का वर्णन अपने पदो
प्रकार किया है—

१. **रक्षाबंधन**—(श्रावण सु० १५) यह मुख्य रूप से ब्राह्मणों
ौहार माना जाता है।

राखी बँधावत मगन भए।
दच्छिना बहुत द्विजन कों दीनीं, गोप हँकार लए॥
कुंज-निकुंज श्री वृंदाबन के, बिहरत अनंत ठए।
नाँचत, गावत, करत कुलाहल, उपजत मोद नए॥
यह कौतुक देखत सुर-नर-मुनि, बरषत कुसुम छए।
"सूरदास" राधा-ललितादिक, देखत ओट दए॥

२. **दशहरा**—(आश्विन शु० १०) यह मुख्य रूप से क्षत्रियों का त्यौहार माना जाता है।

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु पारा ।
सेस के सीस लागे कमठ पीठ सों, धँसे गिरिवर सबै तासु भारा ॥
लंक गढ़ माँहि आकास मारग गयौ, चहूँ दिसि बज्र लागे किवारा ।
पौरि सब देखि सो असोक बन में गयौ, निरखि सीता छिप्यौ बृच्छ-डारा ॥
सोच लाग्यौ करन कहाँधौं जानकी, कोउ या ठौर नहिं मोहिं चिन्हारा ।
'सूर' आकास-बानी भई तबै तहँ, इहैं बैदेहि है करु जुहारा ॥

३ **दीपावली**—(कार्तिक कृ० १५) यह मुख्य रूप से वैश्यों का त्यौहार माना जाता है—

आजु दीपति दिव्य दीप - मालिका ।
मनहु कोटि रवि, कोटि चंद छवि, मिटि जु गई निसि कालिका ॥
गोकुल सकल चित्र - मनि मंडित, सोभित झाक झल झालिका ।
गज - मोतिन के चौक पुराये, बिच - बिच लाल प्रवालिका ॥
बर सिंगार बिरचि राधा जू, चलीं सकल ब्रज - बालिका ।
झलमल दीप समीप, सौंज भरि लेकर कंचन थालिका ॥
करिकै प्रगट मदनमोहन पिय, थकित बिलोकि बिसालिका ।
गावत हँसत, गवाय हँसावत, पटक - पटक कर तालिका ॥
नंद भवन आनंद बढ़्यौ अति, देखत परम रसालिका ।
"सूरदास" कुसुमन सुर बरसत, कर संपुट करि मालिका ॥

४. **हटरी**—

सुरभी कान्ह जगाय खरिकहिं, बल-मोहन बैठे राजत हटरी ।
पिस्ता, दाख, बदाम, छुहारे, खुरमा, खाजा, गूँझा, मठरी ॥
घर-घर तें नर-नारि मुदित मन, गोपी-ग्वाल जुरे बहु ठटरी ।
टेर - टेर जब देत सबन कौं, लै - लै नाम बुलाय निकट री ॥
देति असीस सकल गोपीजन, जसुमति देति हरषि बहु पट री ।
'सूर' रसिक गिरिधर चिरजीवो, नंद-महरि कौ नागर नट री ॥

५. **होली**—(फाल्गुन शु० १५) यह मुख्य रूप से शूद्रों का त्यौहार माना जाता है। उदाहरण पहले आ चुका है।

वैदिक पर्व—सूरदास ने वैदिक पर्वों का वर्णन अपने काव्य में इ
८ किया है—

१. **मकर संक्रांति**—(गेंद के भाव का)—

ग्वालिन ! तैं मेरी गेंद चुराई ।
खेलत आन परी पलका बिच, अँगिया माँझ दुराई ।।
भुज पकरत मेरी अँगिया टटोवत, छूवत छतियाँ पराई ।
"सूरदास" मोहि यही अचंभो, एक गई द्वै पाई ।।

२. **ज्येष्ठाभिषेक-स्नान-यात्रा**—(जल-विहार के भाव का)—

जमुना जल गिरिधर करत विहार ।
आस-पास जुबती मिलि छिरकति, हँसति कमल मुख चारु ।।
काहू की कंचुकी बंद टूटे, काहू के टूटे हार ।।
काहू के बसन पलट मनमोहन, काहू अंग न सँवार ।।
काहू की खुभी, काहू की नकबेसरि, काहू के बिथुरे बार ।।
"सूरदास" प्रभु कहाँ लौं बरनौं, लीला अगम अपार ।।

अन्य अवतारों की जयंतियाँ—भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य २
ार माने गये हैं। इनमें भक्तिमार्ग से संबंधित केवल चार अवतार प्रधा
-राम, नृसिंह, वामन और कृष्ण । इन चारों ने भक्तों के उद्धार के क
-कार्य किये हैं; इसलिए इन चारों की जयंतियाँ पुष्टिमार्ग में मना
ी हैं ।

सूरदास ने इन जयंतियों का वर्णन अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१. **राम जयंती**—(चैत्र शु० ६)

आज दसरथ के आनंद भीर ।
आये भुव-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम सरीर ।।
फूले फिरत अजोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर ।
परिरंभन हँसि देत परसपर, आनंद नैननि नीर ।।
त्रिदस नृपति रिषि व्योम बिमाननि, देखत रहें न धीर ।
त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै, हरी सबन की पीर ।।
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर ।
भये निहाल "सूर" सब जाचक, जे जाचे रघुबीर ।।

२ **नृसिंह जयंती**—(चैत्र शु० १४)

तब लगि हौं बैकुंठ न जैहौं ।
सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, जब लगि तव सिर छत्र न दैहौं ।।

मन-बच-कर्म जानि जिय अपने, जहाँ-जहाँ जन तहँ-तहँ ऐहो
निर्गुन - सगुन होइ सब देख्यौ, तौ सो भक्त मैं कबहू न पैहो
मो देखत मेरौ दास दुखित भयौ, यह कलंक अब ही जु चुकैहों
हृदय कठोर कुलिस तें मेरौ, अब नहिं दीनदयालु कहैहो
गहि तन हिरनकसिपु कों चीरों, फारि उदर तिहिं रुधिर बहैहो
यह हित मनें कहति "सूरज" प्रभु, इहिं कृति कौ फल तुरत चखैहो

३. वामन जयंती—

द्वारें ठाढ़े हैं द्विज बावन ।
चारों वेद पढ़त मुख आगर, अति सुकंठ सुर गावन ॥
बानी सुनि बलि पूछन लागे, इहाँ विप्र कत आवन ।
चरचित चंदन नील कलेवर, बरषत बूंदनि सावन ॥
चरन धोइ चरनोदक लीन्हों, कह्यौ माँगु मन भावन ।
तीनि पेंड़ बसुधा हौं चाहौं, परनकुटी कों छावन ॥
इतनौ कहा विप्र ! तुम माँग्यौ, बहुत रतन देउँ गाँवन ।
"सूरदास" प्रभु बोलि छले बलि, धरचौ पीठि पद पावन ॥

४. कृष्ण जयंती—(भाद्रपद कृ० ८)

देखौ अद्भुत अविगत की गति, कैसौ रूप धरचौ है ।
तीन लोक जाके उदर बसत हैं, सो तौ सूप के कौन धरचौ है ॥
जाके नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग व्रत साध्यौ ।
ताको नाल छीनि ब्रज-जुवती, बाँटि तगा सों बाध्यौ ॥
जिहिं मुख कों समाधि सिव साधी, आराधन ठहराने ।
सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध - लार लपटाने ॥
जिनि स्रवनन जन की बिपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै ।
तिनि स्रवनन ह्वै निकट जसोदा, हलरावै और गावै ॥
बिस्व - भरन - पोषन सब समरथ, माखन काज अरे हैं ।
रूप बिराट कोटि प्रति रोमनि, पलना माँझ परे हैं ॥
जिहिं भुज बल प्रहलाद उबारचौ, हिरनकसिपु उर फारे ।
सो भुज पकरि कहति ब्रज-नारी, ठाढ़े होहु लला रे ॥
जाको ध्यान न पायौ सुर-मुनि संभु समाधि न टारी
सोई सूर प्रगट या ब्रज में गोकुल गोप बिहारी ।

सेवा के विविध अंग—पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रधान अंग तीन हैं—भोग, राग और शृंगार । प्रत्येक मनुष्य का जीवन इन तीन विषयों से सदा सर्वदा येन केन प्रकारेण संबंधित रहता ही है, इसलिए श्री वल्लभाचार्य जी ने इन तीनों विषयों को भगवान् की सेवा में लगा कर इनको भी भगवद्रूप कर दिया है । श्रीकृष्ण से संबंधित इन विषयों के कारण प्रत्येक व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुए भी जीवन-मुक्त हो सकता है । श्रीमद्भागवत में कहा है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौविदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ।। (१०-२९-१५)

अर्थात्—काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृदभाव । इनमें से कोई भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय, तो वह लौकिक रूप छोड़ कर ईश्वर मय होता है । इसी आधार पर आचार्य जी ने काम स्वरूप उक्त भोग, राग और शृंगार को श्रीकृष्ण की सेवा में लगा कर उन्हें इस प्रकार से भगवद्रूप कर दिया है । यहाँ पर इन तीनों का कुछ परिचय दिया जाता है—

१. **भोग**—खान-पानादि के उत्तमोत्तम पदार्थों को सुंदर प्रकार और शुद्ध रूप से तैयार कर बाल-किशोर भावनानुसार इन्हें विधि पूर्वक श्रीकृष्ण को समर्पित करना 'भोग' कहलाता है । समर्पित हो जाने के अनंतर इसे 'प्रसाद' कहते हैं । इससे भक्त अपना जीवन-निर्वाह कर सकता है । इस प्रकार के निर्वाह मात्र से वह सहज में दुर्जय माया को भी पार कर जाता है । उद्धवजी श्रीमद्भागवत के ११ वें स्कंध में श्रीकृष्ण के प्रति कहते हैं कि—

"उच्छिष्ट भोजिनोदासास्तव मायां जयेमहि ।"

इस आधार पर आचार्य जी ने सेवा में भोग को प्राधान्य दिया है ।

सूरदास के पद में भोग की विविध सामग्रियों के नाम तथा उनकी विधि इस प्रकार उपलब्ध होती है—

भोजन भयौ भाँवते मोहन । तातई जेंइ जाहु गो दोहन ।।
खीर, खाँड़, खीचरी सँवारी । मधुर महेरी गोपनि कों प्यारी ।।
'रायभोग' लीनों भात पसाइ । मूँग ढरहरी हींगु लगाइ ।।
सद माखन तुलसी दै तायौ । घिरत सुवास कचौरी नायौ ।।
पापर बरी अचार परम सुचि । अद्रक अरु निबुअनि ह्वै है रुचि ।।
सूरन करि तरि सरस तोरई । सेंम सींगरी छौंकि झोरई ।।
भरता भँटा खटाई दीनी । भाजी भली भाँति दस दीनी ।।
साग चना मरुआ चौराई । सोवा अरु सरसों सरसाई ।।

बथुआ भली भाँति रुचि राँध्यौ । हींग लगाय त्याय दधि सांध्यौ
पोई परवर फांग फरी चुनि । टेंटी ढेंढ़स छौंकि लिए पुनि
कँदुरी और कँकोरा कोरे । कचरी चारि चँचेंड़ा सोरे
बने बनाय करेला कीने । लौन लगाइ तुरत तरि लीने
फूले फूल सहिजना छौंके । मन रुचि होय नाज के औंके
फूल करील कली पाकरि नम । फरी अगस्त करी अमृत सम
अरुइहिं इमली दई खटाई । जेंवत षटरस जात लजाई
पेठा बहुत प्रकारन कीन्हें । तिनसों सबै स्वाद हरि लीन्हें
खीरा रामतरोई तामें । अरुचिनि रुचि अंकुर जिय जामें
सुंदर रूप रतालू रातौ । तरि हैं लीनौ अब ही तातौ
ककरी-ककरा अरु कचनारचौ । सरस निमोमनि स्वाद सँवारचौ
कितिक भाँति केरा करि लीने । दें करवंदा हरदी रंग भीने
बरी बरिल अरु बरा बहुत बिधि । खारे खाटे मीठे हैं निधि
पानौरा रायतौ पकौरी । डभकौरी मुँगछी सुठि सौरी
अमृत इंदहर है रस सागर । बेसन सालन अधिकौ नागर
खाटी कढ़ी बिचित्र बनाई । बहुत बार जेंवत रुचि आई
रोटी रुचिर कनक बेसन करि । अजवाइन सेंधौं मिलाइ धरि
अबहीं अँगाकरी तुरत बनाई । जे भजि-भजि ग्वालन संग खाई
माँडौ माँड़ि दुनेरे चुपरे । बहु घृत पाइ आपहीं उपरे
पूरी पूरि कचौरी कौरी । सजल सउज्ज्वल सुंदर सौरी
लुचई ललित लापसी सोहै । स्वाद सुबास सहज मन मोहै
मालपुवा माखन मथि कीन्हे । ग्राह ग्रसित रवि सम रंग लीन्हे
लावन लाड़ू लागत नीके । सेब सुहारी घेवर घी के
गूँझा गूँधे गाल मसूरी । मेवा मिले कपूरन पूरी
ससि सम सुंदर सरस अँदरसे । ऊपर कनी अमी जनु बरसे
बहुत जलेब जलेबी बोरी । नाँहिन घटत सुधा तें थोरी
देखत हरषत होत हैं सभी । मनहुँ बुदबुदा उपजे अभी
फैनी घुरि मिलि मिली दूध संग । मिस्री मिलित भई एक रंग
साज्यौ दही अधिक सुखदाई । ता ऊपर पुनि मधुर मलाई
खोवा खाँड औटि ह्वै राख्यौ । सोहै मधुर मीठौ रस चाख्यौ
छाछ छबीली धरी धुंगारी । झर है उठत झार की न्यारी
इतने व्यञ्जन जसोदा कीन्हे तब मोहन बालक सग लीन्हे

बैठे आय हँसत दोऊ भैया । प्रेम-मुदित परसति है मैया ।।
थार कटोरा जरित रतन के । भरि सब सालन बिबिध जतन के ।।
पहले पनवारौ परसायौ । तब आपुन कर कौर उठायौ ।।
जेंवत रुचि अधिकी अधिकैया । भोजन बहु बिसरति नहीं नैया ।।
सीतल जल कपूर रस रचयौ । सो मोहन निज रुचि करि अचयौ ।।
महरि मुदित नित लाड़ लड़ावै । ये सुख कहाँ देवकी पावै ।।
धरि तष्टि गडुवा जल लाई । भरयौ चुरू खरिका लै आई ।।
पीरे पान पुराने बीरा । खात भई दुति दाँतनि हीरा ।।
मृगमद-कन कपूर कर लीने । बाँटि-बाँटि ग्वालनि कों दीने ।।
चंदन और अरगजा आन्यौ । अपुने कर बल के अंगवान्यौ ।।
ता पाछे आपुन हूँ लायौ । उबरयौ बहुत सखन पुनि पायौ ।।
'सूरदास' देख्यौ गिरिधारी । बोलि दई हँसि जूठन थारी ।।
यह ज्यौनार सुनै जो गावै । सो निज भक्ति अभै पद पावै ।।

२. **राग**—यह कीर्तन भक्ति का मुख्य अंग है । भगवान् का कीर्तन राग में करने से मन को शीघ्र एकाग्रता होती है, इसलिए यह निरोध का साधक है। इससे जो सुख मिलता है, वह जप, तप, तीर्थ आदि से भी प्राप्त नहीं हो सकता । आचार्य जी ने निरोध के उद्देश्य वाली पुष्टिमार्गीय सेवा की कीर्तन-प्रणाली में राग का प्राधान्य रखा है । नाना प्रकार के वाद्य-यंत्रों द्वारा विविध रागों में श्रीकृष्ण का गुणानुवाद गाना ही कीर्तन कहलाता है । सूरदास ने कीर्तन की महिमा को इस पद में इस प्रकार गाया है—

जो सुख होत गोपालहिं गाए ।
सो नहिं होत जप-तप-व्रत कीन्हे, कोटिक तीरथ न्हाए ।।
दिऐं लेत नहीं चार पदारथ, चरन-कमल चित लाए ।
तीनि लोक तृन सम करि लेखत, नंदनंदन उर आए ।।
बंसीवट, बृंदाबन, जमुना, तजि बैकुंठ को जाए ।
"सूरदास" हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आए ।।

सूरदास ने प्रायः प्रत्येक राग में हरि-यश वर्णन किया है । उन्होंने कीर्तन के विविध शैलियों और छंदों का भी उपयोग किया है । 'सूरसारावली' में निम्न लिखत रागों के नाम मिलते हैं—

ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने ।
जानि प्रभात राग पंचम षट मालकोष रस भीने ।।

सुर हिंडोल, मेघ, मालव पुनि, सारंग सुर, नट जान ।
सुर सावंत, भूपाली, ईमन, करत कान्हरौ गान ।।
ऊँच अड़ाने के सुर सुनियत, निपट नायकी लीन ।
करत बिहार[1], मधुर केदारौ, सकल सुरन सुख दीन ।।
सोरठ, गौड, मलहार सोहावन, भैरव ललित बजायौ ।
मधुर बिभास, सुनत बेलावल[2], दंपति अति सुख पायौ ।।
देवगिरी, देसाक, देव[3] पुनि, गौरी, श्री सुखरास ।
जैतश्री अरु पूर्वी, टोड़ी, आसावरी सुखरास ।।
रामकली, गुनकली, केतकी, सुर सुघराई गाये ।
जैजैवंती, जगत-मोहनी, सुर सों बीन बजाये ।।
सूआ सरस मिलत प्रीतम, सुखसिंधु बीर-रस मान्यौ ।
जान प्रभात प्रभाती गायौ, भोर भयौ दोउ जान्यौ ।।

३. शृंगार—श्री वल्लभाचार्य जी ने सेवा में शृंगार को भी स्थान दिया है । विविध अलंकारों से भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को सुंदर प्रकार से अलंकृत करने से चित्त का आकर्षण होता है । इसमें उस स्वरूप में चित्त निरुद्ध हो जाता है । आचार्य जी कहते हैं—

श्रीकृष्णं पूजयेद्भक्त्या यथालब्धोप्रचारकैः ।
यथा सुंदरतां याति वस्त्रैराभरणैरपि ।
अलंकुर्वीत सप्रेम तथा स्थान पुरःसरम् ।। (निबंध)

अर्थात्—यथालब्ध द्रव्य से उपचारों द्वारा श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए । वस्त्रों और आभूषणों से भी जिस प्रकार श्रीकृष्ण के स्वरूप का सुंदर दर्शन हो, उस प्रकार अंगों के स्थान पुरःसर अलंकारादि शृंगार सप्रेम करना चाहिए ।

बाल भाव और किशोर भाव को प्रकट करने के लिए संप्रदाय में विविध शृंगार की व्यवस्था की गई है । इनमें मुख्य आठ हैं, जिनके नाम ये हैं—

१ मुकुट, २ सेहरा, ३ टिपारा, ४ कुल्हे, ५ पाग, ६ दुमाला, ७ फेंटा और ८ पगा (ग्वालपगा) । ये आठ शृंगार भगवान् के श्रीमस्तक के हैं ।

---

१ बिहाग २ विलावल ३ देवगंधार

उक्त आठ शृंगारों के अंतर्गत क्रीट, खूंप, चंद्रिका, तुर्रा, कतरा आदि और भी शृंगार मस्तक पर धराये जाते हैं। इसी प्रकार भगवान् के कंठ, हस्त, कटि, मुख आदि के भी शृंगार हैं, जिनके नाम ये हैं—

कंठ के—कंठश्री, दुलरी, तिलरी, हमेल, हाँस, बघनखा, पचलरा हार, सतलरा हार, नौसर हार, चौकी, पदक आदि।

हस्त के—बाजू, पहोंची, कंकन, मुद्रिका, हस्तफूल आदि।

कटि के—क्षुद्रघंटिका, कटिपेच आदि।

चरण के—पायल, नूपुर, जेहर, बिछिया, पग पान, अनवट आदि।

मुख के—नकबेसर (नासिका में) चिबुक (ठोड़ी पर) मकराकृत आदि कुंडल, ताटंक, सीसफूल आदि।

वस्त्रों के नाम—आडबंद, परदनी, मल्लकाछ, काछनी, पीतांबर, तनिया, पिछोरा, चाकदार, घेरदार, खुलेबंद, चोली आदि।

सूरदास ने शृंगार संबंधी अनेक पदों की रचना की है। इनमें से कुछ पद यहाँ पर दिये जाते हैं—

१. मुकुट का—

(१) मोर-मुकुट कटि काछनी, जननी पहरावै।
स्याम अंग भूषन सजे, बिदुका जु बनावै॥
पग नूपुर कटि किंकिनी, कर बेंनु गहावै।
मुसकनि में मन हरि लियौ, सिसुताई जनावै॥
ब्रज-बनिता आई तहाँ, दरपन दरसावै।
भोग अर्पि बीरा दिए, सुख "सूर" बढ़ावै॥

(२) मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, नैन बिसाल कमल तें आछे।
मुरली अधर धरें सोभत हैं, बनमाला पीतांबर काछे॥

(क्रीट)

(३) सुंदर बदन देख्यौ आज।
क्रीट-मुकुट सुहावनौ, मनभावनौ ब्रजराज॥
लियौ मन आकर्ष, मुरली रही अधरहिं गाज।
पलक ओट न चाह चित,लखि महा मनोहर साज॥
गोपीजन तन-प्रान वारति, रह्यौ मनमथ लाज।
'सूर' सुत यह नंद कौ,श्रीबल्लभ-कुल* सिरताज॥

* श्री बल्लभ-कुल से यहाँ पर गोप-कुल का अभिप्राय है।

२. सेहरा का—

(१) ललित लाल कौ सेहरौ, जगमग रह्यौ मेरी माई
हरषि-हरषि गोप-गोपी गावहीं, यह सुख देखो री माई।
अलकें ललकें बदन पर, मरवट मुखहिं बनाई
सोभा सीमा हुलसि कै, उमंगी सुंदरताई।
कुमकुम बेंदी भाल पर, ससि उद्योत सुहाई
मुक्ता आछे तन जलद में, उडुगन देत दिखाई।
भ्रकुटी कुटिल मनमोहनी, मोहन है सुखदाई
बागे बीरे अति बने, छबि सों चतुराई ठाई।
जननी नौछावरि करै, बाजे बजत बधाई
सुर–बनिता बिथकित भईं, रस–मूरति है पाई।
धनि जसुमति-सुत साँवरौ, दूलह कुँवर कन्हाई
राजकुमारी प्यारी राधिका, नव दूलह हो वर पाई।
यह जस गावै सारदा, जिनके भाग बड़ाई
यह आनंद जिनके हिएँ, "सूरदास" बलि जाई।

३ कुल्हे का—

बलि-बलि मदन गोपाल।
रंग महल में आज विराजत, सीस कुल्हे सोहै लाल।
प्यारी संग बतियाँ रतियाँ की, करत हँसावत बाल
"सूरदास" प्रभु आतुर विलसत, पहिरत अंक उरमाल।

४ फेंटा का—

(१) लाल को फेंटा उमेंटा बन्यौ,
भ्रकुटी भाल पर नवल नंदलाल के
आवत बन तें बने साँझ सुरभीन माँझ,
अटक लटकन रही डगन ब्रजबाल के।
चलत गज गति चाल, मन हरत,
बाहु अंस धरें सखा प्रिय ग्वाल के
"सूर" गोपीजन-जूथ, जुरि द्वार-द्वारि खरीं,
निरखि नंदलाल जुवती-जन जाल के।

(२) धरचौ सिर आज फेंटा पचरंगी।
एक छोर दच्छिन सिर सोभित, ता पर कतरा कलं
बामे मांझे प्रेम रँग बाढ़े आवत मोघन सं
सूरदास प्रभु गोकुल जीवन मोहनलाल त्रिभ

५ पगा का—

सुंदर स्याम सलौनो ढोटा, डारि गयौ मोपै मदन ठगोरी।
निर्तत आवत, बेनु बजावत, संग सखा हलधर की जोरी॥
कबहुँक गेंदन मार मचावत, ग्वाल भजावत हैं चहुँ ओरी।
चंचल नैन नचावत आवत, कबहुँक आय होत एक रोरी॥
कुंडल लोल,लोल लोचन छबि,सीस पगा ओढ़ै पीत पिछोरी।
"सूरदास" प्रभु मोहन नागर,कहा री कीनीं चित्त की चोरी॥

६. सामूहिक शृंगार का—

एक हार मोहि कहा दिखावति।
नख-सिख लौं अँग-अंग निहारहु, ए सब कतहिं दुरावति॥
मोतिन माल जराइ कौ टीको, करनफूल, नकबेसरि।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी उर, और हार इक नौसरि॥
सुभग हमेल कटाव की अँगिया, नगनि जरित की चौकी।
बहुटा कर-कंकन, बाजूबंद, एते पर हैं तौकी॥
छुद्रघंटिका, नूपुर, जेहरि, बिछुवा पग सब लेखौ।
सहज अंग सोभा सब न्यारी, कहत "सूर" लै देखौ॥

सेवा मार्ग का शरणत्व—श्री वल्लभाचार्य जी ने मानसी सेवा की सिद्धि के लिए जिस प्रकार श्रीमद्भागवत से गोपीजनों की पूर्वोक्त भक्ति-भावनाओं को सेवा मार्ग में स्वीकार किया है, उसी प्रकार तनुजा और वित्तजा सेवा की सिद्धि के लिए उन्होंने गीता के शरण-तत्त्व को भी अपनाया है।

"सर्व कर्माण्यपि सदा" से "सर्वधर्मान् परित्यज्य" पर्यंत गीता में द्वैविध्य शरण का निरूपण हुआ है। प्रारंभ में कर्म-ज्ञान के अंगवाला साधन रूप शरण है। उसमें निष्काम भक्ति-भाव से सब कर्मों को भगवान् श्री कृष्ण के अर्पण करने को कहा गया है। अंत में सब धर्मों को त्याग कर अन्य भाव से एक मात्र श्रीकृष्ण की शरण में जाने का स्पष्ट निर्देश किया है। प्रथम का 'निष्काम कर्मयोग' वाला शरण धर्मात्मक होने से साधन रूप है। द्वितीय सर्व धर्मों के त्याग वाला शरण केवल धर्मी-भाव को ही प्रकट करने से फलात्मक है। आचार्य जी ने इस फलात्मक शरण की अनन्य भावना को प्राधान्य देकर निष्काम कर्मयोग की प्रक्रियाओं से तनुजा-वित्तजा सेवा की सिद्धि की है।

भगवान् कृष्ण में अनन्य भक्ति स्थापित करने से ही भक्त पर उनकी कृपा होती है। आचार्य जी का दृढ़ मंतव्य है कि शरणस्थों पर ही भगवान् श्री कृष्ण कृपा करते हैं[1]। और श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होने पर ही मानसी प्रकृया रूप पूर्वोक्त प्रकार की प्रेम-भावनाओं की सिद्धि होती है। इसी लिए आचार्य जी ने इस प्रकार के शरण-तत्व को सेवा-मार्ग में स्वीकार किया और उससे पराभक्ति रूप मानसी सेवा को सुलभ बनाया।

इस शरण-तत्व के मुख्य दो अंग माने गये हैं। एक सर्व समर्पण, दूसरा अनन्य भाव। आचार्य जी कहते हैं—

"सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव"। (अं० प्र०)

अर्थात्—भगवान् श्रीकृष्ण को सर्व समर्पण करने से ही भक्त कृतार्थ और सुखी होता है।

अनन्य भाव के संबंध में आचार्य जी का मत है—

"अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थनाकार्य मात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्॥ (वि० धै० आ०)

इसका तात्पर्य यह है कि अन्य देवादि का भजन, वहाँ का गमन तथा प्रार्थना कार्य आदि भी श्रीकृष्ण भक्तों के लिए विवर्जित है। आचार्य जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के सिवाय सभी देव प्रकृति धर्म वाले हैं, अक्षरब्रह्म भी गणितानंद है, एक श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद हरि स्वरूप हैं, इसलिए श्रीकृष्ण ही एक मात्र आश्रय हैं[2]।

इस प्रकार के सर्व समर्पण और अनन्यभाव पतिव्रत धर्म रूप हैं, अतः इस देह आदि का यदि उसके स्वामी श्रीकृष्ण में इस प्रकार से विनियोग नहीं कराया जाय, तो जिस प्रकार वयस्क नव वधू को अपने पति के पास स्नेह वश न भेजने से उसका पति उस पर असंतुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस भक्त पर भी श्रीकृष्ण असंतुष्ट होते हैं[3]। इसलिए पतिव्रत धर्म के सदृश सर्व समर्पण

---

१. शरणागतश्चेदविलष्टः, तदा तत्र कृपा भवति।……भगवान्स्वकृपां शरणागतेष्वेवार्पितवान् बृहत्। (२-२१-३८ सुबोधिनी)

२. प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत्।
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम। (श्रीकृष्णाश्रय)

३ प्रौढाऽपि दुहिता यद्वत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे।
तथा देहे न कर्तव्य वर स्तुष्यति अंतःकरण प्रबोध

जाती अनन्य भक्ति से भक्त को श्रीकृष्ण की तनुजा-वित्तजा सेवा करनी चाहिए, तभी श्रीकृष्ण की उस भक्त पर कृपा होती है। आचार्य जी का मत है कि इस प्रकार की सेवा में कृष्ण से विमुख करने वालों का त्याग इस मार्ग में दूषण रूप नहीं है*, अतः पिता, पुत्र, पति आदि जो भी कोई इसमें अंतराय रूप होता हो, उसका त्याग कर देना चाहिए। सदा-सर्वदा और सर्व-भाव से जीव का एकमात्र कर्तव्य श्रीकृष्ण-सेवा ही होना चाहिए। इससे आत्म-निवेदन के समय वाचिक रूप से किया हुआ समर्पण स्पष्ट और पुष्ट होता है और श्रीकृष्ण की दुर्लभ कृपा को प्राप्त करने वाले शरण की सिद्धि होती है। श्रीकृष्ण की इच्छा के आधीन रहते हुए श्रीकृष्ण के चरण को ही दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करना इस शरण का परम लक्ष्य है।

सूरदास के पदों में शरण के अंग रूप सर्वसमर्पण और अनन्य भाव का इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है—

१. सर्वसमर्पण—

यामैं कहा घटैगौ तेरौ।
सर्व समर्पन "सूर" स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ॥

२. अनन्य भाव—

(१) श्रीवल्लभ भले-बुरे तोऊ तेरे।
अन्य देव सब रंक भिखारी, देखे बहौत घनेरे॥
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे।
सब तजि तुम सरनागत आए, दृढ़ करि चरन गहेरे॥

(२) जन यह कैसे कहै गुसाईं।
तुम बिनु दीनबंधु जादवपति, सब फीकी ठकुराई॥
अपने से कर, चरन, नैन, मुख, अपनी सी बुधि पाई।
काल-करम बस फिरत सकल प्रभु, तेऊ हमरी नांई॥
पराधीन, पर-बदन निहारत, मानत मोह बड़ाई।
हँसे हँसत, बिलखे बिलखत हैं, ज्यों दर्पन में झांई॥
लिए दियौ चाहैं सब कोऊ, सुनि समरथ चतुराई।
'देव सकल व्यापार परसपर,, ज्यों पसु-दूध चराई॥
तुम बिनु और कोऊ न कृपानिधि, पावै पीर पराई।
"सूरदास" के त्रास हरन कौं, कृपालु 'नाथ' प्रभुताई॥

---

* तत्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः। (पंचश्लोकी)

(३) हरि के जन सब तें अधिकारी ।
ब्रह्मा महादेव तें को बड़, तिनकी सेवा कछु न सुधा
जाचक पै जाचक कहा जाँचै, जो जाँचै तौ रसना ह
गनिका-पूत सोभा नहीं पावत, जाके कुल कोऊ न पिता
(४) अब क्यों दूजे हाथ बिकाऊँ ।
"सूरदास" प्रभु सिंधु चरन तजि, नदी सरन कत जाऊं
(५) गोबिंद से पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै ।
पति कौ व्रत जो धरै तिय, सो सोभा पावै ॥
(६) यह बिधि स्याम लग्यौ मन मोर ।
ज्यों पतिव्रता नारि अपने मन, पिय कों सरबस देहै ॥
(७) जाकौ मन लाग्यौ नंदलाल सों, ताहि और नहीं भावै हो
लै करि मीन दूध में राखौ, जल बिन नहीं सचु पावै हो

कृष्ण-विमुखों के त्याग करने का उल्लेख—
(१) तजौ मन, हरि-बिमुखनि कौ संग ।
जाके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग ॥
(२) जाके हृदै हरि-धर्म नाँहीं[1] ।
ताके तजे कौ दोष नाँहीं, बसिए नहीं उन माँहीं
मात, पिता, गुरु, बंधुन तजि, संग न पानी पीजै
जाके हृदै हरि-धर्म नाँहीं, ताकौ कह्यौ न कीजै
जन प्रहलाद पिता-पन मेट्यौ, बलि गुरु कह्यौ न कीन्हौं
भरत बचन परिहरत मात के, राज त्याग तप कीन्हो
अति ही दुष्ट देखि हरि-द्रोही, तज्यौ विभीषन भाई
छत्र-चँमर ढुराय सीस पर, कियौ लंक कौ राई
वेद-पंथ मेटि ब्रज-बनिता, पति तजि हरि पै आई
"सूर" पुनीत भईं वे गोपी, कृष्ण बिमल जस गाई

कृष्णाधीनता और चरणाश्रय का वर्णन—
जैसें राखहु तैसें रहौं ।
जानत हौं सुख-दुख सब जन के, मुख करि कहा कहौं[2]

---

१. 'तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः' । (श्रीवल्लभा
२ विवेकस्तु हरि सर्वं निजेच्छातः करिष्यति
प्रार्थिते वा ततः किं ... संशयात् । वि०

कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं ।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महागज, कबहुँक भार बहौं ।।
कमल-नयन घनस्याम मनोहर, अनुचर भयौ रहौं ।
"सूरदास" प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं ।।

सेवा मार्ग का आचार-तत्व—सेवा मार्ग में आचार्य जी ने आचार-तत्व को भी स्थान दिया है । इसमें सदाचार और भक्त्याचार का समावेश हुआ है । सदाचार से मन पवित्र होता है और भक्ति के आचार भक्ति-प्रेम को बढाते हैं ।

(१) **सदाचार**—सदाचार में वहिरंग और अंतरंग दो भेद रखे गये हैं । सदाचार के वहिरंग भेद में वर्णाश्रमानुसार शौचादि कर्मों द्वारा स्नानादिक से पवित्र होकर जीव को परम पवित्र, निर्दोष और शुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करने की व्यवस्था है । इसको संप्रदाय की भाषा में "अस्पर्शता" (अपरस) कहते हैं । इसमें वाह्य पवित्रता की सीमा परिस्थिति अनुसार मानसिक पवित्र और निष्काम वृत्ति से अंकित की जाती है । इसमें अति आचार भी निषिद्ध है । जिस आचार से भगवान् श्रीकृष्ण की तत्सुखात्मक सेवा मे किसी प्रकार से विक्षेप होता हो, उसका त्याग पुष्टिमार्ग में अभीष्ट है । इसलिए सूरदासादि भक्तों ने अति-आचार की निंदा भी की है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें स्वेच्छाचार स्थापित किया जाय । कूवा का शुद्ध जल, शुद्ध पात्र और शुद्ध वस्त्र आदि सदाचार के मुख्य आधार हैं । "आचार. प्रथमो धर्मः"—यह स्मृति-वाक्य इस सदाचार का मुख्य सूत्र है । सदाचार और शुद्ध आचार से ही मन पवित्र होता है, इसलिए साधन अवस्था में इस पर विशेष बल दिया जाता है । इसी प्रकार अंतरंग आचारों की भी नितात आवश्यकता मानी गई है । अंतरंग आचारों में सत्य, मया, अहिंसा आदि स्मृत्योक्त धर्मों का समावेश होता है । इन अंतरंग आचारों से ही वहिरग सदाचार शोभास्पद और सफल होते हैं । अंतरंग आचारों के बिना केवल वहिरंग आचार पाखंड की वृद्धि करने वाला होने से निंदनीय हो जाता है ।

सूरदास ने अंतरंग आचार रहित वहिरंग आचार करने वाले पाखंडियो की इस प्रकार निंदा की है—

(१) कथा सुनि तजी मसूर को दाल ।
काम न बिसरयौ, क्रोध न बिसरयौ, न बिसरयौ मोह जंजाल ।।

अभ्यागत कोऊ द्वारे आवत, ताकूं बतावत काल ।
घर में जाय बड़ाई करत हैं, कैसौ दियौ निकाल ।।
'लकड़ी धोय चौका में धरत हैं, चलत देत मानों काल' ।
"सूरदास" ऐसे कपटी कों, कैसे मिलेंगे गोपाल ।।

(२) हरि मैं तुमसों कहा दुराऊँ । × ×
जानत को 'पुष्टि - पथ मोसों', कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ।
मद - अभिमान भरयौ तन मेरे, साधु - संग छिटकाऊँ ।।
'मारग रीति' उदर के काजें, सीख सकल भरमाऊँ ।
'अति आचार' 'चारु सेवा रचि',नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ।।

(२) **भक्त्याचार**—जिस प्रकार मर्यादा-भक्ति के आचार यज्ञादि हैं, उसी प्रकार पुष्टि-भक्ति के आचार वैराग्य, संतोष, सत्संग, दीनता, आश्रय, गुरु-भक्ति और निरंतर कृष्ण का स्मरण आदि हैं । इनसे प्रेमात्मक पुष्टि-भक्ति की वृद्धि एवं दृढ़ता होती है ।

१. **वैराग्य संतोष**—आचार्य जी वैराग्य - संतोष के लिए इस प्रकार कथन करते हैं—

(१) "अत्र (भागवते) हि यथा-यथा विरक्तस्तथातथाऽधिकारी ।"
(सु० १–२–२)

अर्थात्—इस भागवत स्वरूप भगवत्मार्ग में जैसे-जैसे वैराग्यशील होता है, वैसे-वैसे ही इसका अधिकारी होता है ।

(२) **वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजेत् ।** (सर्व निर्णय)

अर्थात्—वैराग्य और परितोष का सर्वथा परित्याग न करना चाहिए । सूरदास ने इन दोनों का इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) कहा चाकरी अटकी जन की ।
वैश्यन के द्वारे पर भटकत, जात जन्म आसा करि धन की ।।
जात धरम, धन आवै न आवै, छाया है रचि-पीठ करन की ।
दिनकर पुनः फिरत सर सांधे, बांधि कमर नित्य चाह लरन की ।।
'आयुष नेम नहीं या कलि में, छन भंगुर जानों या तन की' ।
तजौ बड़ाई तिरलोकी की, सोंज करो भवसिंधु तरन की ।।
'कहा परतीति सक्ति संपति की करो पाल्ना गर्भ वचन की' ।
ऐसो समय बहुरि नहीं पय यह बिरियाँ नहीं नाव करन की ।

(२) मन रे तू कृष्णन कौ मत लै।
काहे ता पर क्रोध न कीजे, 'सींचे करै न सनेह'। ××

(३) जब संतोष हाकिम आवै, तब काया नगर सुख पावै।
ग्यान-वैराग्य की चढ़ि गई फौजा, अग्यान कूं मार भजावै॥
छमा कोतवाल बैठौ चौतरा, कुबुद्धि कहाँ तें आवै।
साँच ढिंढोरा फिरत नगर में, झूँठ चोर भजि जावै॥
धर्म कौ झंडा गड़्यौ खेत में, निर्भय राज कमावै।
"सूरदास" अग्यानी हाकिम, बाँधे जमपुर जावै॥

(४) जो दस-बीस पचास मिलै, सत होय हजार, तौ लाख मँगैगी।
कोटि अरब औ खरब मिलैं तौ, धरापति होन की चाह चहैगी॥
स्वर्ग-पताल कौ राज मिलै, तृष्ना अधिक-अति आग लगैगी।
"सूरदास" 'संतोष बिना' सठ, तेरी तौ भूख कबहू न भगैगी॥

२. सत्संग—श्री बल्लभाचार्य जी का सत्संग के विषय में यह मत है—

"निवेदनं तु स्मर्तव्य सर्वथा तादृशैर्जनैः। (नवरत्न)

अर्थात्—निवेदन का स्मरण तादृशीजनों से सर्वदा करना चाहिए। ...रदास ने भी सत्संग के लिए इस प्रकार कहा है—

(१) मन तू समझ, सोच, बिचार।
भक्ति बिना भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकार॥
साधु-संगत डारि पासा, फेर रसना सार। ××

(२) 'करो मन हरि-भक्तन कौ संग।'
जाके संग तें सुबुद्धि उपजत, बढ़त भजन में रंग॥ ××

(३) 'हरिजन संग छिनक जो होई।' ××

३. दीनता—निःसाधन पुष्टि-भक्ति में दीनता की परम आवश्यकता है ...चार्य जी ने कहा है—

"दैन्यं तत्तोष साधनम्।" (निबंध)

अर्थात्—दीनता ही हरि को संतुष्ट करने का एक मात्र साधन है। सूरदा... अपने अनेक पदों में दीनता का कथन किया है। निम्न लिखित पद में उन्हों... नता का विस्तृत वर्णन कर पाखंड के विरुद्ध मत प्रगट किया है।

हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ।
तुम जानत अंतर की बातैं, जो-जो उर उपजाऊँ॥
द्वादस तिलक लगाइ अंग मैं, फिर-फिर सबै दिखाऊँ।
करि उपदेस सबन के आगें, अपुनौ पेट भराऊँ॥

अर्थ-काम दोउ रहें दुवारें, धर्म - मोच्छ सिर नावें ।
बुद्धि विवेक विचित्र पौरिया, औसर कोऊ न पावै ॥
अष्ट-महासिधि द्वारे ठाड़ीं, कर जोरें उर लीन्हे ।
छड़ीदार बैराग्य बिनोदी, झिरकहिं बाहर कीन्हे ॥
माया काल कछू नहिं ब्यापै, यह रस - रीतै जानै ।
"सूरदास" यह नर तन पायौ, गुरु-प्रसाद पहिचानै ॥

५. गुरु-भक्ति—सूरदास ने गुरु-भक्ति पर बड़ा जोर दिया है । वे गुरु और ईश्वर में अभेद-बुद्धि रखते थे । जैसी श्रीकृष्ण देव में परा-भक्ति हो, वैसी ही गुरु में रखने वाले व्यक्ति के हृदय में देहादि का वास्तविक रहस्य स्फुरायमान होता है । इस उपनिषद् वाक्य के आधार पर सूरदास अपने ज्ञान को गुरु-प्रसाद रूप समझते थे ।

सूरदास के निम्न लिखित पदांशों में गुरु-भक्ति की महिमा इस प्रकार बतलाई गई हैं—

(१) हरि-हरि, हरि-हरि सुमिरन करौ । हरि चरनारबिंद उर धरौ ॥
हरि - गुरु एक रूप नृप जान । तामें कछु संदेह न आन ॥
गुरु प्रसन्न हरि प्रसन्न जोई । गुरु के दुखित, दुखित हरि होई ॥

(२) धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना करि गान्यौ ।

(३) अपुनपौ आपुन जरि मरिहै ।
काम, क्रोध, तृस्ना, मद, ममता, बिनु बिबेक क्यों तरिहै ॥
ज्यों दीपक सहज ज्योति में लौलत, हरि तरंग भ्रम परिहै ।
"सूरदास" संतन की संगति, 'गुरु-प्रसाद निस्तरिहै ॥

(४) गुरु बिनु ऐसी कौन करै ।
भवसागर तें बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै ॥

(५) भजो गोपाल भूल जिनि जाउ । मानुष देह को यही है लाउ ॥
गुरु - सेवा करि भक्ति कमाई । कृपा भई तब मन में आई ॥

६. श्रीकृष्ण नाम स्मरण—श्री वल्लभाचार्य का मत है कि यदि जीव से सेवा आदि कुछ भी न हो, तो उसे सर्वात्म-भाव से निरंतर "श्रीकृष्ण:शरणं मम" इस अष्टाक्षर मंत्र का स्मरण करना चाहिए* ।

* तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥ (नवरत्न)

सूरदास के निम्न पद में उक्त मत का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

श्री कृष्ण नाम रसना रटै, सोई धन्य कलि में ।
जाके पद पंकज की, रेणु की बलि मैं ।।
सोई सुकृत सोई पुनीत, सोई कुलमंता ।
जाके निस–दिना रहै, श्री कृष्ण नाम चिंता ।।
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, श्री कृष्ण नाम माँहीं ।
बिना एक कृष्ण–नाम, कलि उद्धार नाँहीं ।।
सब सुखन कौ सार, 'श्रीकृष्ण कबहूँ न बिसरियै ।'
कृष्ण नाम लै–लै, भव-सागर सों तरियै ।।
श्री गोबर्धनधर प्रभु, परम मंगल कारी ।
उद्धरे जन "सूरदास", ताकी बलिहारी ।।

४–सूरदास और पुष्टिमार्गीय तत्व

गत पृष्ठों के विवेचन से यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास की प्राय: समस्त रचनाएँ पुष्टिमार्गीय सिद्धांत के अनुकूल हैं। ऐसा होने पर भी कुछ विद्वानों ने आश्चर्य पूर्वक लिखा है कि सूरदास ने पुष्टि-मार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं नहीं किया है। हिंदी साहित्य के अनेक विद्वानों ने सूरदास की रचनाओं का भली भाँति अध्ययन नहीं किया है, इसीलिए उनका सूरदास विषयक मत कभी-कभी भ्रमात्मक हो जाता है। हम यहाँ पर कुछ ऐसे पद देते है, जिनमें सूरदास ने पुष्टिमार्ग का स्पष्ट उल्लेख किया है—

पुष्टि मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

(१) हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ ।
जानत कौ 'पुष्टि-पथ' मोसौं, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ।।
मारग-रीति उदर के काजै, सीख सकल भरमाऊँ ।
अति आचार, चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ।।

(२) नाम महिमा ऐसी जो जानो ।
मर्यादादिक कहै लौकिक सुख लहै,
पुष्टि कों 'पुष्टि-पंथ' निस्चय जो मानो ।।

(३) "भावभक्ति सेवा सुमिरन करि 'पुष्टि-पंथ' में धावै ।"

हरि - सेवा मांडी प्रभुता कों, कीरति बहुत बढ़ाऊं ।
निंदा करों और की मुख सों, आपुन भलौ कहाऊं ॥ × ॥
यह अभिलाष आस पूरन करि, 'दासन-दास' कहाऊँ ।
स्वर्ग-नरक की नाँहि अपेक्षा, तुम पद सरन रहाऊँ ॥
सदा सरन दृढ़ एक आसरौ, रसना नाम रटाऊँ ।
अपुनौ बिरद बिचारि दीजिऐ, यातें कहा घटाऊँ ॥
परचौ रहौं दरबार देखि तुव, तन-मन-धन बारने जाऊँ ।
जाचों जाय कौन पै तुम बिनु, कापै नाम कढ़ाऊँ ॥
दीजौ मोहि कृपा करि माधौ, चरन-कमल चित लाऊँ ।
"सूरदास" कों भक्ति दान दें, श्री बल्लभ गुन गाऊँ ॥

इस पद के अतिरिक्त और भी अनेक पदों में दीनता प्रकट की गई है ऐसे कुछ पदों की प्रारंभिक टेक इस प्रकार है—

(१) हरि ! मैं सब पतितन को नायक ।
(२) मैं तो महा पतित उरगानो ।
(३) हरि जू ! मो सों पतित न आन ।
(४) माधौ ! हौं पतित - सिरोमनि ।
(५) हरि ! हौं सब पतितन कौ राजा ।
(६) हौं पतितन में परधान ।
(७) मो सौ पतित न और गुसांई ।
(८) प्रभु मेरे ! मो सौ पतित उधारो ।

भक्ति-मार्ग में भक्ति से विमुख होना ही पतित कहलाना है । जब जीव तनिक भी ईश्वर को भूलता है, तब वह पतित होता है । श्री कृष्ण के संबंध बिना किसी अन्य की मन से भी कामना करने वाला कामी कहलाता है । इसी प्रकार कृष्ण से संबंधित किये बिना सब कार्य क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर रूप हो जाते हैं । सूरदास ने इसी दृष्टि से अपने को कामी, कुटिल आदि कहा है ।

भक्त जन दीनता की सिद्धि के लिए जगत के सभी दृश्यमान दोषो की भी अपने में सत्य भाव से कल्पना करता है, जिसके कारण दूसरे मे दीनत्व बुद्धि नहीं होती है और अपने में अभिमान नहीं होता है । सूरदास के पदों में प्राप्त अतिशय दीनता का यही रहस्य है । आगामी पद से भी उक्त बात की पुष्टि होती है—

सो कहाजू मैं न कियौ, (जो) तुम सोई चित्त धरि हौ ।
पतित-पावन बिरद, (तौ) कौन भाँति करि हौ ।।
जब तें जग जनम लियौ, जीव नाम पायौ ।
तब तें छुटि औगुन इक, नाम ना कहि आयौ ।।
स्वाद - लंपट, साधु - निंदक, कपटी, गुरु - द्रोही ।
"जेते कछु अपराध जगत, लागत सब मोही" ।।
गृह - गृह प्रति द्वार फिरयौ, तुम कौं प्रभु छाँड़े ।
अंध - अंध टेक चलै, क्यौं न परै गाड़े ।।
सुकृति - सुचि सेवक जन, काहि न जिय भावै ।
प्रभु की प्रभुता यहै जु, दीन सरन पावै ।।
कमल - नैन करुनामय, सकल अंतरजामी ।
बिनय कहा करै "सूर", क्रूर कुटिल कामी ।।

४. **आश्रय**—भक्ति का अनन्य भाव ही आश्रय कहलाता है । इसका वर्णन गत पृष्ठों में हो चुका है । सूरदास ने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त इतर देव और मनुष्य आदि की अनन्य भक्ति के प्रति सर्वथा उपेक्षा की है । श्रीकृष्ण के समक्ष वे सभी देव आदि को गौण समझते थे । उनके निम्न प्रकार के उल्लेख इस बात की पुष्टि करते हैं—

(१) अन्य देव सब रंक भिखारी, त्यागे बहौत घनेरे ।
हरि - प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे ।।

(२) जन यह कैसे कहै गुसांई ।
तुम बिनु दीनबंधु जादवपति, सब फीकी ठकुराई ।। × ×
लिए दियौ चाहैं सब कोउ कृपानिधि, सुनि समरथ जदुराई ।
देव सकल ब्यौपार परसपर, ज्यौं पसु-दूध चराई ।।

आश्रय की सिद्धि और प्रकार—

(४) हरि के जन की अति ठकुराई ।
महाराज रिषिराज महामुनि, देखत रहे लजाई ।।
निरभय देह राजगढ़ ताकौ, लोक मनन-उतसाह ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, 'ये भए चोर तें साह' ।।
दृढ़ बिस्वास कियौ सिंघासन, ता पर बैठे भूप ।
हरि-जस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप ।।
हरि पद पंकज पियौ प्रेम-रस, ताही के रंग रातौ ।
मंत्री ग्यान न औसर पावै, करत बात सकुचातौ ।।

अर्थ-काम दोउ रहैं दुवारें, धर्म - मोच्छ सिर नावैं ।
बुद्धि बिबेक बिचित्र पौरिया, औसर कोऊ न पावैं ॥
अष्ट-महासिधि द्वारे ठाढ़ीं, कर जोरें उर लीन्हे ।
छड़ीदार बैराग्य बिनोदी, झिरकहिं बाहर कीन्हे ॥
माया काल कछू नहिं व्यापै, यह रस - रीतैं जानै ।
"सूरदास" यह नर तन पायौ, गुरु-प्रसाद पहिचानै ॥

५. गुरु-भक्ति—सूरदास ने गुरु-भक्ति पर बड़ा जोर दिया है । वे गुरु और ईश्वर में अभेद-बुद्धि रखते थे । जैसी श्रीकृष्ण देव में परा-भक्ति हो, वैसी ही गुरु में रखने वाले व्यक्ति के हृदय में देहादि का वास्तविक रहस्य स्फुरायमान होता है । इस उपनिषद् वाक्य के आधार पर सूरदास अपने ज्ञान को गुरु-प्रसाद रूप समझते थे ।

सूरदास के निम्न लिखित पदांशों में गुरु-भक्ति की महिमा इस प्रकार बतलाई गई हैं—

(१) हरि-हरि, हरि-हरि सुमिरन करौ । हरि चरनारबिंद उर धरौ ॥
हरि - गुरु एक रूप नृप जान । तामें कछु संदेह न जान ॥
गुरु प्रसन्न हरि प्रसन्न जोई । गुरु के दुखित, दुखित हरि होई ॥

(२) धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना करि गान्यौ ।

(३) अपुनपौ आपुन जरि मरिहै ।
काम, क्रोध, तृस्ना, मद, ममता, बिनु बिबेक क्यों तरिहै ॥
ज्यों दीपक सहज ज्योति में लौलत, हरि तरंग भ्रम परिहै ।
"सूरदास" संतन की संगति, 'गुरु-प्रसाद निस्तरिहै ॥

(४) गुरु बिनु ऐसी कौन करै ।
भवसागर तें बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै ॥

(५) भजो गोपाल भूल जिनि जाउ । मानुष देह को यही है लाउ ॥
गुरु - सेवा करि भक्ति कमाई । कृपा भई तब मन में आई ॥

६. श्रीकृष्ण नाम स्मरण—श्री वल्लभाचार्य का मत है कि यदि जीव से सेवा आदि कुछ भी न हो, तो उसे सर्वात्म-भाव से निरंतर "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस अष्टाक्षर मंत्र का स्मरण करना चाहिए* ।

---

* तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।
वददिभरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥ (नवरत्न)

सूरदास के निम्न पद में उक्त मत का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

श्री कृष्ण नाम रसना रटै, सोई धन्य कलि में ।
जाके पद पंकज की, रेणु की बलि में ।।
सोई सुकृत सोई पुनीत, सोई कुलमंता ।
जाके निस-दिना रहै, श्री कृष्ण नाम चिंता ।।
जोग, जज्ञ, तीरथ, ब्रत, श्री कृष्ण नाम माँहीं ।
बिना एक कृष्ण-नाम, कलि उद्धार नाँहीं ।।
सब सुखन कौ सार, 'श्रीकृष्ण कबहूँ न बिसरिये ।'
कृष्ण नाम लै-लै, भव-सागर सों तरिये ।।
श्री गोबर्धनधर प्रभु, परम मंगल कारी ।
उद्धरे जन "सूरदास", ताकी बलिहारी ।।

४—सूरदास और पुष्टिमार्गीय तत्व

गत पृष्ठों के विवेचन से यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास की प्रायः समस्त रचनाएँ पुष्टिमार्गीय सिद्धांत के अनुकूल हैं। ऐसा होने पर भी कुछ विद्वानों ने आश्चर्य पूर्वक लिखा है कि सूरदास ने पुष्टि-मार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं नहीं किया है। हिंदी साहित्य के अनेक विद्वानों ने सूरदास की रचनाओं का भली भाँति अध्ययन नहीं किया है, इसीलिए उनका सूरदास विषयक मत कभी-कभी भ्रमात्मक हो जाता है। हम यहाँ पर कुछ ऐसे पद देते है, जिनमें सूरदास ने पुष्टिमार्ग का स्पष्ट उल्लेख किया है—

पुष्टि मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

(१) हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ ।
जानत को 'पुष्टि-पथ' मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ।।
मारग-रीति उदर के काजैं, सीख सकल भरमाऊँ ।
अति आचार, चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ।।

(२) नाम महिमा ऐसी जो जानो ।
मर्यादादिक कहै लौकिक सुख लहै,
पुष्टि कों 'पुष्टि-पंथ' निस्चय जो मानो ।।

(३) "भावभक्ति सेवा सुमिरन करि 'पुष्टि-पंथ' में धावै ।"

स्वमार्ग के प्रति आत्म विश्वास—

हौं पतित-सिरोमनि सरन परचौं।
कह्यो कछु और, करचौ कछु औरें, तातें तिहारे मन तें उतरचौ।।
यह ऊँचौ संतन को मारग, ता मारग में पैंड धरचौ।
नैन स्रवन नासिका इंद्रिय बस ह्वै खिसल परचौ।।
और पतित ह्वै हैं बहुतेरे, तिनकी छोलन हौं जु धरौ।
"सूरदास" प्रभु पतित पावन हो, विरद की लाज करौ तौ करौ।।

पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप—पुष्टि-मार्ग में परब्रह्म श्रीकृष्ण को ही परम दैवत और आराध्य माना गया है। ये द्वादशांग पुरुष और साकार रूप है[1]। पुष्टिमार्ग की मान्यता के अनुसार ये ब्रह्म इस अनवतार दशा में श्रीनाथजी के रूप में सं० १५३५ की वैशाख कृ० ११ को ब्रज के अंतर्गत गोबर्धन पर्वत से प्रादुर्भूत हुए हैं। इसीलिए उनको श्री गोबर्धननाथ जी अथवा श्री गोवर्धनधर कहा जाता है। श्री बल्लभाचार्यजी ने प्रत्यक्ष भजन के लिए इन श्रीनाथजी को ही साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण माना है[2], इसीलिए पुष्टि संप्रदाय के सेव्य स्वरूपों में श्रीनाथजी का प्राधान्य है। श्रीनाथजी को गायें अत्यत प्रिय हैं, इसीलिए उनको 'गोपाल' भी कहा जाता है। श्री बल्लभाचार्य जी के समय में श्रीनाथजी के प्राकट्य-स्थल का निकटवर्ती गाँव इसीलिए 'गोपालपुर' कहा जाता था। उक्त 'गोपालपुर' ही आज कल 'जतीपुरा' के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरदास ने पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथ जी का स्मरण निम्न लिखित पदांशों में इस प्रकार किया है—

श्रीनाथजी का उल्लेख—

(१) **मोसौं पतित न और गुसांई।** ×
सेवि 'नाथ' चरन गिरधर' के बहुत करी अपनाई।

(२) **बरु मेरी परतिज्ञा जाउ।** × ×
आय निकट 'श्रीनाथ' निहारे, परी तिलक पर दीठ। ×

---

१. द्वादशाङ्गोह वै पुरुषः।" (श्रुति)

२. इतीदं द्वादशस्कधं पुराणं हरिरेव सः। पुरुषे द्वादशत्वं हि सक्थौ बाहू शिराऽन्तरम्। हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ ततः सक्थौ हस्तस्त-तश्चैको द्वादशश्जापरः स्मृतः। 'उत्क्षिप्त' हस्तः पुरुषो भक्तमाकारयत्युत। स्तनौ मध्यं शिरश्चैव द्वादशाङ्ग तनुर्हरिः। (निबंध)

इसमें वर्णित उत्क्षिप्त-ऊँचा हस्त केवल श्रीनाथजी का ही है। इससे श्रीनाथजी को ही आचार्य ने द्वादशांग हरि रूप कहा है। यह निश्चित होता है।

(३) यह लज्जा नृप कहा करो। ×
...........तब 'श्रीनाथ' सहाय हमारे। ×

(४) 'श्रीनाथ' सकौ तौ मोहि उधारो।

(५) 'श्रीनाथ' मुरलीधर कृपाकरि दीन पर............।

(६) ब्रज कौ 'नाथ गोबर्धनधारी' सुभग भुजन नख रेख जुनौ ॥

(७) 'श्रीनाथ' सारंगधर कृपा करि दीन पर............।

(८) 'नाथ' मोहि अब की बेर उबारौ।
तुम नाथन के नाथ स्वामी, दाता नाम तिहारौ ॥

सूरदास ने 'गोपाल' नाम का उल्लेख अपने अनेक पदों में किया है।

पुष्टिमार्ग के द्वितीय प्रधान स्वरूप श्री नवनीत-प्रिय जी हैं। सूरदास ने इनका उल्लेख भी अपने कई पदों में किया है।

नवनीतप्रिय जी का उल्लेख—

(१) सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत, रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए ॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मानों मत्त मधुप गन, मादक मधुहिं पिए ॥
कठुला कंठ बज्र केहरि-नख, राजत है सखि रुचिर हिए।
धन्य "सूर" एकौ पल यह सुख,कहा भयौ सत कल्प जिए ॥

(२) देखेरी ! हरि नंगम नंगा।
जलसुत भूषन अंग बिराजति, बसन हीन छबि उठत तरंगा ॥
कहा कहूँ अँग-अंग की सोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा।
कछु दधि हाथ कछू मुख माखन, 'सूर' हँसति ब्रज जुबतिन संगा ॥

पुष्टि-मार्ग के तृतीय प्रधान स्वरूप श्री मथुरेश जी हैं; जो शंख, चक्र गदा और पद्म के धारण करने वाले चतुर्भुज स्वरूप हैं। ये यज्ञोपवीत से भी अंकित हैं। सूरदास के निम्न लिखित पद में मथुरेश जी का वर्णन मिलता है—

श्री मथुरेश जी का उल्लेख—

बनी मोतिन की माल मनोहर।
सोभित स्याम सुभग उर ऊपर, मनु गिरि तें सुरसरी धँसी धर ॥
अति भुज दंड भौंर भृगु रेखा, चंदन चित्र तरंगनि सुंदर।
रवि की किरनि मीन कुंडल छबि,मकर मिलन आये मनों त्यागि सर ॥

"जग्यवीत" सुदेस "सूर" प्रभु, मध्य वारि धारा जु बनी
'संख, चक्र, गदा, पद्म' पानि मनु, कमल बीच कल हंस किए घर

पुष्टि संप्रदाय में पुष्टि शक्ति रूपा श्री यमुना जी की बड़ी म
श्री बल्लभचार्य जी के मतानुसार श्री यमुना जी पुष्टि भक्ति की स
और मुकुंद में रति बढ़ाने वाली हैं। सूरदास के निम्न लिखित पदो
जी का इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

(१) श्रीजमुना निज दरसन मोहि दीजै।
आस करों गिरिधरन लाल की, इतनी कृपा कीजै।
हौं चेरी महारानी तेरी, चरन-कमल रस लीजै
बिलंब करो जिन बोलि लेहु मोहि, दरस परस नित कीजै
करौ निवास उर अंतर मेरे, स्रवन सुजस सुनि लीजै।
प्रान पिय की खरी ये प्यारी, पानि पकरि अब लीजै
हौं अबूझ मूढ़ मति मेरो, अनत नहीं चित भीजै
"सूरदास' मोहि इहै आस है, निरखि-निरखि मुख जीजै।

(२) नाम महिमा ऐसी जू जानों।
मर्जादादिक कहै लौकिक सुख लहै,
पुष्टि कों पुष्टिपंथ निस्चै जो मानों॥
स्वाति जल बूंद जब परत है जाहि में,
ताहि में होत तैसौ जू बानों।
यमुने कृपा सिंधु जानि, जल महिमा आनि,
"सूर" गुन पूर कहाँ लौं बखानों॥

(३) श्री जमुने पतित पावन करेउ।
प्रथमहिं जब दियौ दरसन, सकल पातक हरेउ॥
जल-तरंगन परस कर, पय-पान सों मुख भरेउ।
नाम लेतहि गई दुरमति, कृष्ण-रस बिस्तरेउ॥
गोप कन्या कियौ मज्जन, लाल गिरिधर वरेउ।
"सूर" श्री गोपाल निरखत, सकल काज सरेउ॥

---

१. श्री चतुर्भुजदास कथित "खट ऋतु की वार्ता" से ज्ञात होत
सतस्वरूप के साथ श्रीनाथजी के प्रथम अन्नकूट के अवसर पर गोसांई वि
जी ने सूरदास को मथुरेश जी की कीर्तन-सेवा दी थी, उस समय उन्हों
पद का गायन किया था।

२ भक्तिहेतुस्तु यमुना। (सुबो० ३ १ २१)

अन्य अवतार और देवी-देवता—शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग के अनुसार समस्त अवतार और देवी-देवता श्री कृष्ण के ही अंश हैं । इस मान्यता के कारण राम, नृसिंह, वामन आदि भक्तोद्धारक अवतारों में श्री कृष्ण की ही स्थिति मानी गई है, अतः पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली में उक्त अवतारों की जयंतियों के अवसर पर श्री कृष्ण के स्वरूप तथा अक्षर ब्रह्मात्मक शालिग्रामजी का पंचामृत स्नान होता है।

इसी भावना को लेकर सूरदास ने अन्य अवतारों के पदों में अपने इष्ट श्री गोबर्धननाथ का इस प्रकार स्मरण किया है—

(१) **'सूरदास' प्रभु गोबर्धन धर, नरहरि-वपु धारचौ।**

(२) **कृष्ण-भक्ति सीतल निज पानौ।**
'रघुकुल-राघव' कृष्ण सदा ही, गोकुल कीन्यौ थान्यौ ॥

इसी प्रकार अन्य देवी-देवताओं को भी श्री कृष्ण के अंश मान कर पुष्टि-प्रवाह और पुष्टि-मर्यादा वाली सेवा में 'श्री कृष्ण के हितार्थ' उनकी भी पूजा की जाती है। यह पूजा, नंद-यशोदा की भावना से, श्री कृष्ण के जन्मोत्सव पर उनकी छठी के अवसर पर होती है।

सूरदास ने श्री कृष्ण की छठी के वर्णन में उक्त देवी-देवताओं का इस प्रकार स्मरण किया है—

गौरी गनेस सुर बिनै हौं, देवी सारदा तोही।
गाऊँ हरि जू कौ सोहलौ, मन और न आवे मोही ॥

सूरदास के राम-विषयक पद—सूरदास के राम-विषयक अनेक पद मिलते हैं। ये सब शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार रचे हुए हुए हैं। श्रीमद् बल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी में लिखा है कि 'कृष्ण एवं रघुनाथ' (१-५२-२२) तथा 'भगवान्पूर्ण एवं रघुनाथोऽव-तीर्णः।' (२-७-२३) इन सूत्रों के अनुसार सूरदास ने भी राम-कृष्ण की अभेदता सूचक निम्न प्रकार के अनेक पद रचे हैं—

(१) **जै गोबिंद माधव मुकुंद हरि। कृपासिंधु कल्यान कंस-अरि ॥**
कृपानिधान केसव कमलापति। कृष्ण कमललोचन अविगत गति ॥
रामचंद्र राजीव नैन बर। सरन साधु श्रीपति सारंगधर ॥
बनमाली बामन बीठल बर। बासुदेव बासी ब्रज भूतल ॥
खरदूखन त्रिसिरासुर खंडन। चरनचिह्न दंडक भुव मंडन ॥
बकी दमन, बक-बदन-बिदारन। बरुन-बिषाद नंद-निस्तारन ॥

रिषि मख त्रान, ताड़का-तारक । बन बसि तात बचन प्रतिपालक ।।
काली-दमन, केसि-कर-पातन । अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन ।।
रघुपति प्रबल - पिनाक-बिभंजन । जग-हित जनकसुता - मनरंजन ।।
गोकुलपति, गिरिधर गुन-सागर । गोपी-रमन, रास - रति-नागर ।।
करुनामय कपि - कुल-हितकारी । बालि बिरोधि कपट मृगहारी ।।
गुप्त - गोप - कन्या ब्रत पूरन । द्विज-नारी-दरसन दुख चूरन ।।
रावन कुंभकरन सिर छेदन । तरुवर सात एक सर भेदन ।।
संख चक्र चाणूर सँहारन । सक्र कहै मेरौ रच्छन कारन ।।
उत्तर कृपा गीध कृत हारी । दरसन दै सबरी उद्धारी ।।
जे पद सदा संभु हितकारी । जे पद परम सुरसरी गारी ।।
जे पद अहि फन-फनप्रति धारी । जे पद बृंदाबनहिं बिहारी ।।
जे पद सकटासुर संहारी । जे पद पांडव गृह पग धारी ।।
जे पद-रज गौतम-तिय तारी । जे पद भक्तन के सुखकारी ।।
'सूरदास' सुर जाँचत ते पद । करहु कृपा अपने जन पर सद* ।।

(२) कृष्ण-भक्ति सीतल निज पान्यौ ।
'रघुकुल-राघव कृष्ण सदा ही', गोकुल कीनौ थान्यौ ।। × ×

पुष्टि-भक्ति का स्वरूप—हम पहले लिख चुके हैं कि पुष्टि-भक्ति प्रेम-भक्ति है । प्रेम की सिद्धि विरह से होती है, इसलिए इस भक्ति के श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि सभी साधन विरहात्मक हैं । भगवान् के विरह मे पतिव्रता की तरह अनन्य होकर पुष्टिस्थ भक्त उनका यश-श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि करते है । तब भक्त को क्लेश युक्त देखकर हृदयस्थ प्रभु बाह्य रूप में आविर्भूत होते हैं । श्री बल्लभाचार्य जी ने लिखा है—

क्लिश्यमानाञ्जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ।। (नि० ल०)

---

* एक किंवदंती के अनुसार जब तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे, तब वे चंद्रसरोवर पर सूरदास से भी मिले थे । तुलसीदास को श्री रामचंद्र जी का इष्ट था, अतः उनको श्रीनाथ जी के प्रति भक्ति-भाव प्रकट करने में संकोच होता था । कहते हैं, सूरदास ने उक्त पद का गायन करते हुए उस समय श्रीनाथ जी से प्रार्थना की थी कि वे तुलसीदास को रामचंद्र के रूप में दर्शन दें । उक्त पद की अंतिम टेक 'करहु कृपा अपने जन पर सद' सूरदास के अतिरिक्त किसी अन्य भक्त के लिए ही प्रयुक्त हुई ज्ञात होती है ।

इस प्रकार विरह से ही प्रेम की सिद्धि होती है और प्रेम सिद्ध होने पर
क और वेद दोनों से भक्त विरक्त हो जाता है। सूरदास ने निम्न लिखित
। मे इस बात को इस प्रकार कहा है—
रह का स्वरूप—

विरह बिनु नाहिंन प्रीति की खोज।
लागे बिनु कहो कैसे आवै, इन अँखियन में रोज॥
जब तें दूरि भए नँदनंदन, बैरी भयौ मनोज।
"सूरदास" प्रभु निसंक जे जन, ते हैं राजा भोज॥

प्रेम का स्वरूप—

जा दिन स्याम मिलें सोइ नीकौ।
'जोतिष, निगम, पुरान बड़े ठग, जानों फांसी जी कौं॥
जो बूझे तौ ऊतर दीजै, बिनु बूझे रस फीकौ।
अपने-अपने ठौर सबै ग्रह, हरन भयौ क्यों सीय कौ॥
चातक मीन कमल-चाहत, कब मन करत अमी कौ।
भद्रा भली, भरनी भय हरनी, चलत मेघ अरु छींकौ॥
सुनि रे मूढ़ मधुप ब्रज आयौ, लै अपयस कौ टीकौ।
"सूर" धरम धरि लाल गुनै जो, तौ प्रेमी कौड़ी कौ॥

पुष्टि-भक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—स्वरूपासक्ति, लीलासक्ति और
वासक्ति। सूरदास के पदों मे इन तीनों का इस प्रकार वर्णन मिलता है—
स्वरूपासक्ति—

(१) कहूँ देख्यौ माई, श्री गोकुल कौ बासी।
तनिक सी बाँसुरी बजाइ बाँस की, लै गयौ प्रान निकासी॥
देख्यौ होय तौ दिखाय सखी री, अँखियाँ रूप की प्यासी।
"सूरदास" प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, मेरौ मरन, जग हाँसी॥

(२) मिलिबौ नैनन ही कौ नीकौ।
नंद कौ लाल हमारौ जीवन, और जगत सब फीकौ॥
वेद, पुरान, भागवत, गीता, गूढ़ ग्यान पोथी कौ।
खाटी छाछ कहा रुचि उपजै, "सूर' खवैया घी कौ॥

(३) गोकुल के गोंडे एक साँवरौ ढुटौना माई,
अँखियन के पैंडे पैठि, जी के पेंड परचौ है।
कल न परत छिनु, गृह भयौ बन सम,
तन, मन, धन, प्रान सरबस हरचौ है॥

भवन न भावै माई, आँगन रह्यौ न जाई,
करै फिरै हाय-हाय देखो कैसो हाल करचौ है
"सूरदास" प्रभु नीके गावत मधुर सुर,
मानों मुरली में लै पीयूषहि भरचौ है।

(४) उठौ इन नैनन अंजन देहु।
आनों क्यों न स्याम रंग काजर, जासों जुरचौ सनेह
तपत रहत निस-बासर मधुकर, नहिं सुहात बन-गेह
पहलै तौ नैनन अपराधी, बरजत कियौ सनेह
सब बिधि बाँधि ठानि कर राख्यौ, ज्यों कपूर को खेह
बार इक स्याम मिलाय "सूर" प्रभु, क्यों न सुजस जस लेहु

(५) मन में रह्यौ नाहिन ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे, आनियौ उर और॥
चलत, चितवत, द्यौस जागत, स्वप्न सोवत राति।
हृदय तें वह मदन मूरति, छिनु न इत-उत जाति॥
कहत कथा अनेक ऊधौ, लोग लोभ दिखाइ।
कहा करों 'मन प्रेम पूरन', घट न सिंधु समाइ॥
स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति, मृदु हास।
"सूर" इनके दरस कारन, मरत लोचन प्यास॥

२. लीलासक्ति—

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहाँ भ्रम निसा होत नहिं कबहू, सोइ सायर सुख योग॥
जहाँ सिव-सनक हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमिष नहीं ससि डर, गुंजत निगम सुबास॥
जिहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल, सुकृत-अमृत जल पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै॥
लछमी सहित होत नित क्रीड़ा, सोभित "सूरजदास"।
अब न सुहाय विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस॥

भावासक्ति—

(१) भक्ति सखी भाव—भाविक देव
२ भाव बिनु भाम नका नहि पावै

बाल-भाव में किशोर-भाव—सूरदासादि पुष्टि-संप्रदायी कवियों की रचनाओं में किशोर-भाव को देख कर कुछ व्यक्तियों को आश्चर्य होता है। उनके विचारानुसार उक्त कवियों की रचनाएँ केवल बाल-भाव की होनी चाहिए थीं। हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि श्री वल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य-भक्ति का ही उपदेश नहीं दिया है, वल्कि उनके मत में कांता-भाव की माधुर्य-भक्ति भी ग्राह्य है। बाल-भाव में किशोर-भाव का समावेश पुष्टि संप्रदाय की विशिष्टता है। श्री वल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत दशमस्कंध पूर्वार्ध अध्याय १२ में वर्णित उक्त विषय का विवेचन "सुबोधिनी" में किया है।

सूरदास ने निम्नलिखित पदों में बाल-भाव के अंतर्गत किशोर-भाव का इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) निपट छोटे कान्ह सुनि, जननी कहीं बात।
होत जब समुदाय, करत तब सिसु-भाय,
एकांतहि पाइ कै नैन भरि मुसिकात॥
देखि रस-रीति की प्रीति बिपरीत गति,
मतिमान छाँड़ि संग लग्यौ रह्यौ निस-प्रात।
जासि नहीं बिसरि देख बहुत जतन धरि समुझि,
कहूँ चंद देखै कमल हू बिगसात॥
दुरत घूंघट जबै लाल जसुमति हरै,
झझकि धँस धरनि, पाँउ धरि किलकात।
मनहुँ आषाढ़ घन बादरी "सूर" तजि,
होत आनंद, सब फूले अति जलिजात॥

(२) ग्वालिन आपु तन देख, मेरे लाल तन देखिऐ।
भीत जो होय तौ चित्र अवरेखिऐ॥
मेरौ तौ पाँच ही बरस कौ, अजहू यह रोय पय-पान माँगै
तुम हो मस्त अति ढीठ री ग्वालिनी, फिरत अठलाति गोपाल आगै।
मेरे तौ स्याम की तनिक सी अंगुरियाँ, ए बड़े नखन के दाग तेरें
मष्ट करि, सुनगौ लोग अगवार को, कहाँ पाई भुजा स्याम मेरें
ठगठगे नैन बैनन हँसी ग्वालिनी, मुख देखें सोभा अति ही बाढ़ी
सुन सखी "सूर" सरबस हरै साँवरे, अन-उत्तर महरि के द्वार ठाढ़ी

श्री वल्लभाचार्यजी के वचनों का अनुसरण—गत पृष्ठों के विवेचन द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि सूरदास ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग की भक्ति-भावना को स्पष्ट करने के लिए ही अपने अधिकांश पदों की रचना की है। उन्होंने आचार्य जी रचित ग्रंथों के नामोल्लेख और उनके वचनों का अनुसरण करते हुए अपना मत प्रकट किया है। सूरदास ने अपने निम्न पद में आचार्यजी कृत "सुबोधिनी" ग्रंथ का नामोल्लेख करते हुए उसके मर्म को श्रवण करने का उपदेश दिया है—

कहा चाकरी अटकी जन की। ×
करम ज्ञान आसय सब देखे, वहाँ ठौर नहीं पाँव धरन को।
श्री शुकदेव के बचन आश्रय, सुनो 'सुबोधिनी' टीका जिनकी॥
नित्य संग करो वैष्णव कौ, सेवा करो नंदसुवन की।
"सूर" कहै मन सेवा तजि कै, चिंता कहा करे उदर भरन की॥

इससे यह समझा जा सकता है कि सूरदास ने आचार्य जी कृत 'सुबोधिनी' आदि ग्रंथों का अवश्य अध्ययन किया होगा। इसकी पुष्टि आचार्यजी के कथनों के अनुसरण रूप कुछ उद्धरणों से भी होती है।

आचार्य जी ने वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत की समाधि-भाषा को 'प्रस्थान चतुष्टय' के रूप में स्वीकार किया है। इन चारों में भी शरण और भक्ति के लिए उन्होंने गीता और भागवत पर विशेष बल दिया है।

सूरदास के कई पदों में गीता और भागवत का इस प्रकार उल्लेख हुआहै—

हमारैं सब रस गोबिंद गीता।
गाय-गाय रसना जो लड़ाऊँ, हरि—रस अमृत पीता॥
श्रीमुख बचन कहत कुंती-सुत, सुनि-सुनि होत प्रतीता।
या गीता के तेज प्रताप तें, दुरजोधन-दल जीता॥
जे नर गीता पाठ करत हैं, जुग-जुग रहत निहचीता।
तिनकों कौन बात कौ संसय, तरे कुटुंब सहीता॥
सार कौ सार, सबन कौं सुख है, चारों वेद मथि लीता*।
"सूरदास" प्रभु अघ-मोचन कौं, सद्गुरु दियौ पलीता॥

भागवत—(१) **निगम कल्पतरु पक्व फल सुक मुख तें जु बयौ।**
(२) **श्री भागवत सकल गुन—खानि।**

---

* सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः।
पार्थोवत्स सुधीर भोक्ता दुग्धं गीतामृत महत्॥

(३) निगम कल्पतरु सीतल छाया।

द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुन तत्त्व व्यापै नहीं माया॥
फल अति मधुर, सरस पुष्प जुत, अध्याय तीन सत पैंतीस साखा।
सुंदर श्लोक सहस्त्र अष्टादस, श्रीमद्भागवत उत्तम भाषा॥
पाँच लाख पुनः सहस्त्र छहत्तर, अक्षर प्रांत है जु पत्रा।
अघ और अज्ञान दूर करन कों, एक-एक अक्षर है निज मंत्रा॥
नवधा भक्ति चारु मुक्ति भल, ज्ञान-बीज अरु ब्रह्म रस मीता।
"सूरदास" भागवत-भक्ति, गदगद कंठ कोउ प्रेमीजन पीता॥

अब हम श्री वल्लभाचार्य जी कृत ग्रंथों के कतिपय उद्धरण अ
दास के पद उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने आचार्य जी
न्थों का किस प्रकार अनुसरण किया है।

चार्य जी कृत "कृष्णाश्रय" का अनुसरण—

अब तौ साँचौ कलियुग आयौ[1]।

पुत्र-पिता कौ कह्यौ न मानत, करत आपु मन भायौ॥
पुत्री बेचि पिता धन खायो, दिन-दिन मोल सवायौ।
यातें बरषा अल्प भई री, कालैं सब जग खायौ॥
छिपत गोवर्धन, घटत वृंदावन, कालिंदी रूप छिपायौ।
"सूरदास" प्रभु या कलियुग में, मोहे काहे कों जिवायौ॥

चार्य जी कृत "यमुनाष्टक" का अनुसरण—

हंस-सुता[2], जल स्वरूप[3], पुष्टि रूप[4], अति अनूप,
करत स्नान अंग पाप कटत हैं।
सिव-विरंचि-सुक-सेस रटत[5], वेद विदित स्रवन गनेस,
नारद, ध्रुव, व्यास आदि गुन गनत हैं॥
भक्त रीति-प्रीत, स्यामसुंदर पास रहत नित,
काम-धर्म-अर्थ-मोक्ष[6] देत, जमदूत निरखि दूर ही तें हटत हैं[7]।
यह जिय दृढ़ प्रेम ज्ञान, परम पद लहत नर[8],
श्री जमुना जी की महिमा भनत 'सूर' जस नहीं घटत है[9]।

. "कलौ च खल धर्मिणी" २. 'जयति पद्मबंधो सुता' ३. 'सघोषगतिदन्तु
दे ४. 'तुर्यप्रियाम्' ५. 'शिव विरञ्चि देवस्तुते' ६. 'सकल सिद्धि हेतु
'न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः' ८. मुकुन्द रति वर्द्धिनी' त
रति द्वै मुकुन्दे रतिः' ९. स्तुति तव करोति कः' आदि।

आचार्य जी कृत "विवेक धैर्याश्रय" का अनुसरण—

हरि भक्तन कों गर्व न करनौ[1]।
यह अपराध परम पद हू तें उतर नरक में परनौ।
हौं कुलीन धनवान, ये भिक्षुक, ये मन में नहिं धरनौ
राजसिंहासन अश्व पालकी, तासों भवसागर नहीं तरनौ।
खान-पान बनाए भले जू, बदन पसारि फेर हू मरनौ
"सूरदास" यह सत्य कहत हौं, हरिभक्तन के संग उबरनौ।

आचार्य जी कृत "पंचश्लोकी" का अनुसरण—

जाके हृदय हरि–धर्म नाहीं।
ताके तजे कौ दोष नाँहि, बसिऐ नहीं उन माँहीं[2]।

आचार्य जी कृत 'सुबोधिनी का अनुसरण—

(१) चकई री चलि चरन-सरोवर, जहाँ नहिं प्रेम बियोग[3]
लछमी सहित होत नित क्रीड़ा, सोभित 'सूरजदास'
अब न सुहाय विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस।

(२) एक निस रामकृष्ण बन जाय[4]।
सुंदर सोभा देखि रमन की अति ही आनँद पाय।
बेनु बजाय कृष्ण तब गोपी, सबकों वहीं बुलाय
'मर्यादा श्रुति सों बलदेवहिं, पुष्टि कृष्ण ढिग आय'।
तहाँ प्रेम सों दोउ जन बिहरत, मन हरि लीनों सोई
गान तान मानहिं सुर साँचे, तन सुधि रही न कोई।
भूषन बसन सगार सकल अंग, चंदन लेप किये
'सूरदास हरि के गुन गावत, भव-दुख सबही भाजे।

---

१. 'अभिमानश्च संत्याज्य:'
२. तत्यागे दूषणं नास्ति यत: कृष्ण बहिर्मुखा:
३. नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि शायिनम्।
लक्ष्मी सहस्र लीलाभि: सेव्यमानं कलानिधिम्।।
४. शंखचूण बध वर्णन।

पंचम परिच्छेद
काव्य-निर्णय

१—सूर-काव्य की भाषा

काव्य का कलेवर—

प्रत्येक महाकवि के काव्य की एक विशिष्ट शैली होती है। उस शैली को हृदयंगम किये बिना उस महाकवि के काव्य को समुचित रूप से नहीं समझा सकता। सूरदास की भी एक निजी शैली है, जिसके कारण उनको समस्त कवि-समुदाय में से सरलता पूर्वक पहिचाना जा सकता है।

शैली का सौंदर्य और महत्व काव्य के कलेवर अर्थात् भाषा की समृद्धि पर भी आधारित है। सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्यांकन करते समय उनकी भाषा-शैली पर सर्व प्रथम दृष्टि जाती है।

सूर-पूर्व ब्रजभाषा —

सूर-काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जो मध्यकालीन हिंदी का शक्तिशाली साहित्यिक रूप है। अभी तक विद्वानों की धारणा थी कि यद्यपि १२ वीं शताब्दी के लगभग शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रजभाषा का जन्म हो चुका था, तब भी उसे साहित्यिक रूप १६ वीं शताब्दी में सूरदास द्वारा प्राप्त हुआ। हिंदी भाषा विषयक नवीन अनुसंधानों से उक्त धारणा भ्रमात्मक सिद्ध हो गई है। अब यह मान लिया गया है कि ब्रजभाषा का जन्म १२ वीं शती से पूर्व हो गया था और उसे साहित्यिक रूप भी १६ वीं शती से पहिले ही प्राप्त हो चुका था। जिस शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रजभाषा का विकास हुआ है, वह डा० भंडारकर और विलसन जैसे भाषा-शास्त्रियों के मतानुसार ७ वीं से १० वीं शताब्दी तक मथुरा मंडल में प्रचलित था। उसी प्रदेश में १० वीं शताब्दी के लगभग ब्रजभाषा का जन्म हुआ था[1]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है, आरंभ में उस ब्रजभाषा के 'सिर पर साहित्यिक अपभ्रंश की छाया थी और रक्त में शौरसेनी भाषाओं की परंपरा तथा अन्य सामाजिक तत्त्वों का ओज और बल था। वह भाषा १४ वीं शती के आस-पास मुसलमानो के आक्रमण और ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के दोहरे कारणों से नई शक्ति,

---

१. विलसन फिलोलोजीकल लैक्चर्स, पृ० ३०१

और संघर्ष से उत्पन्न प्राणवत्ता लेकर बड़ी तेजी से विकसित हुई थी। १४ वी शताब्दी के आस-पास उसका रूप स्थिर हो चुका था[1]।

इस प्रकार जिस भाषा में सूर-काव्य की रचना हुई है, उसका जन्म सूरदास से प्रायः पाँच सौ वर्ष पूर्व हुआ था और उसमें साहित्य-रचना भी कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व से हो रही थी; तथापि उसे व्यवस्थित भाषा का रूप सूरदास की रचनाओं से ही प्राप्त हुआ है। संदेश रासक, प्राकृत पैंगलम्, पृथ्वीराज रासो और कीर्तिलता ही नहीं; बल्कि सधार अग्रवाल कृत प्रद्युम्न-चरित (सं० १४११), जाखू मणिसार कृत हरिचंद पुराण (सं० १४५३), विष्णुदास कृत महाभारत (सं० १४९२), मानिक कवि कृत वैताल पच्चीसी (सं० १५४६), और नारायणदास कृत छिताई वार्ता (सं० १५५०) मे भी ब्रजभाषा का वैसा व्यवस्थित रूप नहीं मिलता है, जैसा सूरदास और उनके सहयोगी कवियों की रचनाओं में है। फिर भी उन पूर्ववर्ती रचनाओं से यह निश्चय होता है कि सूरदास से पहिले ही राजस्थान से अवध तक और दिल्ली से ग्वालियर तक के विस्तृत भू-भाग में ब्रजभाषा प्रचलित थी और उसमें काव्य-रचना होती थी।

कृष्णोपासक संप्रदायों के उदय और कृष्ण-भक्ति के प्रचार ने विभिन्न स्थानों के भक्तों, कवियों और कलाकारों को श्री कृष्ण के जन्म और उनकी लीलाओं से गौरवान्वित ब्रजभूमि की ओर आकर्षित किया था। इन्हीं कारणों से समस्त श्रद्धालु यात्री गण भी समस्त भारत से मथुरा मंडल में आते थे। वहाँ आने पर वे सभी लोग ब्रजभाषा की ओर आकर्षित होते थे। शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी होने से ब्रजभाषा में स्वाभाविक रूप से माधुर्य की विशेषता थी, जिससे वह विभिन्न स्थानों के कवियों और गायकों द्वारा शीघ्र अपनाली गई। साधु-संतों और धर्म-प्रचारकों ने भी अपने मतों के प्रचार का सुगम माध्यम समझ कर उसे स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार सूरदास के समय तक ब्रजभाषा का व्यापक प्रचार हो चुका था। फिर सूरदास और उनके समकालीन ब्रज के भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं से उसे इतना समृद्ध किया कि वह प्रायः चार सौ वर्षों तक उत्तर भारत की प्रमुख काव्य-भाषा बनी रही।

सूरदास की भाषा विषयक विशेषता—

सूरदास की रचनाओं में जिस ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, वह समस्त साहित्यिक गुणों से युक्त एक समर्थ काव्य-भाषा है। यह ठीक है कि उनकी

१. सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य; भूमिका, पृ० 'ख'

भाषा का रूप वैसा शुद्ध एवं परिमार्जित नहीं है, जैसा उनके परवर्ती रसखान, मतिराम, बिहारी, घनानंद और देव आदि कवियों की भाषा का है; किंतु उन रीतिकालीन कवियों की भाषा-समृद्धि और काव्य-प्रतिभा सूर की भाषा और रचना से कितनी प्रभावित है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

सूरदास की भाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ ही साथ संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द भी अधिक परिमाण में मिलते हैं। उनके प्रचुर काव्य-साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनके पास शब्दों का अक्षय भंडार है, जिसके कारण वे किसी भी प्रकार के भाव को किसी भी प्रकार से व्यक्त करने में सर्वथा समर्थ हैं। उन्होने एक ही बात को अनेक प्रकारों और अनेक ढंगों से कहा है; फिर भी उनके कथन में पुनरुक्ति का आभास नहीं होने पाता है। सूरदास के कथन की यह विशिष्ट शैली और उसकी सफलता उनकी भाषा-समृद्धि पर ही आधारित है। सूरदास जैसे शब्दों के धनी ही इस प्रकार की काव्य-रचना कर सकते थे।

सूरदास की कविता के अधिकांश विषय शृंगार एवं वात्सल्य से संबंधित हैं, अतः उनके काव्य में ओज की अपेक्षा प्रसाद एवं माधुर्य गुण ही अधिक परिमाण में हैं। इन गुणों के कारण कोमल-कांत पदावली का बाहुल्य उनकी भाषा की पहली विशेषता है। उनकी भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसमे भावों के अनुरूप उपयुक्त शब्दों का संगठन है, जिसके कारण उनका कथन चित्र के समान पाठकों को आनंदित करता है। उनकी भाषा की तीसरी विशेषता उनकी सार्थक शब्द-योजना है, जिसका सफलता पूर्वक निर्वाह उनके अनेक पदों में आरंभ से अंत तक किया गया है। उनकी चौथी विशेषता भाषा का धारावाही प्रवाह है, जो संगीत के ताल-स्वरों के कारण और भी आनंद-दायक हो गया है। उनकी भाषा की पाँचवीं विशेषता यह है कि यह अत्यत बलवती और सजीव है। भावों के अनुरूप विशिष्ट शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को बल एवं सजीवता प्राप्त होती है। ये बातें सूरदास की भाषा में प्रचुरता से मिलती हैं।

सूर-काव्य में विविध भाषाओं के शब्द—

सूरदास ने जहाँ ब्रजभाषा की समृद्ध शब्दावली का प्रयोग किया है; वहाँ उन्होंने खड़ी बोली, राजस्थानी, पूर्वी, बुंदेली, पंजाबी और गुजराती भाषाओं के भी कुछ शब्द ग्रहण किये हैं। इसका कारण भारत के विभिन्न स्थानों से आने वाले तीर्थ-यात्रियों का उनके संपर्क में आना हो सकता है। उनकी

रचनाओं में अरबी-फारसी के भी कतिपय शब्द मिलते हैं। इसका एक साधारण कारण तो वही संपर्क है, और दूसरा प्रमुख कारण तत्कालीन मुसलिम शासन का प्रभाव कहा जा सकता है।

यहाँ पर सूरदास कृत एक पद दिया जाता है, जिसमें अरबी-फारसी शब्दो का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है—

हरि, हौं ऐसौ अमल कमायौ।
साबिक जमा हुती जो जोरी, मिनजालिक तल ल्यायौ॥
वासिल बाकी, स्याहा मुजलिक, सब अधर्म की बाकी।
चित्रगुप्त सु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी॥
मोहरिल पाँच साथ कर दीने, तिनकी बड़ी बिपरीती।
जिम्में उनके माँगे मोतें, यह तौ बड़ी अनीती॥
पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे।
सुनी तगीरी, बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे॥
बढ़ौ तुम्हार बरामद हूँ कौ, लिखि कीनौ है साफ।
'सूरदास' की यहै बीनती, दस्तक कीजै माफ॥१४३॥

उक्त पद में आये हुए समस्त फारसी शब्द प्रशासन संबंधी हैं। लोग उस समय उन्हें उसी प्रकार समझते थे, जिस प्रकार आज-कल समन, डिग्री, जज आदि शब्दों को सब समझते हैं।

सूरदास की कुछ रचनाओं में खड़ी बोली का भी मिश्रण मिलता है। यहाँ पर उनका एक खड़ी बोली मिश्रित भाषा का पद दिया जाता है। उक्त भाषा का प्रचार निर्गुणमार्गीय भक्त कवियों में था और जो गोरखनाथ आदि की रचनाओं में भी मिलती है। सूर का यह पद हठयोग के प्रवर्तक योगीराज महादेव से संबंधित है, जो योगी के वेष में श्री कृष्ण के दर्शनार्थ ब्रज में गये थे। भाषा और भाव की दृष्टि से यह पद द्रष्टव्य है—

मैं जोगी जस गाया, रे बाला मैं जोगी जस गाया।
तेरे सुत के दरसन कारन, मैं कासी से धाया॥ रे बाला०
पारब्रह्म पूरन पुरुषोत्तम, सकल लोक जामाया।
अलख निरंजन देखन कारन; तीन लोक फिरि आया॥ रे बाला०
धन तेरा भाग जसोदा रानी, जिन ऐसा सुत जाया।
गुनन बड़ा छोटा मत जानौ, अलख रूप धरि आया॥ रे बाला०
जो भावे सो लीजे रावर, करो आपुनी दाया।
देहु असीस मेरे बालक को, यह मेरे गुरु ने बताया॥ रे बाला०

ना मैं लैहों पाट-पटंबर, ना लैहों कंचन माया।
मुख देखों तेरे बालक को, यह मेरे गुरु ने बताया॥ रे बाला०
कर जोरे बिनवैं नंदरानी, सुनि जोगिन के राया।
मुख देखन नहिं देहों रावरे, बालक जात डराया॥ रे बाला०
काला पीला गौर रूप है, बाघंबर ओढ़ाया।
कहुँ डायन सी दृष्टी लागै, बालक जात डराया॥ रे बाला०
जाकी दृष्टि सकल जग ऊपर, सो क्यों जात डराया।
तीन लोक का स्वामी मेरा, सो तेरे भवन छिपाया॥ रे बाला०
बाल-कृष्ण को ल्याय जसोदा, कर अंचल मुख छाया।
कर पसार चरनन रज लीन्हों, सिंगी-नाद बजाया॥ रे बाला०
अलख-अलख करि पाँय छूवे हैं, हँसि बालक किलकाया।
पाँच बेर परिक्रमा कीन्ही, अति आनंद बढ़ाया॥ रे बाला०
हरि की लीला हर मन अटक्यौ, चित नहिं चलत चलाया।
अखिल ब्रह्मांड के नायक कहिये, नंद घरहिं प्रगटाया॥ रे बाला०
इंद्र-चंद्र-सूरज सनकादिक, सारद पार न पाया।
तुमहीं ब्रह्मा, तुमहीं विष्णु, तुमहीं ईस बताया॥॥ रे बाला०
तुम विश्वंभर, तुम जग-पालक, तुमहीं करत सहाया।
कहाँ बास यह कहत जसोदा, सुन जोगिन के राया॥ रे बाला०
कौन देस के जोगी तुम हो, कौने नाम धराया।
"सूरदास" कहै सुनौ जसोदा, संकर नाम बताया॥ रे बाला०

२—सूर-काव्य की सरसता

व्य की आत्मा—

यदि भाषा काव्य का कलेवर है, तो रसपूर्ण कथन काव्य की आत्मा है। य-शास्त्र के आचार्यों ने सरस काव्य को ही वास्तविक काव्य बतलाया जिस काव्य में रस नहीं, वह शब्दाडंबर मात्र है। सूरदास के काव्य सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र रसपूर्ण कथन प्रचुर परिमाण मलते हैं।

दास के काव्य में रस-परिपाक—

रसों में शृंगार रस प्रमुख है, जिसका पूर्ण परिपाक सूरदास के काव्य आ है। शृंगार रस के संयोग और विप्रलंभ दो पक्ष होते हैं। सूरदास

ने दोनों प्रकार के श्रृंगार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भाव-लोक में विचरने लगता है। आचार्यों ने श्रृंगारिक कथन के जितने अंग बतलाये हैं, सूरदास के काव्य में उनका पूर्ण रूपेण समावेश हुआ है।

प्राचीन रस-शास्त्रियों के मतानुसार वात्सल्य भी श्रृंगार रस के अंतर्गत है, क्यों कि दोनों का स्थायी भाव 'रति' है। एक में उसका परिपाक स्त्री-पुरुष के रूप में है, तो दूसरे में वह संतान जनित है। इस प्रकार दोनो के रति रूप में अंतर होता है। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के कारण उसका वात्सल्य क्षेत्र में एक सीमित रूप बन जाता है। इसलिए साहित्य-दर्पणकार तथा बाद में सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने उसको पृथक् रूप में स्वीकार किया है। सूरदास के काव्य का अध्ययन करने से वात्सल्य रस और श्रृंगार रस का क्षेत्र पृथक्-पृथक् दिखलाई देता है, जो उनके संयोग और वियोग मे और भी स्पष्ट जान पड़ता है।

सूरदास के काव्य में वात्सल्य का जैसा स्वाभाविक और मर्म-स्पर्शी कथन हुआ है, वैसा किसी भी भाषा के कवि ने आज तक नहीं किया। इन्होने वात्सल्य का ऐसा सांगोपांग एवं पूर्ण कथन किया कि वह श्रृंगार के अंतर्गत "भाव" की कोटि से निकल कर विभाव, अनुभाव, संचारी आदि से परिपुष्ट स्वयं एक "रस" बन गया है। सूरदास ने श्रृंगार की तरह वात्सल्य के भी संयोग एवं वियोग पक्षों का कथन किया है। नंद-यशोदा द्वारा बाल कृष्ण की विविध क्रीडाओं के सुखानुभव में वात्सल्य के संयोग पक्ष का निरूपण है, तो उनके मथुरा चले जाने के पश्चात् नंद-यशोदा के करुण क्रंदन में वात्सल्य के वियोग पक्ष का प्रतिपादन है।

हास्य रस श्रृंगार रस का सहयोगी और मित्र रस है। सूरदास के काव्य में शिष्ट हास्य का भी सफलता पूर्वक कथन हुआ है। अपनी भक्ति-भावना के कारण सूरदास की दृष्टि में "निर्वेद" का विशेष महत्व नहीं है, अतः उन्होने शांत रस के कथन अपेक्षाकृत कम किये हैं, तब भी उनके "विनय" के पदो मे शांत रस का भी यथेष्ट आभास मिल जाता है। इन रसों के अतिरिक्त अन्य रसों का भी सूरदास ने बड़ी मार्मिकता के साथ कथन किया है। यहाँ पर सूरदास द्वारा रचे हुए विभिन्न रसों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे उनकी काव्य-प्रतिभा का कुछ ज्ञान हो सकता है

शृंगार रस—

(संयोग शृंगार)

नवल निकुंज, नवल नवला मिलि, नवल निकेतन रुचिर बनाए।
बिलसत बिपिन बिलास बिबिध वर, बारिज बदन बिकच सचु पाए॥
लागत चंद्र-मयूख सुलिय तनु, लता-भवन-रंध्रनि मग आए।
मनहुँ मदन बल्ली पर हिमकर, सींचत सुधा धार सत नाए॥
सुनि-सुनि सुचित स्रवन जिय सुंदरि, मौन किए मोदति मन लाए।
'सूर' सखी राधा-माधव मिलि, क्रीड़त हैं रति-पतिहिं लजाए॥

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनै उर धरिया॥
क्रीडा करत तमाल-तरुन-तर, स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकत मन कंचन में जरिया॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
'सूरदास' बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु कुँवरिया॥

(विप्रलंभ शृंगार)

बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजें।
तब ये लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजें॥
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलनि, अलि गुंजें।
पवन पानि घनसार संजीवनि, दधि-सुत किरनि भानु भई भुंजें॥
यह ऊधो! कहियो माधो सों, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजें।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस कों, मग जोवत अँखियां भईं छुंजें॥

निसि-दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन न रहत निसि-बासर, कर कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे॥
आँसू-सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।
'सूरदास' प्रभु यही परेखो, गोकुल काहैं बिसारे॥

वियोग की दस दशाएँ—काव्याशास्त्र के आचार्यों ने विप्रलभ गार में वियोग की निम्न लिखित दस दिशाएँ मानी हैं—

१. अभिलाषा, २. चिंता, ३. स्मरण, ४. गुण-कथन, ५. उद्वेग प्रलाप, ७. उन्माद, ८. व्याधि, ९. जड़ता और १०. मूर्च्छा।

सूरदास ने उक्त दसों दशाओं का बड़ा मार्मिक कथन किया है। यहाँ पर हम उनके तत्संबंधी पद उपस्थित करते हैं—

(१. अभिलाषा)

ऊधौ ! स्याम इहाँ लै आवहु।
ब्रज-जन चातक मरत पियासे, स्वाँति बूँद बरसावहु॥
ह्याँ तें जाहु, बिलंब करहु जिनि, हमरी दसा जनावहु।
घोष सरोज भयौ है संपुट, ह्वै दिनमनि बिगसावहु॥
जो ऊधौ हरि इहाँ न आवहिं, तौ हमें उहाँ बुलावहु।
"सूरदास" प्रभु हमहिं मिलावहु, तब तिहूँ पुर जस पावहु॥

(२. चिंता)

मधुकर ! ये नयना पै हारे।
निरखि - निरखि मग कमल - नयन कौ, प्रेम-मगन भए भारे॥
ता दिन तें नींदौ पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे।
सपन, तुरी, जागत पुनि वेई, जो हैं हृदय हमारे॥
यह निर्गुन लै ताहि बतावहु, जो जानें याकी सारे।
"सूरदास" गोपाल छाँड़ि, का चूसें सेंटा खारे॥

(३. स्मरण)

मेरे मन इतनी सूल रही।
वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं, जे नँदलाल कही॥
एक द्यौस मेरे गृह आए, हौं ही मथत दही।
रति माँगत मैं मान कियौ सखि, सो हरि गुसा गही॥
सोचति अति पछिताति राधिका, मूर्छित धरनि ढही।
"सूरदास" प्रभु के बिछुरे तें, बिथा न जात सही॥

(४. गुण-कथन)

इहिं बिरियाँ बन तें ब्रज आवते।
दूरहिं तें वह बैनु अधर धरि, बारंबार बजावते॥
कबहुँक काहू भाँति चतुर चित, अरति ऊँचे सुर गावते।
कबहुँक लै-लै नाम मनोहर, धौरी धेनु बुलावते॥
इहि बिधि बचन सुनाइ स्याम घन, मुरछे मदन जगावते।
आगम सुख उपचार बिरह-ज्वर, बासर-ताप नसावते॥
रुचि-रुचि प्रेम पियासे नैनन क्रम-क्रम बलहिं बढ़ावते
'सूर' सकल रसनिधि सुंदर घन आनँद प्रगट करावते

(५. उद्वेग)

हमारे माई ! मोरउ बैर परे ।
घन गरजत बरज्यौ नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे ॥
करि-करि प्रगट पंख हरि इनके, लै-लै सीस धरे ।
याहीं तें न बदति बिरहनि कों, मोहन ढीठ करे ॥
कह जानें काहे तें सजनी, हम सों रहत अरे ।
"सूरदास" परदेस बसे हरि, ये बन तें न टरे ॥

(६. प्रलाप)

मधुबन ! तुम कत रहत हरे ?
बिरह-बियोग स्याम सुंदर के, ठाड़े क्यों न जरे ॥
मोहन बेनु बजावत तुम तर, साखा टेकि खरे ।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि जन ध्यान टरे ॥
यह चितवन तू मन न धरत है, फिरि-फिरि पुहुप धरे ।
"सूरदास" प्रभु बिरह दवानल, नख-सिख लों न जरे ॥

(७. उन्माद)

कर धनु लै किन चंदहिं मारि ?
तू हरवाय जाय मंदिर चढ़ि, ससि सन्मुख दरपन बिस्तारि ।
याही भाँति बुलाय मुकुर अति, खंड-खंड कर डारि ॥

(७. व्याधि)

और सकल अंगन तें ऊधौ ! अँखियाँ बहुत दुखारी ।
अधिक पिराति, सिराति न कबहूँ, बहुत जतन करि हारी ॥
मग जोवत पलकौ नहिं लावति, बिरह बिकल भई भारी ।
भरि गईं बिरह-बाय दरसन बिनु, निस दिन रहति उघारी ॥
अलि आली गुरु-ज्ञान सलाका, क्यों सहि सकति तिहारी ।
"सूर" सु अंजन आंजि रूप-रस, आरति हरो हमारी ॥

(९. जड़ता)

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाड़ी ।
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ॥
सूखे बदन, स्रवति नैनन तें, जल-धारा उर बाढ़ी ।
कंधनि बाँह धरें चितवति मनु, द्रुमन बेलि दव दाढ़ी ॥
नीरस करि छाँड़ी सुफलक-सुत, जैसें दूध बिनु साढ़ी ।
"सूरदास" अक्रूर-कृपा तें, सही बिपति तनु गाढ़ी ॥

(१०. मूर्च्छा)

जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं ।
परी मुरछि धरनी ब्रज-बाला, जो जहँ रही सु तहीं ।।
सपने की रजधानी ह्वै गई, जो जागी कछु नाहीं ।
बार-बार रथ ओर निहारहिं, स्याम बिना अकुलाहीं ।।
कहा आय करि हैं ब्रज मोहन, मिली कूबरी नारी ।
"सूर" कहत सब ऊधौ आए, गईं काम-सर मारी ।।

वात्सल्य—

(संयोग)

(१) सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ।।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति, उर आनंद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिर जीवहु मेरौ कुंवर कन्हैया ।।
कबहुँक बल कों टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
"सूरदास" स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ।।

(२) जसुमति लै पलिका पौढ़ावति ।
मेरौ आजु अति ही बिरुझानौ, यह कहि-कहि मधुरे सुर गावति
पौढ़ि गई हरुएं करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँभुआने
कर सों ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने
पौढ़ौ लाल कथा इक कहि हों, अति मीठी, स्रवननि कों प्यारी
यह सुनि "सूर" स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी

(३) आँगन स्याम नचावहीं, जसुमति नँदरानी ।
तारी दै - दै गावहीं, मधुरी मृदु बानी ।।
पायनि नूपुर बाजईं, कटि किंकिनि कूजै ।
नान्हीं एड़ियनि अरुणता, फल बिंब न पूजै ।।
जसुमति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै ।
तारी बजावत देखई, पुनि आपु बजावै ।।
केहरि नख उर पर रुरै, सुठि सोभा कारी ।
मनौं स्याम घन मध्य में, नव ससि उजियारी ।।
गभुआरे सिर केस हैं, बर घूँघर वारे ।
लटकन लटकत भाल पर, बिधु मधि गन तारे ।।

कठुला कंठ चिबुक-तरे, मुख दसन बिराजै ।
खंजन बिच सुक आनि कै, मनु परयौ दुराजै ॥
जसुमति सुतहिं नचावई, छबि देखत जिय तें ।
"सूरदास" प्रभु स्याम कौ, मुख टरत न हिय तें ॥

(वियोग)

जद्यपि मन समुझावत लोग ।
सूल होत नवनीत देखि, मेरे मोहन के मुख जोग ॥
प्रात काल उठि माखन-रोटी, को बिनु माँगे देहै ।
अब उहिं मेरे कुँवर कान्ह कों, छिन-छिन अंकम लैहै ॥
कहियो पथिक ! जाइ घर आवहु, राम-कृष्ण दोउ भैया ।
"सूर" स्याम कत होत दुखारी, जिनके मो सी मैया ॥
सँदेसौ देवकी सों कहियो ।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो ॥
उबटन, तेल और तातौ जल, देखत ही भजि जाते ।
जोइ-जोइ माँगत, सोइ-सोइ देतौ, करम-करम करि न्हाते ॥
तुम तौ टेब जानतिहि ह्वै हौ, तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहिं, माखन-रोटी भावै ॥
अब यह 'सूर' मोहिं निसि-बासर, बड़ौ रहत जिय सोच ।
अब मेरे अलक-लड़ैते लालन, ह्वै हैं करत सँकोच ॥
मेरें कुँवर कान्ह बिन सब कछु, वैसैहि धरयौ रहै ।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै ॥
सूने भवन जसोदा सुत के गुन गति सूल सहै ।
दिन उठि घेरत घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै ॥
जो ब्रज में आनंद हुतौ, मुनि मनसा हू न गहै ।
"सूरदास" स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै ॥

हास्य रस—

रदास ने कृष्ण की बाल-लीला के प्रसंगों में ही कई स्थानों पर स्मि की बड़ी सुंदर व्यंजना की है । जब बालक कृष्ण माखन चुरा कर ख ड़ लिए जाते हैं, तब वे अपने मुँह पर लगे हुए माखन को पोंछते ह ाथ के दोना को पीठ के पीछे छिपाते हुए किस प्रकार अपनी सफ है । उनकी इस चेष्टा पर स्वाभाविक रूप से मंद हास्य की छटा है—

मैया ! मैं नहीं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ ।।
देखि तुही छींके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ ।
तु ही निरखि नन्हें कर अपनें, मैं कैसें करि पायौ ।।
मुखि दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्हीं, दौना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ ।।
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ ।
'सूरदास' जसुमति कौ यह सुख,सिव-बिरंचि नहिं पायौ ।।

इसी प्रकार स्मित हास्य का एक दूसरा प्रसंग देखिये । राधिका माता से यशोदा के साथ अपने वार्तालाप की कथा कह रही है और माता अपनी पुत्री की बालोचित चपलता पर मन ही मन हँस रही है—

मेरे आगें महरि जसोदा, मैया री ! तोहि गारी दीन्ही ।
वाकी बात सबै मैं जानति, वै जैसी, तैसी मैं चीन्ही ।।
तो कौं कहि, पुनि कह्यौ बबा कौं, बड़ौ धूर्त वृषभान ।
तब मैं कह्यौ, ठग्यौ कब तुम कौं, हँसि लागी लपटान ।।
भली कही तैं मेरी बेटी ! लयौ आपुनौ दाउ ।
जो मुहि कह्यौ, सबै उनके गुन, हँसि-हँसि कहति सुभाउ ।।
फेरि-फेरि बूझति राधा सौं, सुनति हँसति सब नारि ।
"सूरदास" वृषभान-घरनि, जसुमति कौं गावति गारि ।।

उद्धव-गोपी संवाद में सूरदास ने गोपियों द्वारा उद्धव के निर्गुण ज्ञ मज़ाक उड़ाते हुए भी हास्य रस का सुंदर प्रदर्शन किया है—

निर्गुन कौन देस कौ बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन, भेस है कैसौ, केहि रस कें अभिलासी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपुनौ, जो रे ! गहैगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यौ सौ, "सूर" सबै मति नासी ।।

३. वीर रस—

(१) गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ,
झटकि लीन्हों तुरत पटकि धरनी ।
भटक अति सब्द भयौ, खटक नृप के हिऐं,
अटक प्रानन परयौ चटक करनी ।।

लटकि निरखन लग्यौ, मटकि सब भूलि गयौ,
हटकि गयौ गटक सब, मीच जागी ।
मुष्टिकै मरदि, चाणूर चुरकट करयौ,
कंस कौं कंप भयौ, रंग-भूमि अनुराग रागी ॥

(२) देखि नृप तमकि, हरि चमक तहाँई गए,
दमकि लीन्हों गिरह बाज जैसे ।
धमकि मारयौ, घाउ गुमकि हृदयै रह्यौ,
झमकि गहि केस, लै चले ऐसे ॥
ठेल हलधर दियौ, झेल तब हरि लियौ,
महल के तरें, धरनी गिरायौ ।
अमर जय-ध्वनि भई, धरनि-त्रिभुवन गई,
कंस मारयौ निदरि देवरायौ ॥
धन्य बानी गगन, धरनि-पाताल धन्य,
धन्य हो धन्य बसुदेव-ताता ।
धन्य अवतार सुर-धरनि उपकार कौं,
"सूर" प्रभु धन्य बलराम-भ्राता ॥

(१) आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ ।
तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु-सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि, महारथ खंडौं, कपिध्वज सहित डुलाऊँ ।
इती न करौं सपथ मोहि हरि की, छत्रिय-गतहिं न पाऊँ ॥
पांडव दल सनमुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ ।
"सूरदास" रन भूमि विजय बिनु, जियत न पीठ दिखाऊँ ॥

(शृंगार में वीर रस)

रुपे संग्राम-रति खेत नीके ।
एक तें एक रनबीर जोधा प्रबल, मुरत नहिं नैंक, अति सबल जी के ॥
भौंह कोदंड, सर नैन धानुषी काम, बाम छूटनि कटाच्छनि निहारें ।
हँसनि दुज-चमक, करि वरनि लौं है झलक, नखनि-छत घात नेजा सँभारें ॥
पीत पट डारि कंचुकी मोचति करनि, कवच-सन्नाह ए छुटे तन तें ।
भुजा-भुज धरति, मनों द्विरद सुंडनि लरति, उर-उरनि-भिरे,दोऊ जुरे मन तें ॥
लटकि लपटानि मानों सुभट लरि परे खेत, रति-सेज सरुचि बितान कीन्हे ।
'सूर' प्रभु रसिक प्रिय राधिका रसिकनी कोक-गुन सहित सुख लूटि लीन्हे ॥

नायिकाभेद की परिपाटी भरत कृत नाट्य शास्त्र से आरंभ होकर संस्कृत के लक्षण ग्रंथों में विकसित हुई है । सूर-काव्य में विविध नायिकाओं के रूप मिलते हैं; किंतु कवि का उद्देश्य नायिकाभेद का वर्णन करना नहीं है, बल्कि नायिकाओं की कतिपय मनोदशाओं के प्रकटीकरण द्वारा भगवत् लीला रस की अनुभूति कराना है । इसलिए सूर-काव्य में शृंखलाबद्ध नायिकाभेद का वर्णन नहीं किया गया है । इसमें भगवत् लीलाओं में नियोजित संयोग, वियोग, मान, उपलंभादि भावों के अनुरूप कतिपय नायिकाओं का ही कथन मिलता है।

रीति कालीन कवियों ने नायिका की जिस प्रकार परिभाषा की है, वह उनके वासनापूर्ण दृष्टिकोण का परिचायक है । भक्त कवियों का नायिका विषयक दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है; फिर भी वह अपने परवर्ती रीति कालीन कवियों के लिए प्रेरणा प्रद रहा है । सूरदास ने कृष्ण-प्रिया राधा नागरी के अनेक रसपूर्ण कथन प्रस्तुत किये हैं; जिनसे रीति कालीन कवियों ने प्रेरणा प्राप्त की होगी । सूरदास कहते हैं—

मोहिनी मोहन की प्यारी ।
रूप उदधि मथिकैं बिधि, हठि पचि रची जुबति यह न्यारी ।
चंपक कनक कलेबर की दुति, ससि न बदन समता री ।
खंजरीट मृग - मीन की मृदता, नैननि सबै निवारी ।।
भृकुटी कुटिल सुदेस सोभित अति, मनहु मदन - धनुधारी ।
भाल बिसाल, कपोल अधिक छवि, नासा द्विज मद-गारी ।।
अधर बिंब - बंधूक - निरादर, दसन कुंद अनुहारी ।
परम रसाल, स्याम सुखदायक, बचननि सुनि पिक हारी ।।
कबरी अहि गुन हेम खंभ लगि, ग्रीव कपोत बिसारी ।
बाहु मृनाल जु उरज कुंभ गज, निम्न नाभि सुभगारी ।।
मृग-नृप खीन सुभग कटि राजति, गंध जुगल रंभा री ।
अरुन रुचिर जु बिडाल रसन सम, चरन तली ललिता री ।।
जहँ तहँ दृष्टि परत तहँ अरुझति, भरि नहिं जाति निहारी ।
'सूरदास' प्रभु रस बस कीन्हे, अंग - अंग सुखकारी ।।

नायिकाभेद के अनुसार नायिका के स्वकीया, परकीया और गणिका— तीन भेद कहे गये हैं । इनमें गणिका का प्रेम धन के प्रति होने से निकृष्ट समझा गया है, अत भक्त कवियों ने उसे त्याज्य समझा है उन्होंने नायिका के स्वकीया और परकीया रूपों का ही कथन किया है इनमें भी भक्तों ने अपनी

अपनी भावना के अनुसार किसी ने स्वकीया प्रेम को और किसी ने परकीया प्रेम को कृष्ण-भक्ति के लिए आवश्यक माना है ।

पुष्टि संप्रदाय में स्वकीया भक्ति का महत्व है, अतः सूर-काव्य में स्वकीया नायिका के अनुकूल अज्ञातयौवना से लेकर मध्या, प्रौढ़ा नायिकाओं के प्राय. समस्त भेदोपभेदों का समावेश हो गया है । चैतन्य संप्रदाय की भाँति वल्लभ सप्रदाय में परकीया भक्ति ग्राह्य नहीं है, अतः सूर-काव्य में परकीया नायिका के कथन कम मिलते हैं । वल्लभ संप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुसार राधा जी स्वकीया और चंद्रावली जी परकीया हैं । गोपियों में अधिकांश ने स्वकीया भाव से ही श्री कृष्ण से प्रेम किया था, इसलिए उनके वर्णन में भी स्वकीया तत्व का प्राधान्य है; किंतु उनके प्रेमानुराग और तत्संबंधी उनकी विविध चेष्टाओं में कही-कही परकीया तत्व की भी अभिव्यंजना हो जाती है । इसके अतिरिक्त सूर-काव्य में गर्विता, मानवती आदि दशानुसार तथा प्रोषित-पतिका, अभिसारिका, खंडिता आदि अवस्थानुसार नायिकाओं के बड़े विस्तृत वर्णन मिलते है । रीति कालीन कवियों की भाँति सूरदास ने लक्षण सहित नायिकाओं का नामोल्लेख नहीं किया है, तब भी उनके पदों में नायिकाभेद की अधिकांश नायिकाओं का कथन हो गया है । यहाँ पर हम उनके कुछ ऐसे पद उपस्थित करेंगे, जिनमें नायिकाभेद के अनुकूल कथन किये गये हैं।

निम्न लिखित पदों मे प्रौढ़ा के अंतर्गत 'रतिप्रीता' और 'आनंद समोहिता' नायिकाओं के अनुकूल तत्व मिलते हैं—

(१) नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम पस पागे ।
अंतर बन-बिहार दोउ क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागे ॥
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे ।
मानहुँ बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे ॥
कबहुँक बैठि अंस भुज धरिकै, पीक कपोलनि दागे ।
अति रस-रासि लुटावत लूटत, लालचि लाल सभागे ॥
मानहुँ "सूर" कलपद्रुम की निधि, लै उतरी फल आगे ।
नहि छूटति रति रुचिर भामिनी, वा सुख में दोउ पागे ॥

(२) नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपने उर धरिया ॥
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर, स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया ।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकत मनि कंचन में जरिया ॥
उपमा काहि देउँ, को लाइक, मनमथ कोटि वारनै करिया ।
'सूरदास' बलि-बलि जोरी पर, नंद कुँवर वृषभानु कुँवरिया ॥

चकृत भए नंद, सब महर चकृत भए,
चकृत नर-नारि, हरि करत ख्याला ।।
घटा घनघोर घहरात, अररात,
दररात सररात, ब्रज-लोग डरपें ।
तड़ित आघात, तररात, उतपात सुनि,
नर-नारि सकुचि तनु-प्रान अरपें ।।

८. रौद्र रस—

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ ।
ब्रज घालनि करौं चुरकट, देउँ धरनि मिलाइ ।।
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ ।
जल बरसि ब्रज धोइ डारौं, लोग देउँ बहाइ ।।
खात खेलत रहैं नीके करि उपाधि बनाइ ।
बरस दिवस मोहि देत पूजा, दई सोउ मिटाइ ।।
रिस सहित सुर साज लीन्हें, प्रबल मेघ बुलाइ ।
"सूर" सुरपति कहत पुनि-पुनि, परौ ब्रज पर धाइ ।।

९. शांत रस—

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है; किंतु ३३ संचारी भावों में निर्वेद संचारी का नाम भी आता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम 'निर्वेद स्थायी' और 'निर्वेद संचारी' के अंतर को समझ लें। इष्ट की प्राप्ति न होने से जहाँ संसार से क्षणिक विरक्ति होती है, वहाँ निर्वेद संचारी होता है, किंतु जहाँ भगवान् के प्रति आसक्ति होने पर संसार से स्थायी विरक्ति हो जाती है, वहाँ शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद होता है। सूर ने दोनों प्रकार के निर्वेद का वर्णन किया है।

निर्वेद-संचारी—

अब या तनहिं राखि कह कीजै ।
सुनि री सखी स्याम सुंदर बिनु, बाँट बिषम बिष पीजै ।।
कै गिरियै गिरि चढ़ि सुनि सजनी, सीस संकरहिं दीजै ।
कै दहियै दारुन दावानल, जाइ जमुन धँस लीजै ।।
दुसह बियोग बिरह माधौ के, को दिन ही दिन छीजै ।
'सूर स्याम' प्रीतम बिनु राधे, सोचि-सोचि कर मींजै ।।

निर्वेद-स्थायी —

(१) नर ! तैं जनम पाइ कहा कीनौ ?
उदर भरयौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ।।
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरु गोबिंद नहिं कीनौ ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषयन में दीनौ ।।
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया के भीनौ ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बल हीनौ ।।
लख चौरासी जौनि भरमि कैं, फिरि वाहीं मन दीनौ ।
"सूरदास" भगवंत भजन बिनु, ज्यौं अंजलि - जल छीनौ ।।

(२) जनम सिरानौ अटकैं-अटकैं ।
राज-काज, सुत-बित की डोरी, बिन विवेक फिरयौ भटकैं ।।
कठिन जु गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकैं ।
ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीच ही लटकैं ।।
ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं ।
"सूरदास" सोभा क्यौं पावै, पिय विहीन धनि मटकैं ।।

सूर-काव्य में नायिकाभेद—

काव्य शास्त्र के अनुसार नायिकाभेद आलंबन विभाव के अंतर्गत श्रृंगार रस का एक उपांग मात्र है; किंतु रीति-कालीन कवियों ने उसका ऐसा विशद एवं सांगोपांग कथन किया है कि वह एक स्वतंत्र विषय ही बन गया है।

भक्ति कालीन कवियों ने अपने भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति के लिए अपने इष्ट देव का श्रृंगार रस पूर्ण कथन करने की पद्धति प्रचलित की थी, जिसमें नायिकाभेद का भी समावेश हो गया था। रीति कालीन कवियों को भक्त कवियों के नायिका-वर्णन के रूप में श्रृंगारिक कथन की एक आकर्षक शैली प्राप्त हुई, जिसमें आलंबन का भेद कर उन्होंने अपना चमत्कारिक कवित्व उपस्थित किया। उन्होंने लक्षण और उदाहरण के रूप में नायिकाभेद का ऐसा व्यापक वर्णन किया कि वह श्रृंगार रस के उपांग की कोटि से निकल कर स्वयं एक शास्त्र बन गया है।

भक्ति कालीन कवि होने के कारण सूरदास ने नायिकाभेद का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत नहीं किया है, किंतु उनके श्रृंगारिक कथन में नायिकाभेद का स्वाभाविक विकास है। कुछ विद्वान "साहित्य-लहरी" की रचना में रीति-कालीन कवियों की सी प्रवृत्ति पाते हैं, किंतु इसमें भी नायिकाओं का लक्षण रहित वर्णन है, जो रीति कालीन प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

४. करुण रस—

(१) अति मलीन वृषभान-कुमारी ।
हरि-स्रम-जल अतर तनु भीजे, ता लालच न धुवावति सारी
अधोमुख रहति, उरधि नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुवारी
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी
हरि-संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिन दूजै अलि जारी
"सूर" स्याम बिनु यों जीवति हैं, ब्रज-बनिता सब स्याम-दुलारी ।

(२) देखो मैं लोचन चुअत अचेत ।
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत, ऊरध स्वांस न लेत ।
स्रवन न सुनत चित्र-पुतरी लौं, समुझावत जितनेत ।।
कहुँ कंकन, कहुँ गिरी मुद्रिका, कहुँ ताटंक, कहुँ नेत ।
धुज होइ सूखि रही "सूरज" प्रभु, बँधी तुम्हारे हेत ।।

५. वीभत्स रस—

सूरदास के काव्यानुकूल न होने के कारण वीभत्स रस का एक भी उदाहरण नहीं मिलता है ।

६. अद्भुत रस—

(१) कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरषि-हरषि अपने रँग खेलत ।।
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यौ, सागर-जल झेलत ।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत ।।
मुनि-मन भीत भए, भुवि कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत ।
उन ब्रज-बासिन बात न जानी, समझे "सूर" सकट पग ठेलत ।।

(२) मुरली सुनत अचल चले ।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल वृच्छहु फले ।।
पय स्रवत गोधननि थन तें, प्रेम पुलकित गात ।
झुरे द्रुम, अंकुरित पल्लव, बिटप चंचल पात ।।
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि ।
धरनि उमँगि, न रहति थिर चित, जती जोग बिसारि ।।
ग्वाल घर-घर सहज सोवत, रहे सहज सुभाय ।
"सूर" प्रभु रस-रास के हित, सुखद रैनि बढ़ाय ।।

देखौ अद्भुत अविगति की गति, कैसौ रूप धरचौ है।
तीन लोक जाके उदर-भवन, सो सूप के कौन परचौ है॥
जाके नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग व्रत साध्यौ।
ताकौ नाल छीन ब्रज-जुबती, बाँटि तगा सों बाँध्यौ॥
जिहि मुख कों समाधि सिव साधी, आराधन ठहराने।
सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध-लार लपटाने॥
जिन स्रवननि जन की विपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै।
तिन स्रवनन ह्वै निकट जसोदा, हलरावै अरु गावै॥
विस्व भरन-पोषन, सब समरथ, माखन-काज अरे हैं।
रूप विराट कोटि प्रति रोमन, पलना माँझ परे हैं॥
जिहि भुज-बल प्रहलाद उबारचौ, हिरनकसिप उर फारे।
सो भुज पकरि कहत ब्रज-नारी, ठाढ़े होहु लला रे॥
जाको ध्यान न पायौ सुर-मुनि, संभु समाधि न टारी।
सोई "सूर" प्रगट या ब्रज में, गोकुल-गोप बिहारी॥

यानक रस—

भहरात झहरात दावानल आयौ।
घेर चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन,
धरनि आकास चहुँ पास छायौ॥
बरत बन बाँस, थहरत कुस-काँस,
जरि उड़त बहु झाँस, अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूल फल चटकि चट,
फटत लट लटकि द्रुम द्रुम नवायौ॥
अति अगिनि-झार, भंभार धुंधार करि,
उचटि अंगार झंझार छायौ।
बरत बन-पात, भहरात, झहरात,
अररात तरु महा धरनी गिरायौ॥

) मेघ-दल प्रबल ब्रज-लोग देखें।
चकित जहँ-तहँ भए, निरखि बादर नए,
ग्वाल-गोपाल डरि गगन पेखें॥
ऐसे बादर सजल करत अति महा बल,
चलत घहरात करि अंध-काला।

निम्न लिखित पद में अधीरा नायिका के अनुकूल कथन हुआ है—

मोहि छुवौ जिनि दूरि रहौ जू ।
जाकों हृदय लगाइ लई है, ताकी बाँह गहौ जू ॥
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी और दासी ।
मैं देखति हिरदै वह बैठी, हम तुमकों भई हाँसी ॥
बाँह गहत कछु सरम न आवत, सुख पावत मन माँही ।
सुनहुँ 'सूर' मो तन कों इकटक चितवति, डरपति नाँहीं ॥

परकीया प्रेम के उदाहरण सूर-काव्य में कम मिलते हैं, फिर भी लिखित पदों में परकीया नायिका के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

(१) पलक ओट नहिं होत कन्हाई ।
घर गुरुजन बहुतै बिधि त्रासत, लाज करावत लाज न आई ॥
नयन जहाँ दरसन हरि अटके, स्रवन थके सुनि बचन सुहाई ।
रसना और नहीं कछु भाषत, स्याम-स्याम रट रहै लगाई ॥
चित चंचल संगहिं सँग डोलत, लोक-लाज-मर्याद मिटाई ।
मन हरि लियौ "सूर" प्रभु तबहीं, तनु बपुरे को कहा बसाई ॥

(२) थकित भए मोहन-मुख-नैन ।
घूँघट ओट न मानत कैसेंहुँ, बरजत-बरजत कीन्हौ गैन ॥
निदरि गई मर्यादा कुल की, अपनौ भायौ कीन्हौं ।
मिले जाय हरि आतुर ह्वै कैं, लूटि सुधा-रस लीन्हौं ॥

नायिकाभेद के आचार्यों ने परकीया नायिका के अंतर्गत 'वचन वि और 'क्रिया विदग्धा' का वर्णन किया है । सूरदास ने राधा और गोपि चेष्टाओं में कई स्थानों पर वचन और क्रिया की विदग्धता दिखलाई है । इन पदों में परकीयत्व की भावना न हो; किंतु इनमें विदग्धता अवश्य निम्न लिखित पद में 'वचन विदग्धा' नायिका के अनुकूल कथन हुआ है—

तब राधा इक भाव बतावति ।
मुर मुसुकाइ सकुचित पुनि लीन्हौं, सहज चली अलकें निरवारति ॥
एक सखी आवत जल लीन्हें, तासों कहति सुनावति ।
टेरि कह्यौ घर मेरे जैहौ, मैं जमुना तें आवति ॥
तब सुख पाइ चले हरि घर कों हरि त्यारीहिं मनावत ।
'सूरज प्रभु चितपष्ट कोक-गन साते हरि-हरि ।

निम्न लिखित पद में 'क्रिया विदग्धा' के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

स्याम अचानक आय गये री।
मैं बैठी गुरु जन बिच सजनी, देखत ही मेरे नैन नये री॥
तब इक बुद्धि करी मैं ऐसी, बेंदी सों कर परस किये री।
आपु हँसे उत पाग मसकि हरि, अंतरयामी जान लिये री॥
लै कर कमल अधर परसायौ, देखि हरषि पुनि हृदय धरयौ री।
चरन छुए दोउ नैन लगाए, मैं अपने भुज अंक भरयौ री॥
ठाढ़े रहे द्वार अति हित करि, तब ही तें मन चोरि गयौ री।
"सूरदास" कछु दोष न मेरौ, उत गुरुजन इत हेतु नयौ री॥

दशानुसार भेदों में मानवती नायिका का प्रमुख स्थान है। नायक के दोष का अनुमान कर नायिका का कोप पूर्वक मान करना और नायक द्वारा उसे मनाना शृंगारिक प्रकरण का महत्वपूर्ण अंग है। सूरदास ने 'मानवती' नायिका का इस प्रकार कथन किया है—

कहा भई धन बावरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ।
तुमतें को है भावतो, जाहिं हृदय बसाऊँ॥
तुमहिं स्रवन, तुम नैन हो, तुम प्रान अधारा।
वृथा क्रोध तिय क्यों करौ, कहि बारंबारा॥
भुज गहि ताहि बतावहू, जो हृदय बतावति।
"सूरज" प्रभु कहि नागरी, तुम तें को भावति॥

सूर-काव्य के नायक श्री कृष्ण हैं, जो शृंगार रस के देवता कहे गये हैं। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए उनका अवतार होता है। उनके भक्त गण विभिन्न स्थानों में उनकी लीला में सम्मिलित होना चाहते है। गोपियाँ श्रुतिरूपा हैं, जो उनसे रमण करने की इच्छा से ही अवतरित हुई हैं। इस प्रसंग में श्री कृष्ण का रूप नायिका-नायक भेद के अनुसार 'अनुकूल' न होकर 'दक्षिण' है। 'खंडिता' प्रकरण से इस बात की भली भाँति पुष्टि होती है, किंतु हास-परिहास के रूप में वे कहीं-कहीं 'शठ' नायक के रूप में भी दिखलाई देते हैं। राधा जी श्री कृष्ण से मिलने के लिए बंशी देने के बहाने उनके निकट आती हैं। उस समय का एक पद है—

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुनि जसुमति संग छाँड़ि आपनो, कुँवर जगाइ दैन हौं आई॥
सुनतहिं बचन बिहँसि उठि बैठे, अंतरजामी कुँवर कन्हाई।
याके संग हुती मेरी पहुँची, दै राधे! वृषभान दुहाई॥
मैं नाँहिन चित लाइ निहारयौ, चलौ ठौर सब देउँ बताई।
'सूरदास' प्रभु मिलि अंतरगत दुहुँनि पढ़ी एकै चतुराई॥

कृष्ण के साथ उनके सखा हैं, किंतु वे उनके खेल के ही साथी हैं माधुर्य-भावना में उन सखाओं का कोई स्थान नहीं है। उसके संपाद, सखियाँ और दूतियाँ हैं। वे कृष्ण का विरह-संदेश राधा के पास प और विविध उपायों से उन्हें कृष्ण से मिलाती हैं।

निम्न लिखित पद में एक दूती मानवती नायिका से अपना मान प्रियतम से मिलने का आग्रह कर रही है। इस पद में वर्षा ऋतु क प्रभाव भी बतलाया गया है—

यह रितु रूसिबे की नाँहीं।
बरसत मेघ मेदिनी के हित, प्रीतम हरषि मिलाहीं॥
जेती बेलि ग्रीषम ऋतु डाहीं, ते तरुवर लपटाहीं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीं॥
जोबन धन है दिवस चारि कौ, ज्यों बदरी की छाँहीं।
मैं दंपति-रस-रीति कही है, समुझि चतुर मन माँहीं॥

अवस्था के अनुसार दश विध नायकाओं का कथन किया जाता लिखित पद में 'वासकसज्जा' नायिका के अनुकूल कथन किया गया है

राधा रचि-रचि सेज सँभारति।
भवन गमन करि हैं हरि मेरे, हरषि दुखहिं निरबारति
ता पर सुमन सुगंध बिछावति, बारंबार निहारति॥

निम्न लिखित पद में "उत्कंठिता" नायिका की प्रिय-मिलन उत्सुकता दिखलायी गयी है—

चंद्रावली स्याम मग जोवति।
कबहुँ सेज कर झारि सँवारति, कबहुँ मलय-रज भोवति॥
कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै-लै पुनि धोवति।
कबहुँ भवन कबहुँ आँगन ह्वै, ऐसे रैनि बिगोवति॥
कबहुँक विरह जरति अति व्याकुल, आकुलता मन मोवति।
"सूरस्याम" बहु रमनि-रमनपिय', यह कहि तब गुन तोवति।

निम्न लिखित पद 'अभिसारिका' नायिका का उदाहरण है—

प्यारी अंग सिंगार कियौ।
बेनी रची सुभग कर अपने टीकौ भाल दियौ॥
मोतियन माँग सँवारि प्रथम ही, केसरि-आड़ सँवारि।
लोचन आँजि, स्रवन तरवन छबि, को कवि कहै निवारि॥
नासा नथ अति ही छवि राजत, अधरनि बीरा रंग।
नवसत साजि चली चोली बनि, "सूर" मिलन हरि संग॥

निम्न लिखित पद में 'विप्रलब्धा' के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

सोचति चली कुँवर घर ही तें, खरिकहिं गइ समुहाइ।
कब देखौं वह मोहन मूरति, जिन मन लियौ चुराइ॥
देखौ जाइ तहाँ हरि नाँहीं, चकृत भई सुकुमारि।
कबहूँ इत, कबहूँ उत डोलत, लागी प्रीति खुमहारि॥

सूरदास के पदों में 'खंडिता' नायिका के अनुकूल कथन प्रचुर परिमाण मे मलते हैं। निम्न लिखित पद में प्रातःकाल आये हुए नायक के तन प र-स्त्री संसर्ग के चिह्नों का कथन किया गया है—

जानति हौं जैसे गुननि भरे हो।
काहे कों दुराव करत मनमोहन, सोइ पै कहो तुम जहाँ ढरे हो॥
निसि जागत, निज भवन न भावत, आलसवंत सब अंग धरे हो।
चंदन तिलक मिल्यौ कहाँ बंदन, काम कुटिल कुच उर उघरे हो॥
तुम अति कुसल किसोर नंद-सुत, कहो कौन के चित्त हरे हो।
औचक ही जिय जानि "सूर" प्रभु, सौंह करन कों होत खरे हो॥

सूरदास ने वियोग शृंगार का बड़ा मार्मिक कथन किया है। उन्होंने से अनेक पदों की रचना की है, जिनमें 'प्रोषितपतिका' विरहणी नायिका के नुकूल कथन प्राप्त होता है। श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् गोपियों ा करुण क्रंदन इसी प्रकार का है।

स्याम सिधारे कौनें देस।
(१) तिनकौ कठिन करेजौ सखि री, जिनकौ पिय परदेस॥
उन माधौ कछु भली न कीन्हीं, कौन तजन कौ वेस।
छिन भर प्रान रहति नहिं उन बिनु, निसि-दिन अधिक अंदेस॥
अतिहिं निठुर पतियाँ नहिं पठई, काहू हाथ संदेस।
'सूरदास' प्रभु यह उपजत हैं, धरियै जोगिन बेस॥

(२) बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि, नैनन की परतीति गई।
उड़ि न मिले हरि संग विहंगम, ह्वै न गए घनस्याम मई॥
याते क्रूर कुटिल सह मेचक, वृथा मीन-छवि छीनि लई।
रूप-रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई॥
अब काहे सोचत, जल मोचत, समय गए नित सूल नई।
'सूरदास' याहीं तें जड़ भए जब तें पलकन दगा दई॥

३. सूर-काव्य की कलात्मकता

भक्ति और कला का मिश्रण—

यद्यपि सूरदास अपने काव्य-महत्व के कारण हिंदी कवियों के मुकुट-मणि माने जाते हैं, तब भी यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने कवि के दृष्टिकोण से अपने काव्य की रचना नहीं की है। उनके काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे पहले भक्त हैं और बाद में कवि। अपने इष्टदेव की भक्ति-भावना में आनंद विभोर होकर उन्होंने जो कुछ गाया है, वह भक्ति-काव्य की श्रेष्ठतम कृति है, इसलिए वह भक्ति रस से ओत-प्रोत है; किंतु साथ ही साथ उसमें काव्य-कला के भी समस्त गुण विद्यमान हैं। इन गुणों को लाने के लिए उनको अपनी ओर से कुछ चेष्टा नहीं करनी पड़ी है। उनके स्वाभाविक भक्ति-काव्य के धारावाही महानद में काव्य-कला के अनेक गुण छोटे-बड़े नदी-नालों की तरह स्वयं आकर मिल गये हैं! अवश्य ही इनके कारण उनके काव्य का महत्व और भी अधिक हो गया है। यहाँ पर हम कला की दृष्टि से सूर-काव्य की आलोचना करेंगे।

कोई कवि अपने भावों को किस प्रकार चमत्कारी ढंग से व्यक्त करता है, इसकी छान-बीन करना उक्त कवि के कला-कौशल की आलोचना कहलाती है। कवि गण शब्द अथवा अर्थ द्वारा अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। इस काव्योक्त चमत्कार को काव्य शास्त्रियों ने 'अलंकार' कहा है, जो शब्दालंकार और अर्थालंकार के नाम से दो वर्गों में विभाजित है। शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार होने से उभयालंकार कहा जाता है। कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि के लिए अलंकार रूपी वस्त्राभूषण यदि अनिवार्य नहीं, तो कुछ न कुछ आवश्यक अवश्य हैं। दंडी आदि प्राचीन आचार्यों ने अलंकार को काव्य की आत्मा बतलाया है। अन्य आचार्यों ने भी किसी न किसी रूप में इसका महत्व माना है।

हिंदी कवियों में दो प्रकार के कवि पाये जाते हैं। इनको भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष के रूप में दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। साधारण-तया भक्ति-कालीन कवि भाव-पक्ष के एवं रीति-कालीन कवि कला-पक्ष के कवि कहे जाते हैं। सूरदास यद्यपि भाव-पक्ष के कवि हैं, तथापि उनकी भाव-रूपी भागीरथी में कला रूपी कालिंदी भी आ मिली है। इस संगम के फल स्वरूप उनका काव्य अतीव हो गया है

काव्य-कला और अलंकार—

काव्य की कलात्मकता अथवा उसकी चमत्कारिक शैली के विवेचन के लिए अलंकारों पर सर्व प्रथम दृष्टि जाती है । सूर-काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें अलंकारों के सर्वोत्कृष्ट रूप का भी समावेश है । सूरदास की अलंकार-योजना केशवदास जैसे चमत्कारवादी कवि की भाँति साध्य रूप मे नहीं है, वरन् वह भाव-पक्ष की अभिव्यंजना का साधन मात्र बन कर आई है ।

रीति काल के कुछ कवियों ने अलंकारों के अपरिमित आग्रह में अपने काव्य के स्वरूप को ही बिगाड़ लिया है । उनके काव्य में अलंकारों की इतनी अधिकता है कि वे कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि करने की अपेक्षा उसके लिए भार स्वरूप हो गये है ! इस प्रकार के कवियों की भाँति सूरदास अलंकारो के पीछे नहीं पड़े हैं, वरन् स्वयं अलंकार ही भावुक भक्तों की भाँति उनकी कविता देवी का शृंगार करने को उपस्थित हो गये है ।

वास्तविक बात यह है कि अंधे कवि सूरदास को सप्रयास कविता लिखने का सुयोग ही कहाँ था ! वे तो नियमित कीर्तन के रूप में अपनी भक्ति-भावना के प्रसूनों की श्रद्धांजलि श्रीनाथ जी के चरणों में प्रति दिन अर्पित किया करते थे । इस कीर्तन के फल स्वरूप धारावाही रूप में जो काव्य-रचना होती थी, उसमें अलंकारों का भी उचित रूप में स्वतः समावेश हो जाता था । इसके इसके लिए उनके मस्तिष्क को कठिन व्यायाम करने की आवश्यकता नही होती थी ।

दृष्टकूट पदों की कलात्मकता—

उनके दृष्टकूट पदों को उपर्युक्त कथन के अपवाद स्वरूप उपस्थित किया जा सकता है । इस प्रकार के पद सूरसागर में भी हैं, किंतु उनकी 'साहित्य-लहरी' तो इसी प्रकार की शैली में ही रची गई रचना है । 'साहित्य-लहरी' के दृष्टकूट पदों में सूरदास भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष का आग्रह करते हुए दिखलाई देते हैं, इसलिए कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना ही नहीं मानते हैं । हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं कि साहित्य-लहरी निश्चय पूर्वक सूरदास की कृति है । उसकी रचना का जो विशेष हेतु था, वह बतलाया जा चुका है । यहाँ पर उसके [illegible] रूप के विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है

जहाँ तक 'सूरसागर' के दृष्टकूट पदों का संबंध है, उनकी सार्थकता भी स्वयंसिद्ध है। "परोक्ष प्रियाह वै देवा"—देव को परोक्ष गानादि प्रिय होते हैं—इस श्रुति वाक्य के अनुसार सूरदास ने दृष्टकूट पदों द्वारा अपने इष्टदेव का परोक्ष गायन किया है, अतः इन पदों को कला-प्रदर्शन की अपेक्षा परोक्ष गायन के साधन मानना ही उचित है। तभी हम सूरदास के साथ वास्तविक न्याय कर सकते हैं।

सूरदास का एक दृष्टकूट पद देखिये—

देखौ सखि ! अकथ रूप अनूप ।
एक अंबुज मध्य देखियत, बीस दधिसुत जूथ ॥
एक सुक तहँ दोय जलचर, उभै अर्क सरूप ।
पाँच वारिज एक ही ढिंग, कहो कौन स्वरूप ?
भई सिसु गति माँहि सोभा, करौ अर्थ बिचारि ।
"सूर" श्री गोपाल की छबि, राखिऐ उर धारि ॥

इस पद के आरंभ में जो समस्या उपस्थित की गई है, उसका अंत में उत्तर भी दे दिया गया है। इस पद के अलंकारिक कथन द्वारा सूरदास ने बुद्धिवादियों के सम्मुख एक पहेली सी उपस्थित की है; किंतु वास्तव में उनका अभिप्राय भगवान् श्री कृष्ण की बाल-छबि का गायन करना है।

सूर-काव्य के अलंकार—

वैसे तो सूरदास के काव्य में सभी प्रमुख अलंकारों का समावेश है, तथापि कुछ चुने हुए अलंकार उनको विशेष प्रिय ज्ञात होते हैं। ये अलंकार उनके काव्य में पग-पग पर दिखलाई देते हैं। भाव-पक्ष के कवि होने के कारण उनके काव्य में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का आधिक्य है। अर्थालंकारों में भी साहश्यमूलक—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि—अलंकारों का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। इन अलंकारों के द्वारा उन्होंने अपने भावों का चित्र सा खींच दिया है।

सूर-काव्य में भाव-सौंदर्य के साथ ही साथ भाषा का लालित्य भी दर्शनीय है, इसलिए इसमें शब्दालंकार भी जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक प्रधान हैं। इन अलंकारों का उत्कृष्ट रूप सूर-काव्य में मिलता है। कुछ आचार्यों ने श्लेष और वक्रोक्ति को भी शब्दालंकारों के अंतर्गत माना है, किंतु उनको अर्थालंकारों में ही रखना उचित है। 'साहित्य-लहरी' में श्लेष एवं यमक का प्राधान्य है और 'भ्रमरगीत' में वक्रोक्ति की छटा दिखलाई देती है

रदास के निम्न लिखित पदों में अनुप्रासों की छटा देखिये—

जागिए गोपाल लाल, आनँदनिधि नंद-बाल,
जसुमति कहै बार-बार भोर भयौ प्यारे।
नैन कमल-दल बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
मदन ललित बदन ऊपर, कोटि वारि डारे॥ ×
सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल - जाल, दुख - कदंब टारे।
त्यागे भ्रम - फंद - द्वंद, निरखि के मुखारबिंद,
"सूरदास" अति अनंद, मेटे मद भारे॥
जागिए गोपाल लाल, प्रगट भई अंसु-माल,
मिट्यौ अंध - काल, उठौ जननी सुखदाई।
मुकुलित भए कमल-जाल, कुमुद वृंद बन बिहाल,
मेटहु जंजाल, त्रिविध ताप तन नसाई॥
ठाडे सब सखा द्वार, कहत नंद के कुमार,
टेरत है बार - बार, आइऐ कन्हाई। ×
धेनु दुहन चले धाइ, रोहिनी लई बुलाइ,
दोहिनी मोहि दै मँगाइ, तब ही लै आई॥ ×
चटकीलौ पट, लपटानौ कटि बंसीवट—
जमुना के तट पर नागर नट।
मुकुट की लटक, मटक भ्रकुटी देख,
कुंडल चटक आछी, सुबरन की लटक॥
उर सोहै बन-माल, कर टेकें द्रुम डार,
टेढ़े ठाड़े नंदलाल, सोभा भई घट-घट।
"सूरदास" प्रभु की बानक, देखें गोपी-ग्वाल,
निपट निकट यह आवै सौंधे की लपट॥

रदास के कथन की शैली ही इस प्रकार की है कि इसमें सादृश्य मूल
ों के समावेश का अधिक अवसर रहता है। सादृश्यमूलक अलंकारो
रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रमुख स्थान है; अतः सूर-काव्य में इन
न उदाहरण भरे पड़े हैं। यहाँ पर उपमा अलंकार के कुछ उदाहर
ते है, जिनसे सूरदास की कल्पना की उड़ान जानी जा सकती है—

सुधा सरोवर, छिदकि अनूपम।
ग्रीव कपोत मनों नास कीर सम॥

कीर नासा, इंद्र-धनु भ्रू, भँवर से अलकावली ।
अधर विद्रुम, बज्र कन दाड़िम किधौं दसनावली ।।
खौर केसरि अति बिराजति, तिलक मृगमद को दियौ ।
काम रूप विलोकि मोह्यौ, बास पद अंबुज कियौ ।।१।।
हरि स्याम घन तन परम सुंदर, तड़ित बसन बिराजई ।
अंग-अंग भूषन सरस ससि-पूरनकला मनों भ्राजई ।।
कमल मुख-कर, कमल लोचन, कमल मृदु पद सोहहीं ।
कमल नाभिः, कमल सुंदर, निरखि सुर-मुनि मोहहीं ।।२।।

निम्न लिखित पद में सूरदास ने उपमाओं की झड़ी लगा दी ह
इसमें 'मालोपमा' अलंकार है—

स्याम भए राधा बस ऐसैं ।
चातक स्वाँति, चकोर चंद्र ज्यों, चक्रवाक रवि जैसैं ।।
ज्यों चकोर बस सरद चंद्र के, चक्रवाक बस भान ।
जैसे मधुकर कमल कोस बस, त्यौं बस स्याम सुजान ।।
ज्यों चातक बस स्वाँति बूँद है, तन के बस ज्यों जीय ।
"सूरदास" प्रभु अति बस तेरे, समझि देखि धौं हीय ।।

सूरदास के पदों में रूपक अलंकार भी प्रचुरता से मिलता है । रूप
एक भेद सांग अथवा सावयव रूपक होता है । रूप वर्णन में सूरदास
रूपक अलंकार की बड़ी सुंदर योजना की है। नीचे के उदाहरणों में साग
के भव्य चित्र देखिये—

(१) बरनौं बाल-भेष मुरारि ।
थकित जित-तित अमर-मुनि गन, नंदलाल निहारि ।।
केस सिर बिन पवन के, चहुँ दिसा छिटके झारि ।
सीस पर धरैं जटा मानों, रूप किय त्रिपुरारि ।।
तिलक ललित ललाट, केसर-बिंदु सोभाकारि ।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन, रह्यौ निज रिपु जारि ।।
कंठ कठुला नील मनि, अंभोजमाल सँवारि ।
गरल ग्रीव, कपोल उर, यहि भाय भए मदनारि ।।
कुटिल हरिनख हिऐं हरि के, हरषि निरखत नारि ।
ईस जनु रजनीस राख्यौ, भाल हू तें उतारि ।।
त्रिदसपति-पति असन कौं अति, जननि सों कर आरि ।
"सूरदास" बिरंचि जाकों, जपत निज मुख चारि ।।

सखी री ! नंदनंदन देखु ।
धूरि धूसरि जटा जूटनि, हरि किएँ हर भेषु ।।
नील पाट पिरोइ मनिगन, फनिग धोखौ जाइ ।
खुनखुना कर हँसत मोहन, नचत डौंरु बजाइ ।।
जलज-माल गोपाल पहिरें, कहौं कहा बनाय ।
मुंडमाल मनों हर-गर, ऐसि सोभा पाइ ।।
स्वांति-सुत माला विराजत, स्याम-तन यों भाइ ।
मनौं गंगा गौरि डर हर, लिएँ कंठ लगाइ ।।
केहरी के नखहिं निरखत, रही नारि बिचारि ।
बाल ससि मनों भाल तें लै, उर धर्‌यौ त्रिपुरारि ।।
देखि अंग अनंग डरप्यौ, नंदसुत कों जानि ।
"सूर" हियरे बसौ यह, स्याम-सिब कौ ध्यान ।।

म्नांकित पद में श्याम के शरीर की सागर से उपमा देते हुए कवि ने पक का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

देखौ माई सुंदरता कौ सागर ।
बुधि बिवेक बल पार न पावत, मगन होत मन नागर ।।
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि, कटि पटपीत तरंग ।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत, भँवर परत अंग-अंग ।।
मीन नैन, मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग ।
मुकुत-माल मिलि मानौं सुरसरि, द्वै सरिता लिएँ संग ।।
मोर मुकुट मनिगन आभूषन, कटि किंकिन नख चंद ।
मनु अडोल बारिधि मैं बिंबित, राका उडुगन बृंद ।।
बदन चंद्रमंडल की सोभा, अवलोकत सुख देत ।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत ।।
देखि सुरूप सकल गोपीजन, रहीं निहारि-निहारि ।
तदपि "सूर" तर सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचिहार ।।

नय संबंधी पदों में भी उन्होंने दार्शनिकता के साथ ही साथ कई ंदर रूपक उपस्थित किये हैं। भक्तवर सूरदास संसार-सागर का ाग चित्रण करते हुए अपने पतित-पावन प्रभु से प्रार्थना करते हैं—

अब कैं नाथ मोहि उधारि ।
मगन हौं भव-अंबुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि !
नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग ।
लिए जात अगाध जल कों गहे ग्राह अनंग ।।

मीन इंद्री तनहिं काटत, मोट अघ सिर भार ।
पग न इत-उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार ।।
क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना, पवन अति झकझोर ।
नाँहि चितवन देत सुत-तिय, नाम नौका ओर ।।
थक्यौ बीच बिहाल बिहवल, सुनौ करुनामूल ।
स्याम ! भुज गहि काढ़ि लीजै, 'सूर' ब्रज के कूल ।।

नीचे के पदों में अपने को पतितराज बतलाते हुए उन्होंने राजसी ठाट-बाट का कैसा शानदार कथन किया है—

हरि हौं ! सब पतितन कौ राजा ।
पर निंदा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा ।।
तृष्ना देस रु सुभट मनोरथ, इंद्री खड्ग हमारी ।
मंत्री काम कुमति दीबे कों, क्रोध रहत प्रतिहारी ।।
गज-अहंकार चढ्यौ दिग-बिजयी, लोभ छत्र धरि सीस ।
फौज असत-संगति की मेरें, ऐसौ हौं मैं ईस ।।
मोह-मया बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार ।
"सूर" पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार ।।

नीचे के पद में उन्होंने नृत्यकार के सांग रूपक द्वारा अपने दोष विस्तृत विवरण देते हुए उनके दूर करने की भगवान् से प्रार्थना की है—

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।।
महा मोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द रसाल ।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ।।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल ।।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल ।
"सूरदास" की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल ।।

सूरदास के काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार भी स्थान-स्थान पर दिख देते हैं । इन अलंकारों के सहारे उन्होंने अपने कथन को बड़ी सुंदरत व्यक्त किया है । निम्न लिखित पद में उन्होंने उत्प्रेक्षाओं की भी माल पिरोदी है—

देखन बन ब्रजनाथ आजु अति उपजति है अनुराग ।
मानहुँ मदन-बसंत मिले दोउ, खेलत फूले फाग ।।

झाँझ झालरन झर निसान ढफ, भँवर, भेरि गुंजार ।
मानहुँ मदन मंडली रचि, पुर-बीथिन करत बिहार ॥
द्रुम गन मध्य पलास-मंजरी, उड़त अगिन की नाईं ।
अपने-अपने घरें मनोहर, होरी हरषि लगाईं ॥
केकी, काग, कपोत और खग, करत कुलाहल भारी ।
मानहुँ लै-लै नाम परस्पर, देत-दिवावति गारी ॥
कुंज-कुंज प्रति कोकिल कूजत, अति रस विमल बढ़ी ।
मनो कुल-बधू बिना लज्जित भई, गावति अटन चढ़ी ॥
प्रफुलित लता जहाँ-तहाँ देखियत, तहाँ-तहाँ अलि जात ।
मानहुँ विटप बहुत अवलोकत, परसत गनिका गात ॥
बहु विधि सुमन अनेक रंग छवि, उत्तम भाँति धरे ।
मनु रतिनाथ हाथ से सबहिन, लौने रंग भरे ॥
और कहाँ लौं कहौं कृपानिधि ! वृंदा-विपिन विराज ।
"सूरदास" प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारे काज ॥

उक्त पद में बसंत और कामदेव दोनों की होली का बड़ा सुंदर वर्णन किया गया है । दोनों ही प्रस्तुत वस्तुएँ हैं । बसंत के साथ काम का आगमन होता है, किंतु कवि का उद्देश्य प्रकृति द्वारा अमूर्तिमान मनोज को उत्प्रेक्षा द्वारा मूर्तिमान करना है । इसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है और व्रज की होली का रूप हमारे सामने प्रत्यक्ष सा प्रस्तुत हो गया है ।

आगे के कुछ पदों में और उत्प्रेक्षाओं की भी बहार देखिए—

(१) गागरि नागरि लिऐं पनघट तें चली घरहिं आवै ।
ग्रीवा डोलत, लोचन लोलत, हरि के चितहिं चुरावै ॥
ठठकति चलै, मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै ।
मनहुँ काम-सैना अँग सोभा, अंचल ध्वज फहरावै ॥
गति गयंद, कुच, कुंभ किंकनी, मनहुँ घंट फहरावै ।
मोतिन-हार जलाजल मानौं, खुभी दंत झलकावै ॥
मानहुँ चंद्र महावत मुख पर, अंकुस बेसरि लावै ।
रोवली सुंडि तिरनीलौ, नाभि सरोसर आवै ॥
पग जेहरि जंजीरन जकर्यौ, यह उपमा कछु पावै ।
घट-जल झलकि, कपोलनि किनुका, मानौं मदहिं चुवावै ॥
बैनी डोलत दुहुँ नितंब पर, मानहुँ पूँछ हलावै ।
गज सिरदार "सूर" कौ स्वामी, देखि-देखि सुख पावै ॥

(२) कहाँ लों बरनों सुंदरताई ।
खेलत कुँवर कनक-आँगन में, नैन निरखि छवि पाई
कुलही लसत सिर स्याम सुभग अति, बहु विधि सुरंग बनाई
मानहुँ नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन, मोहन-मुख बगराई
मानहुँ प्रगट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिर आई
नील-सेत अरु पीत-लाल मनि, लटकत भाल रुलाई
सनि, गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि, मनु भौम सहित समुदाई

(३) रसना जुगल रसनिधि बोल ।
कनक बेलि तमाल अरुझी, सुभुज बंध अखोल ।
भृंगु-जूथ सुधाकरनि, मनों घन में आवत जात ।
सुरसरी पर तरनि-तनया उमँग तट न समात ।।
कोकनद पर तरनि तांडव, मीन खंजन संग ।
करति लाजें सिखर मिलिकै, युग्म संगम रंग ।।
जलद तें तारा गिरत, मानो परत पयनिधि माँहि ।
युग भुजंग प्रसन्न ह्वै कर कनक-घट लपटाहिं ।।

सूरदास के कुछ अपूर्व शब्द-चित्र देखिए । इसमें उत्प्रेक्षा अ सहारे श्री कृष्ण और राधिका के स्वरूप का कैसा भव्य चित्र खींचा ग

नटवर वेष काछे स्याम ।
पद कमल नख इंदु सोभा, ध्यान पूरन काम ।।
जानु जंघ सुघटनि करभा, नाँहि रंभा तूल ।
पीत पट काछिनी, मानहुँ जलज केसर झूल ।।
कनक छुद्रावली सोभित, नाभि कटि के भीर ।
मनहुँ हंस रसाल पंगति, रहे हैं ह्रद तीर ।।
झलक रोमावली सोभा, ग्रीव मोतिन हार ।
मनहुँ गंगा बीच जमुना, चली मिलि त्रय धार ।।
बाहु दंड विसाल तट दोउ, अंग चंदन रेनु ।
तीर तरु बन माल की छबि, ब्रज जुबति सुख देनु ।।
चिबुक पर अधरनि हसन दुति, बिंब बीज लजाइ ।
नासिका सुक नयन खंजन, कहत कवि सरमाइ ।।
स्रवन कुंडल, कोटि रवि-छबि, भृकुटी काम कोदंड ।
"सूर" प्रभु है नीप के तट, सिर धरें स्रीखंड ।।

निम्न पद में सूरदास ने राधिका के स्वरूप वर्णन में उत्प्रेक्षा अलंकार
ऽ अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर दिया है—

बरनौं श्री वृषभान-कुमारि ।
चित्त दै सुनहु स्याम सुंदर, छवि रति नाँहीं अनुहारि ।।
प्रथमहिं सुभग स्याम बेनी की, सोभा कहौ विचारि ।
मानहुँ फनिग रह्यौ पीवन कौं, ससि-मुख सुधा निहारि ।।
कहिऐ कहा सीस सेंदुर कौ, कितौ रही पचि हारि ।
मानहुँ अरुन किरनि दिनकर की, परसी तिमिर बिदारि ।।
भृकुटी विकट निकट नैननि के, राजत अति बर नारि ।
मनहुँ मदन जग जीति जेर करि, राख्यौ धनुष उतारि ।।
ता बिच बनी आड़ केसरि की, दीन्हीं सखिन सँवारि ।
मानहुँ बँधी इंदु - मंडल में, रूप - सुधा की पारि ।।
चपल नैन नासा बिच सोभा, अधर सुरंग सुनारि ।
मनहुँ मध्य खंजन सुक बैठ्यौ, लुब्ध्यौ बिंब बिचारि ।।
तरिवन सुघर अधर नकबेसरि, चिबुक चारि रुचिकारि ।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी पर, नाँहि उपमा कहुँ चारि ।।
सुरंग गुलाल भाल कुच मंडल, निरखत तन-मन वारि ।
मानहुँ निसि निधूँम अगिन के, तप बैठे त्रिपुरारि ।।

सूरदास ने 'रूपकातिशयोक्ति' अलंकार के सहारे राधा-कृष्ण के स्वर
ी कितने ही अद्‌भुत शब्द-चित्र खींचे हैं । निम्न लिखित प्रसिद्ध पद
ा के शरीर को अनुपम बाग बतलाते हुए उन्होंने उपमान द्वारा ही उपमे
बोध कराया है—

अदभुत एक अनूपम बाग ।
जुगल कमल पर गज वर क्रीड़त, ता पर सिंह करत अनुराग ।।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग ।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ।।
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृगमद, काग ।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर एक मनिधर नाग ।।
अंग-अंग प्रति और-और छवि, उपमा ताकौं करत न त्याग ।
"सूरदास" प्रभु ! पियहु सुधा-रस, मानहुँ अधरनि के बड़ भाग ।।

निम्न लिखित पद में रूपकातिशयोक्ति द्वारा श्री कृष्ण की रूप-माधु
वर्णन किया गया है इसमें नेत्र नासिका ओष्ठ दत आदि उपमे

का बोध उनके उपमान मीन, कीर, विद्रुम, दाड़िम-कण द्वारा ही कराया गया है—

> **नंदनंदन-मुख देखौ माई। × ×**
> **खंजन, मीन, कुरंग, भृंग वारिज पर, अति रुचि पाई ।**
> **स्रुति मंडल कुंडल विवि मकर सु, बिलसत मदन सहाई ॥**
> **कंठ कपोत, कीर, विद्रुम पर, दाड़िम-कननि चुनाई ।**
> **दुइ सारँग बाहन पर मुरली, आई देत दुहाई ॥**

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त सूर-काव्य में अन्य अलंकारों के भी उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं, जिनको स्थानाभाव से यहाँ पर देना संभव नहीं है ।

नख-शिख वर्णन—

सूरदास ने काल, अवस्था और परिस्थिति के अनुसार तो राधा-कृष्ण की रूप-माधुरी के अनेक शब्द-चित्र खींचे ही हैं, किंतु उन्होंने उनके विविध अंगों के पृथक्-पृथक् वर्णन भी किये हैं । सूरदासादि भक्त कवियों ने अपने मन को रमाने के लिए अपने उपास्य देव की अंग-छवि के वर्णन करने की पद्धति प्रचलित की थी, जो आगे चल कर नायिका-नायक के 'नख-शिख' के नाम से एक पृथक् विशाल साहित्य निर्माण का कारण हुई ।

वैसे तो सूरदास ने राधा-कृष्ण के अनेक अंगों का आकर्षक वर्णन किया है, तथापि उन्होंने सब से अधिक नेत्रों का कथन किया है । विविध उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों के सहारे उन्होंने नेत्रों का ऐसा अपूर्व चित्रण किया है कि उनकी अद्भुत उद्भावना और कल्पना की भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है।

छंद विधान—

सूरदास ने अपने अधिकांश काव्य की रचना गायन अथवा कीर्तन के लिए की थी, अतः इसमें पिंगल शास्त्रोक्त छंदों की अपेक्षा संगीत शास्त्रानुकूल गेय पदों की अधिकता है । उन्होंने अपने काव्य के वर्णनात्मक भाग में कुछ छंदो का भी प्रयोग किया है । यह भाग काव्य-परिमाण और काव्योत्कर्ष दोनो दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है ।

सूर-काव्य में जिन थोड़े छंदों का प्रयोग किया गया है, उनमें चौपाई, चौपई, दोहा, सोरठा और रोला मुख्य हैं । इनके अतिरिक्त और भी कुछ छंदो का प्रयोग किया गया है इन छंदों के प्रयोग में उन्होंने यथेष्ट [illegible] से काम लिया है

कला-पक्ष की अन्य बातें—

काव्य शास्त्र के आचार्यों ने काव्य कला संबंधी जिन विषयों का उल्लेख किया है, वे न्यूनाधिक रूप में प्राय: सभी सूर-काव्य में मिल जाते हैं। विभिन्न विषयों पर अनोखी उद्भावनाएँ, चमत्कार पूर्ण कल्पनाएँ और सूक्तियाँ सूर-काव्य में भरी पड़ी हैं। सूर के व्यंग्यात्मक कथन और उनकी वक्रोक्तियों ने उनके काव्य को अपूर्व सजीवता प्रदान की है, जिसके कारण पाठक का मन खिल उठता है। उनके कथन की शैली में प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की अधिकता है, जिनके कारण उनके काव्य की सरलता और सरसता दर्शनीय है। सूर-काव्य की प्रवाहमयी एवं सजीव भाषा ने उसे और भी गौरव प्रदान किया है। सारांश यह है कि भाव पक्ष के कवि होते हुए भी सूरदास के काव्य मे अलंकरण और कलात्मकता की भी कमी नहीं है।

४—सूर-काव्य की कुछ विशेषताएँ

सूर-काव्य धार्मिक एवं साहित्यिक विशेषताओं का भंडार है। इसकी प्रत्येक विशेषता पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु इस पुस्तक में उन सब पर संक्षिप्त रूप से विचार करने के लिए भी स्थान का अभाव है। हमने गत पृष्ठों में प्रसंग वश इनमें से कुछ पर प्रकाश डाला है। यहाँ पर कुछ अन्य विशेषताओं पर संक्षिप्त रूप से विचार किया जाता है।

ब्रजभाषा के वाल्मीकि—

संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदि कवि वाल्मीकि का है, ब्रजभाषा साहित्य में वही स्थान सूरदास को भी दिया जा सकता है। ब्रजभाषा साहित्य के आरंभक काल में ही सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा जैसा सर्वांग-पूर्ण काव्य उपस्थित किया, वैसा कई शताब्दियों के साहित्यिक विकास के उपरांत भी कोई कवि नहीं कर सका। यही एक बात सूर-काव्य की विशेषता को चरम सीमा पर पहुँचा देने वाली है।

परंपरा के निर्माता —

जहाँ तक ब्रजभाषा काव्य का संबंध है, सूरदास को अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्राय: कुछ भी प्रेरणा नही मिली है। सूरदास से पहले ब्रज के लोक-गीतकारों एवं संगीतज्ञों के गायनों में भाषा और भाव का जो रूप था, वह उच्च साहित्य के लिए नगण्य था। स्वयं सूरदास ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से जिन गेय पदों का निर्माण किया वे ही परवर्ती भक्त कवियों को प्रेरणा के

स्रोत सिद्ध हुए । इस प्रकार उन्होंने ब्रजभाषा के गेय काव्य की एक परंपरा प्रचलित की थी । उन्होंने पदों के साथ ही साथ दोहा, रोला, चौपाई, चौपई, दडक, घनाक्षरी, सरसी आदि छंदों का भी गेय रूप में प्रयोग किया है। उन्होंने दोहा और रोला को तथा अन्य दो छंदों को मिला कर एक अत्यंत मनोहर काव्य-रूप निर्मित किया, जिसका उपयोग बाद के अनेक कवियों ने भी किया है। अलंकारों का उपयोग करते हुए भी अभिव्यक्ति की जैसी सरलता और सरसता सूर-काव्य में दिखलाई देती है, वैसी परवर्ती कवि गरा चेष्टा करने पर भी अपने काव्य में नहीं ला सके हैं।

सूरदास ने कृष्ण-चरित्र के गायन द्वारा धार्मिक एवं साहित्यक जगत् में मौलिक उद्भावनाओं को जन्म दिया, जिनका अनुकरण उनके समकालीन एवं परवर्ती कवियों ने किया था। सूरदास के पूर्ववर्ती कवियों में से जयदेव, विद्यापति और चंडीदास ने क्रमशः संस्कृत, मैथिल और बंग भाषाओं में कृष्ण-चरित्र का गायन किया था, किंतु सूर का वर्णन उनसे भिन्न है । जयदेव के काव्य में संगीत-लहरी और कोमल-कांत पदावली का गौरव तो है, किंतु उसमें सूरदास की सी कथन की विविधता नहीं है । विद्यापति ने राधा-कृष्ण को केवल नायिका-नायक के रूपमें चित्रित कर विलासिता को अधिक प्रश्रय दिया है वे सूरदास की तरह राधा-कृष्ण को अलौकिक धरातल पर स्थापित नहीं कर सके हैं। चंडीदास के काव्य में राधा-कृष्ण के विशुद्ध प्रेम का वर्णन तो होता है, किंतु उसमें सूरदास की सी लीला-भावना का अभाव है । इस प्रकार इन तीनों पूर्ववर्ती कवियों का काव्य सूर-काव्य की तुलना में पीछे रह जाता है। सूर-काव्य की यह विशेषता है कि इसमें उक्त तीनों कवियों के विशिष्ट गुण तो अपने सर्वोत्तम रूप में विद्यमान हैं ही; इनके अतिरिक्त इसमें और भी बहुत कुछ है, जो सूरदास की स्वतंत्र उद्भावना और मौलिकता पर निर्भर है। इस प्रकार सूर-काव्य की परंपरा पूर्ववर्ती कवियों की ऋणी नहीं है, वरन् वह स्वयं सूरदास की बनाई हुई है।

सूर का गीति-काव्य—

जहाँ तक गीति-काव्य की परंपरा का संबंध है, वह सूरदास से बहुत पहले की है। सूरदास ने अपने पूर्ववर्ती जयदेव, विद्यापति के गीति-काव्य की शैली को अपनाकर उसे और भी गौरवान्वित किया है।

हिंदी साहित्य में गीति-काव्य की परंपरा वीर-गीतों से आरंभ होती है। उस समय के कवि अपने आश्रय दाताओं के यशोगान अथवा युद्धोन्मुख वीरों

को उत्साह-प्रदान करने के लिए वीर-गीतों की रचना किया करते थे। देश की परतंत्रता के कारण जब वीरता का लोप हुआ, तब वीर-गीतों की ध्वनि भी मंद पड़ गई। इसके बाद संत कवियों ने निर्गुण भक्ति के गीत गाये, जो सूर के समय तक और उनके बाद भी गूंजते रहे। इस प्रकार सूरदास के समय में गीति-काव्य की एक परंपरागत शैली विद्यमान थी। उन्होंने सगुण भक्ति के गायन द्वारा उसे और भी उन्नत एवं परिष्कृत किया।

सूरदास का अधिकांश काव्य कीर्तन के लिए रचा गया था, इसलिए यह मुक्तक गेय पदों में है। ये गेय पद विभिन्न राग-रागनियों में सधे हुए हैं। अब तक सूर-काव्य की साहित्यिकता और धार्मिकता पर ही विचार किया गया है; किंतु इसके संगीत विषयक पक्ष पर जब पूरी तरह विचार हो सकेगा, तब कहीं सूर-काव्य की विशेषता का यथार्थ स्वरूप समझ में आवेगा।

संगीत कला की दृष्टि से भी सूर-काव्य का अनुपम महत्व है। यह संगीत शास्त्रोक्त विविध राग-रागनियों का विपुल भंडार है। इसमें जिन अगणित राग-रागनियों का समावेश है, उनमें से कुछ के लक्षण भी आजकल के संगीतज्ञों को अज्ञात हैं। ऐसा मालूम होता है कि या तो वे राग-रागनियाँ सूरदास के समय में प्रचलित थीं, या स्वयं उन्होंने ही उनका आविष्कार किया था; जिनका प्रचलन बाद में बंद हो गया।

गीति-काव्यकारों में भी सूरदास का स्थान बेजोड़ है। उन्होंने जितने अधिक गीत रचे हैं, उतने संसार की किसी भाषा में शायद ही किसी एक व्यक्ति ने रचे हों। उनके द्वारा प्रयुक्त राग-रागनियों की विविधता को देखकर तो आश्चर्य होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वे संगीत शास्त्र के भी महान् पंडित थे। विभिन्न राग-रागनियों में अपने पदों की रचना के अतिरिक्त 'सूर-सारावली' में उन्होंने कतिपय राग-रागिनियों के नामों का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन कर लीने।
जान प्रभात राग पंचम षट मालकोस रस भीने॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारँग सुर नट जान।
सुर सावंत भुपाली ईमन करत कान्हरौ गान॥
ऊच अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत बिहार मधुर केदारौ सकल सुरन सुख दीन॥
सोरठ गौड़ मलार सोहावन भैरव ललित बजायौ।
मधर विभास सुनत बेलावल दंपति अति सुख पायौ॥

देवगिरी देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखबास ।
जैतश्री अरु पूर्वी टोड़ी आसावरि सुखरास ।।
रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गाये ।
जैजैवंती जगतमोहनी सुर सों बीन बजाये ।।

सूर और तुलसी—

सूर और तुलसी हिंदी साहित्याकाश के दो परमोज्ज्वल नक्षत्र हैं। इनमें से किसका प्रकाश अधिक और किसका कम है, यह बतलाना बड़े से बड़े समालोचक के लिए भी बड़ा कठिन कार्य है। इन दोनों महात्माओं के उपस्थिति काल से अब तक अनेक विद्वानों ने इनके महत्व की तुलना की है। उनमें से किसी ने सूर को और किसी ने तुलसी को बड़ा बतलाया है, किंतु उनका कथन सदैव विवादग्रस्त रहा है और आगे भी रहेगा। हमारी दृष्टि में ये दोनों ही महानुभाव हिंदी कवियों के मुकुटमणि हैं और अपने-अपने क्षेत्रों मे एक दूसरे से बढ़ कर हैं। हिंदी का कोई तीसरा कवि किसी प्रकार इनकी समता नहीं कर सकता है।

इन दोनों महाकवियों के काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनकी कई रचनाओं में अद्भुत साम्य है। यह साम्य भाव विषयक ही नहीं, वरन् शब्द विषयक भी है। इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों कवि एक दूसरे से प्रभावित हैं। अब यह विचार करना है कि इसका कारण क्या है।

साहित्य शोधकों के प्रयत्न से अब यह भलीभाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास पूर्ववर्ती और तुलसीदास परिवर्ती कवि हैं। सूरदास का जन्म-काल और काव्य-काल दोनों ही तुलसीदास की अपेक्षा पहिले आते हैं। कुछ समय तक ये दोनों कवि समकालीन भी थे, किंतु उस समय सूरदास वृद्ध थे और अपने अधिकांश काव्य की रचना कर चुके थे; जब कि तुलसीदास युवक थे और उन्होंने अपनी काव्य-रचना का आरंभ ही किया था। सूरदास का देहावसान भी तुलसीदास की अपेक्षा पहले हुआ था। गत पृष्ठों में हम सूरदास के देहावसान का समय सं० १६४० लिख चुके हैं, जब कि तुलसीदास का निधन संवत् १६८० बतलाया जाता है। अब यदि इनके काव्य में किसी प्रकार का साम्य अथवा एक दूसरे का प्रभाव ज्ञात होता है, तो यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि परवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती कवि से किसी न किसी रूप मे लाभ अवश्य उठाया है

गत पृष्ठों में हम भलीभाँति सिद्ध कर चुके हैं कि सं० १६२६ मे तुलसीदास अपने छोटे भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे। उस समय उन्होंने ब्रज के प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया था और वहाँ पर कुछ समय तक निवास भी किया था। उस यात्रा में उन्होंने गोवर्द्धन के निकटवर्ती परासौली स्थान पर सूरदास से भेंट की थी। उस समय दोनों कवियों ने एक दूसरे के काव्य का रसास्वादन अवश्य किया होगा। सूरदास उस समय तक सहस्रों पदों की रचना द्वारा अक्षय कीर्ति प्राप्त कर चुके थे, किंतु तुलसीदास ने तब तक 'रामलला नहछू', 'वैराग्य संदीपनी', 'रामाज्ञा प्रश्न' और 'जानकी मंगल' जैसी छोटी एवं साधारण रचनाएँ ही की थीं*। काव्य-जगत् में प्रवेश करने वाले युवक कवि तुलसीदास पर वयोवृद्ध सूरदास के प्रौढ़ काव्य का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यह प्रभाव तुलसीदास की रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है।

ब्रज-यात्रा के अनंतर गो० तुलसीदास ने सं० १६३१ में अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'रामचरितमानस' की रचना की थी। इस प्रशंसनीय ग्रंथ के कई प्रसंग ऐसे है, जो सूर-काव्य से निश्चय पूर्वक प्रभावित है। उदाहरण के लिए 'मानस' का एक परम रमणीक प्रसंग उपस्थित किया जाता है। जिस समय बनोवास में सीता अपने पति और देवर राम–लक्ष्मण के साथ जा रही थी, उस समय ग्रामीण स्त्रियों ने उनका परिचय जानना चाहा। सीता जी ने जिस भाव-भंगी के साथ अपने देवर और पति का परिचय दिया है, उसे पढ कर 'मानस' के पाठक आनंद-विभोर हो जाते हैं। वास्तव में यह प्रसग "मानस" के परम रमणीक प्रसंगों में से है, जिससे तुलसीदास जी के काव्योत्कर्ष का ज्ञान हो सकता है। किंतु यह प्रसंग सूर-काव्य से प्रभावित है, जैसा कि निम्न उद्धरणों से ज्ञात होगा।

'रामचरित मानस' में यह प्रसंग इस प्रकार लिखा गया है—

कोट मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचति बर बरनी॥
सकुचि सप्रेम बालमृग–नैनी। बोली मधुर बचन पिकबैनी॥
सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनविधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरोछे नैननि। निज-पति कहेउ तिनहिं पिय सैननि॥

* तुलसीदास (डा० ——— गुप्त) पृ० २१३

यही प्रसंग तुलसीदास कृत "कवितावली" में इस प्रकार मिलता है—

पूछति ग्राम बधू सिय सौं "कहौ साँवरे से सखि रावरे को है?"
सुनि सुंदर बानि सुधा-रस सानि, सयानी है जानकी जानि भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं, समुझाइ कछू मुसकाइ चली॥

सूर-काव्य में यह प्रसंग इस प्रकार मिलता है—

कहिधौं सखी! बटोही को हैं?
अद्भुत बधू लिएँ सग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं॥
यहि में को पति त्रिया तिहारे, पुर-तिय पूछत धाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति, सैननि दियो बताइ॥

सूरदास का निम्न पद तुलसीदास के एक प्रसिद्ध बरवा से मिलाइये, तो आपको स्पष्ट प्रभाव दिखाई देगा—

देखि री! हरि के चंचल नैन।
राजिबदल, इंदीवर, सतदल कमल कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे विकसित, ये विकसित दिन-राति॥

—सूरदास

सिय मुख सरद कमल जिमि किम कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह विगसाइ॥

—तुलसीदास

उपर्युक्त उद्धरणों में दोनों कवियों के कथन का आशय एक सा है। अंतर केवल इतना है कि जहाँ सूरदास ने कमल की कई जातियों का नामोल्लेख किया है, वहाँ तुलसीदास ने केवल शरद-कमल से काम ले लिया है। स्वागत, पूजा तथा अभिनन्दन के समय नारियाँ किस सामग्री का संचय करती हैं और उनके चलने का ढंग किस प्रकार का होता है, इसके वर्णन में दोनों कवियों का साम्य देखिए—

दूध, दधि, रोचन कनक-थार लै-लै चलीं,
मानों इंद्रबधू जुरि बातिन बहुर के॥

—सूरदास

दूध, दधि, रोचन कनक-थार भरि-भरि,
आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं॥

—तुलसीदास

उपर्युक्त उद्धरणों में विषय और भाव की तो समता है ही, किंतु "दूध, दधि रोचन, कनक थार" ये चारों शब्द दोनों कवियों ने एक क्रम

में भी रखे हैं। सूर-काव्य का स्पष्ट प्रभाव तुलसी कृत बाल-छवि वर्णन में दिखलायी देता है। इस प्रकार के कथन में दोनों कवियों द्वारा प्रयुक्त बहुत सी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ आपस में मिल जाती हैं। उदाहरण देखिए—

नील, सेत पर पीत, लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि, मनों भौम सहित समुदाई॥ —सूरदास

भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल दसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु-सनि कुज आगे करि, ससिहिं मिलन तम के गन आए॥
—तुलसीदास

सूर-काव्य का और भी स्पष्ट प्रभाव तुलसीदास कृत 'गीतावली' में दिखलाई देता है। सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का जैसा सरस वर्णन किया है, प्रायः वैसा ही गीतावली के कतिपय पदों में भी मिलता है—

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै॥ —सूरदास

पालने रघुपतिहिं झुलावै।
लै-लै नाम सप्रेम सरस स्वर, कौसल्या कल कीरति गावै॥—तुलसीदास

'सूरसागर' और 'गीतावली' के निम्न पदों में भाव ही नहीं, वरन् शब्दों का भी अद्भुत साम्य है। दोनों पदों के पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये एक ही कवि की रचनाएँ है, जो किंचित हेर-फेर के साथ दोनों ग्रंथों में लिखी गई है। 'गीतावली' के पद में 'सूरसागर' के पद की अपेक्षा दो पंक्तियाँ अधिक है। 'गीतावली' के पद का राग 'केदारा' और 'सूरसागर' के पद का राग 'नटनारायन' लिखा गया है। दोनों ग्रंथों के पद इस प्रकार हैं—

हरि जू की बाल-छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभा-हरनि॥
भुज भुजंग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल नभ, उपमा अपर दुरि डरनि॥
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फरचौ अदभुत फरनि॥
चलत पद-प्रतिबिंब मनि-आँगन, घुटुरुवनि करनि।
जलज-संपुट-सुभग-छबि भरि, लेत उर जनु धरनि॥
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं, बिलोकि कै नँद-घरनि।
'सूर' प्रभु की उर बसी, किलकनि ललित लरखरनि॥
सूरसागर दशम स्कंध पद संख्या १०६

रघुवर - बाल - छबि कहौं बरनि ।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज - सोभा - हरनि ।।
बसी मानहुँ चरन कमलनि, अरुनता तजि तरनि ।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन, हरति रुनझुन करनि ।।
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरति भूषन भरनि ।
जनु सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फरयौ अदभुत फरनि ।।
भुजनि भुजँग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित्यौ लरनि ।
रहे कुहरनि सलिल नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ।।
लसत कर प्रतिबिंब मनि-आँगन, घुटुरुवनि चरनि ।
जलज-संपुट-सुछबि भरि-भरि, धरनि जनु उर धरनि ।।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं, बिलोकि दसरथ-घरनि ।
बसति "तुलसी" हृदय प्रभु, किलकनि ललित लरखरनि ।।
(गीतावली, पद संख्या

अब हम 'सूरसागर' और 'गीतावली' के ऐसे पद देते हैं, जो प्राय
से हैं। इनके भाव ही नहीं, वरन् शब्दों में भी कोई महत्व का अंतर नहीं
पाठकों को आश्चर्य हो सकता है कि इस प्रकार का अद्भुत साम्य कैसे हो ग

आँगन खेलैं नंद के नंदा। जदुकुल-कुमुद सुखद चारु चंदा ।।
संग - संग बल - मोहन सोहैं। सिसु भूषन भुव को मन मोहैं ।।
तन-दुति मोर-चंद जिमि झलकै। उमँगि-उमँगि अँग-अँग छवि छलकै ।
कटि किंकिन, पग पैंजनि बाजै। पंकज पानि पहुँचिया राजै ।।
कठुला कंठ बघनहाँ नीके। नैन-सरोज मैन-सरसी के ।।
लटकति ललित ललाट लटूरी। दमकति दूध दतुरियाँ रूरी ।।
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बिंदा। ललित बदन बल-बालगुबिंदा ।।
कुलही चित्र विचित्र झँगूली। निरखि जसोदा-रोहिनि फूली ।।
गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलै। कल-बल बचन तोतरे बोलै ।।
निरखत झुकि, झाँकत प्रतिबिंबहिं। देत परम सुख पितु अरु अंबहिं ।।
ब्रज-जन निरखत हिय हुलसाने। "सूर" स्याम-महिमा को जाने ।।
(सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ११

आँगन खेलत आनँदकंद। रघुकुल-कुमुद सुखद चारु चंद ।।
सानुज भरत लखन-सँग सोहैं। सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं ।।
तन-दुति मोर चंद जिमि झलकै। मनहुँ उमँगि अँग-अँग छवि छलकै ।।

कट किंकिन, पग पैंजनि बाजैं। पंकज-पान पहुँचियाँ राजैं॥
कठुला कंठ बघनहा नीके। नयन सरोज मयन-सरसी के॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं। दमकति द्वै-द्वै दँतुरियाँ रूरीं॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा। ललित बदन बलि-बालमुकुंदा॥
कुलही चित्र-विचित्र झँगूली। निरखत मातु मुदित मन फूली॥
गहि मनि-खंभ डिभ डगि डोलत। कल बल बचन तोतरे बोलत॥
किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। देत परम सुख पितु अरु अंबनि॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है। गावत प्रेम पुलकि "तुलसी" है॥

(गीतावली, पद सं० २८)

निम्न पद तो केवल नाम-भेद से दोनों के काव्य में प्राय: एक सा मिलता दोनों ग्रंथों के पद देखिये—

छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-ज्योती, मोती मानों कमल - दलनि पर।
ललित आंगन खेलै, ठुमुकि - ठुमुकि डोलै,
झुनुकु - झुनुकु बोलै पैंजनी, मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि, हाटक रतन जटि,
मृदु कर-कमलनि पहुँची रुचिर बर।
पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी,
बालक दामिनी मानों ओढ़े बारौ बारिधर॥
उर बघनहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार,
बेनी लटकन मसि-बुंदा मुनि - मनहर।
अंजन रंजित नैन, चितवन चित चोरै,
मुख सोभा पर वारौं, अमित असम-सर॥
चुटुकी बजावति, नचावति जसोदा रानी,
बाल - केलि गावति, मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि - किलकि हँसैं द्वै - द्वै दँतुरियाँ लसैं,
"सूरदास" मन बसैं, तोतरे बचन बर॥

(सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० १५१)

छोटी - छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-जोति, मोती मानों कमल - दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं ठुमुक - ठुमुक चलैं,
झुँझुनु - झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर॥

किंकिनी कलित कटि, हाटक जटित मनि,
मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिर तर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनी ओढ़ी, मानों बारे बारिधर॥
उर बघनहां, कंठ कठुला, झँडूले केस,
टेढ़ी लटकन मसि-बिंदु मुनि-मनहर।
अंजन राजत नैन चित चोरैं चितवनि,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर॥
चुटकी बजावती, नचावती कौसल्या माता,
बाल-केलि गावति, मल्हावति सुप्रेम भरि।
किलकि-किलकि हँसैं, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं,
"तुलसी" के मन बस, तोतरे बचन बर॥
(गीतावली, पद सं० ३०)

यहाँ पर यह विचार करने की आवश्यकता है कि दोनों कवियों की इन रचनाओं में इस प्रकार के अद्भुत साम्य का कारण क्या है। जहाँ तक भाव-साम्य का संबंध है, वहाँ तक हमारा निश्चित मत है कि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती सूरदास के काव्य से लाभ उठाया है। यह भाव-साम्य अधिकतर कृष्ण और राम के बाल-लीला वर्णन में मिलता है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि सूरदास वात्सल्य रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का अपूर्व कवित्वपूर्ण कथन किया है, जिसका अनुकरण अनेक कवियों ने किया है। यह दूसरी बात है कि वे सूर-काव्य के उच्च धरातल तक पहुँचने में उतने सफल नहीं हो सके हैं। ब्रज-यात्रा में ब्रज के वातावरण से आकर्षित होकर और सूरदास कृत कृष्ण-लीला के पदों को सुन कर तुलसीदास इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बाद में उसी शैली में अपने आराध्य देव रामचंद्र की बाल-लीलाओं का भी वर्णन किया, जिसमें सूर-काव्य के कतिपय भावों का आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

लेकिन जो कविताएँ दोनों कवियों के काव्य में प्रायः ज्यों की त्यों मिलती हैं, उनके विषय में पाठकों को अवश्य आश्चर्य हो सकता है। वे शंका कर सकते हैं कि क्या तुलसीदास ने सूर की रचनाओं का अपहरण कर उन्हें अपने नाम से प्रचारित किया था। तुलसीदास जैसे सर्वोत्कृष्ट सिद्ध कवि के विषय में इस प्रकार की शंका करना भी मूर्खता की बात है। असल बात यह है कि लिपिकारों की असावधानी अथवा उनके कुचक्र के कारण ये कविताएँ दोनों कवियों के

काव्य में मिल गयी हैं। आश्चर्य इस बात का है कि उनका संपादन करते समय हमारे धुरंधर विद्वान संपादकों का ध्यान उन पर क्यों नहीं गया !

आज-कल की भी मुद्रण विषयक सुविधाओं के अभाव में अथवा साम्प्रदायिक खींचातानी की दौड़-धूप में उस समय के लिपिकारों को इन रचनाओं के लिए क्षमा भी किया जा सकता है; किंतु जब हम दिग्गज विद्वानों द्वारा संपादित और मान्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित प्रामाणिक संस्करणों मे इस प्रकार की गड़बड़ी देखते हैं, तो आश्चर्यपूर्ण खेद होता है। हमने उपर्युक्त उद्धरण 'सूरसागर' और 'गीतावली' के जिन संस्करणों से लिये हैं, वे दोनों काशी की सर्वमान्य नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हैं। 'सूरसागर' के संपादक ब्रजभाषा साहित्य के सुप्रसिद्ध महारथी स्वर्गीय श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' हैं। 'गीतावली' तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खंड, में संकलित है, जिसका संपादन हिंदी के धुरंधर विद्वान सर्वश्री रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन और ब्रजरत्न दास ने किया है। 'गीतावली' का यह संस्करण 'सूरसागर' के उपर्युक्त संस्करण से प्रायः १२ वर्ष पश्चात् का छपा हुआ है। इसके विद्वान संपादकों से यह आशा की जा सकती है कि उन्होंने 'सूरसागर' के उक्त संस्करण को अवश्य देखा होगा। ऐसी दशा में एक ही स्थान से प्रकाशित दोनों कवियों के प्रसिद्ध ग्रंथों में एक सी कविताएँ छप जाना सुसंपादन के महत्व को निश्चय ही कम करने वाली बात है !

यह तो मान लिया गया कि लिपिकारों एवं संपादकों की असावधानी से इस प्रकार की कविताएँ दोनों कवियों के ग्रंथों में सम्मिलित हो गयी हैं; अब यह प्रश्न हो सकता है उनका मूल रचयिता सूरदास को ही क्यों माना जाय, तुलसीदास को क्यों नहीं ? इसके संबंध में हम पहले ही लिख चुके हैं कि सूरदास पूर्ववर्ती एवं बाल-लीला वर्णन के विशिष्ट कवि हैं, अतः इन कविताओं का सर्व प्रथम उन्हीं के द्वारा रचा जाना और बाद में किंचित् परिवर्तन के साथ उनका तुलसीदास के काव्य में सम्मिलित किया जाना सर्वथा संभव है। यह कथन केवल अनुमान पर ही आधारित नहीं है, वरन् दोनों कवियों की भाषा, शैली, उनके भाव और आगे-पीछे के पदानुगत क्रम से भी इसकी पुष्टि होती है। सूर-काव्य में जहाँ पर ये पद दिये गये हैं, वहाँ पर आगे-पीछे के पदों के देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ये पद भी सूरदास कृत हैं।

रूप वर्णन—

काव्य में मानवीय और प्राकृतिक दो प्रकार के रूप का वर्णन होता है। मानवीय रूप का जैसा अपूर्व कथन सूर-काव्य में हुआ है, वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। सूरदास ने कृष्ण, राधा और गोपियों के स्वरूप वर्णन में मानवीय सौंदर्य की चरम सीमा दिखला दी है। उन्होंने भौतिक चक्षुओं के अभाव में भी मानव के सर्वश्रेष्ठ सौंदर्य को जितनी बारीकी से देखा है, वैसा कोई नेत्र वाला कवि भी आज तक नहीं देख सका है। यही कारण है कि सूर-काव्य के साधारण पाठक को ही नहीं, वरन् बड़े-बड़े विद्वानों को भी यह संदेह होने लगता है कि इस प्रकार के सांगोपांग वर्णन करने वाला कवि जन्मांध कैसे हो सकता है! सूर-काव्य के रूप वर्णन की यह विशेषता किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती।

सूरदास ने राधा-कृष्ण के सौंदर्य सूचक अगणित शब्द-चित्रों में सोफियानी और चटकीले सभी प्रकार के रंगों का उपयोग किया है। उनके बहु-रंगी चित्रों में कही प्रसाद गुण युक्त सीधे-सादे कथन का सोफियानापन है, तो कही अलंकृत एवं चमत्कृत उक्तियों का चटकीलापन भी है। सूर-काव्य के पाठकों पर इन बहुरंगी शब्द-चित्रों का ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ता है कि उनका रसास्वादन करते हुए वे स्वयं चित्रवत् हो जाते हैं!

मानवीय रूप वर्णन में सूरदास ने प्रायः परंपरागत उपमानों का उपयोग किया है, किंतु उनकी बहुमुखी प्रतिभा और उद्भावनापूर्ण कल्पना के कारण उनके कथन में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न हो गया है। उनकी सौंदर्यानुभूति और निरीक्षण शक्ति के कारण उनके काव्य में मानव-सौंदर्य के साथ ही साथ मानव-प्रकृति का भी जैसा स्वाभाविक कथन हुआ है, उसने सूरदास को संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में आदर पूर्ण स्थान दिया है।

सूरदास ने राधा-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर बार-बार इतना अधिक लिखा है कि कतिपय अरसिक व्यक्तियों को उसमें पुनरुक्ति का आभास होने लगता है! ऐसे व्यक्ति शायद यह नहीं जानते कि सौंदर्य की विशेषता ही इसमें है कि वह प्रति क्षण नवीन दिखलायी दे—"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायः"। सूरदास अपने आराध्य देव के प्रति क्षण नवीनता प्राप्त रूप की रमणीयता का आस्वादन करते हुए कभी तृप्त नहीं होते थे। उनकी अमृत वाणी आकुलता पूर्वक बार-बार कुछ कहने को छटपटाती रहती थी। इस छटपटाहट के कारण वे नित्य नये पदों की रचना द्वारा अपने इष्टदेव के स्वरूप का गायन किया करते थे किंतु इतना अधिक कथन करने

पर भी उनको ऐसा लगता था कि उनकी वाणी में कहने की सामर्थ्य ही नहीं है। अपनी मानसिक दशा को उन्होंने स्वयं निम्न पद में इस प्रकार व्यक्त किया है—

सखी री सुंदरता कौ रंग।
छिन-छिन माँहि परत छवि औरै, कमल-नैन के अंग॥
परमिति करि राख्यौ चाहति हौं, लागी डोलति संग।
चलत निमेष विसेष जानियत, भूलि भई मति भंग॥
स्याम सुभग के ऊपर वारौं, आली कोटि अनंग।
"सूरदास" कछु कहति न आवै, भई गिरा गति पंग॥

अपने आराध्य देव की रूप-रस माधुरी में मत्त होकर वे जीवन भर इसी प्रकार के गीत गाते रहे। जब उनके इस कथन में शिथिलता आने लगी, तब निम्न पद का गायन करते हुए उनके प्राण-पखेरू भी उड़ गये—

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते।
"सूरदास" अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-छवि कथन के साथ अपने रूप-वर्णन का आरंभ किया है। प्रारंभ में उन्होंने बाल-लीला जनित स्वाभाविक सौंदर्य के सीधे-सादे चित्र अंकित किये हैं। इसके उपरांत उनकी मति अपने इष्टदेव के रूप-वर्णन में अधिकाधिक रमती गयी, जिसके फलस्वरूप उनके कथन की शैली ने भी अधिकाधिक चमत्कृत और अलंकृत रूप धारण किया। उनकी प्रतिभा पग-पग पर नवीन उद्भावनाओं द्वारा नित्य नूतन सौंदर्य की सृष्टि करती थी। भावों की तीव्रता ने कहीं-कहीं पर उनकी कल्पना को दुरूहता भी प्रदान की है। ऐसे प्रसंगों पर उन्होंने गूढ़ दृष्टकूट में अपना रहस्यपूर्ण कथन किया है। उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, सांग रूपक और रूपकातिशयोक्ति द्वारा अपने कथन को सजीवता प्रदान की है। इस प्रकार की उक्तियों में उनका कलात्मक रूप निखर आया है।

सूर-काव्य का मानवीय रूप-वर्णन अपनी काव्यगत विशेषताओं के लिए जग विख्यात् है। सूर-साहित्य के विद्वानों ने विस्तृत रूप से इसकी आलोचना की है। हमने भी गत पृष्ठों में इस पर कुछ प्रकाश डाला है। ऐसी दशा में तत्संबंधी सूर-काव्य की विशेषता पर और अधिक लिखना पिष्ट पेषण करना है

प्रकृति-निरीक्षण—

सूर-काव्य के मानवीय रूप-वर्णन के पश्चात् मानवेतर अर्थात् प्राकृतिक रूप-वर्णन के संबंध में लिखने की आवश्यकता है। सूरदास ने मानवीय रूप का जैसा व्यापक कथन किया है, वैसा प्राकृतिक रूप का नहीं किया। फिर भी उन्होंने इस संबंध में जो कुछ कहा है, उसका महत्व इसलिए अधिक है कि ब्रजभाषा साहित्य में इस विषय पर सर्व प्रथम उन्हीं का विस्तृत कथन प्राप्त है।

सूरदास ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति-निरीक्षण नहीं किया है, वरन् उन्होंने अपने प्रमुख विषयों के सहायक रूप में इसका कथन किया है। काव्य-शास्त्र के अनुसार प्राकृतिक दृश्य शृंगार रस के उद्दीपन विभाग के अंतर्गत आते है, क्यों कि प्राकृतिक सौंदर्य से नायक-नायिका के रति भाव को उत्तेजना प्राप्त होती है। सूरदास ने भी अधिकतर प्रकृति के उद्दीपक रूप का ही कथन किया है। उनके पश्चात् इस प्रकार के कथन की परंपरा ही चल पड़ी, जिसके कारण ब्रजभाषा के विशाल शृंगार साहित्य में प्रकृति निरीक्षण के कथन प्रायः उद्दीपक रूप में ही प्राप्त होते हैं।

सूरदास के निम्नलिखित पद में प्रकृति के उत्तेजक प्रभाव का कैसा स्पष्ट वर्णन मिलता है—

बात बूझतहि यों बहरावति।
सुनहु स्याम ! वे सखी सयानी, पावस रितु राधहिं न बतावति॥
घन गरजत तौ कहत कुसलमति, गूँजत गुहा सिंह समुझावति॥
नहिं दामिनि,द्रुम दवा सैल चढ़ी,फिर बयारि उलटी झर लावति।
नाहिन मोर, रटत पिक दादुर, ग्वाल-मंडली खगन खेलावति॥

सूर-काव्य के अधिकांश भाग का विकास प्रकृति देवी के कमनीय क्रीड़ा-स्थल व्रजभूमि के विस्तृत प्रांगण में हुआ है; जहाँ पर जमुना है और उसके निकटवर्ती वृंदावन के रमणीक बन-उपबन हैं, जहाँ पर गिरि गोवर्द्धन और उसकी सुंदर कंदराएँ हैं, जहाँ पर करील के सघन कुंज और कदंब के सुवासित वृक्ष हैं, जहाँ पर मोर-कोकिल आदि पक्षियों का मधुर कल रव गूँजा करता है। ऐसे प्राकृतिक वातावरण से सूर-काव्य का प्रभावित होना स्वाभाविक है। सूरदास ने अपने कथन में जिन उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों का प्रयोग किया है, उनसे ब्रज का प्राकृतिक रूप छलका पड़ता है।

राधा-कृष्ण के संयोग शृंगार का विकास वृंदाबन के निकटवर्ती यमुना पुलिन के लता-कुंजो मे होता है जहाँ का प्राकृतिक वैभव युगल प्रेमियो

के संयोग-सुख में स्वाभाविक वृद्धि करता है। राधा और गोपियों का वियोग शृंगार भी उसी क्षेत्र में विकसित हुआ है, जहाँ के प्राकृतिक दृश्य उनके विरह को तीव्र तर करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार सूर का प्रकृति निरीक्षण उनके लीलात्मक कथन का सदैव सहायक रहा है।

चरित्र-चित्रण—

सूर-काव्य का अधिकांश भाग श्रीनाथ जी के कीर्तन के लिए रचा गया था, अतः वह मूल रूप में मुक्तक काव्य जैसा है। मुक्तक काव्य में प्रबंध काव्य की तरह कथा के क्रमबद्ध कथन और पात्रों के चारित्रिक विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता है, किंतु सूर-काव्य में कृष्ण-लीला-गायन के कारण कथा का संयोजन और चरित्रों का कथन भी हुआ है।

सूरदास ने कृष्ण-लीला का क्रमबद्ध गायन किया हो, इसकी संभावना कम है; किंतु पुष्टि संप्रदाय की नित्य और नैमित्तिक सेवा-विधि तथा भागवत की कथा के अनुसार विविध अवसरों पर सहस्रों पदों के गायन द्वारा उनके काव्य में कृष्ण-लीला के प्रायः सभी प्रसंगों का वर्णन हो गया था, जिनका बाद में क्रमबद्ध संकलन हुआ होगा। यह संकलन सूरदास के समय में हुआ, अथवा उनके पश्चात्—यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता; किंतु इस समय सूर-काव्य का जो स्वरूप उपलब्ध है, उसमें कथा का क्रम और चरित्रों का विकास भी दिखलाई देता है।

भक्त कवि होने के कारण सूरदास ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही अपने काव्य की रचना की थी। फलतः उनके पात्रों के चारित्रिक विकास मे भी इसी भावना का प्राधान्य है। सूर-काव्य के पात्रों में नंद-यशोदा वात्सल्य भक्ति के, गोप गण सख्य भक्ति के और राधा-गोपी मधुर भक्ति के प्रतीक हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि भक्ति के ये विविध रूप पुष्टि संप्रदाय मे मान्य हैं। उक्त पात्रों के चारित्रिक कथन के कारण ही सूर-काव्य इतना रोचक और उपादेय बन सका है। सूर-काव्य की विशेषताओं में इन पात्रो के चरित्र-चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। सूरदास के प्रधान पात्र श्रीकृष्ण, राधा-गोपी, नंद-यशोदा, बलराम तथा गोप गण हैं, जिनके चरित्रों की यहाँ पर संक्षिप्त आलोचना की जाती है।

श्री कृष्ण—सूर-काव्य के नायक ही नहीं, वरन् सूरदास के आराध्य देव भी हैं, इसलिए कवि ने इनके चरित्र का गायन बड़े मनोयोग पूर्वक किया है। सूर-काव्य के समस्त पात्रों में श्री कृष्ण की प्रधानता ही नहीं है, वरन् उन

पात्रों के चरित्र भी कृष्ण–चरित्र में गुथे हुए है । सूर-काव्य में से कृष्ण चरित्र को निकाल देने से अन्य पात्रों के चरित्र–कथन का कोई महत्व न रह जाता है ।

सूरदास के कृष्ण परम सुंदर, स्वस्थ और चंचल प्रकृति के नटखट बालक हैं। एक समृद्ध ग्रामीण परिवार के बालक की तरह उनका लालन-पालन बड़े लाड़-चाव से हुआ है । वृद्धावस्था की संतान होने के कारण वे अपने माता-पिता के तो दुलारे हैं ही, साथ ही उनके श्याम सुंदर स्वरूप में कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण है कि वे ब्रज के समस्त नर-नारी, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों को भी अपनी ओर इतना आकर्षित कर लेते हैं कि उनको देखे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता है ! जब तक कृष्ण ब्रज में रहे, वहाँ के निवासी गण उनके सहवास-सुख से परमानंदित होते हुए अपने को भूले रहे । जब वे ब्रज को छोड़ कर मथुरा और द्वारका चले गये, तब उनकी विरह-व्यथा से व्यथित ब्रजवासी अपने जीवन को भार समझने लगे ।

श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं के कथन में सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है । इस संबंध की कोई बात उनसे छूटने नही पाई है । बालक कृष्ण की प्रत्येक चेष्टा का उन्होंने अत्यंत स्वाभाविक और विशद वर्णन किया है । कृष्ण अपनी बाल-क्रीड़ाओं से नंद-यशोदा को परम आनंदित करते हैं । वे नाना भाँति के खेल-कूद और आमोद-प्रमोद द्वारा गोप-बालकों को तथा अपने रूप-लावण्य एवं चंचल प्रकृति से गोप-बालिकाओं और गोपांगनाओं को परम सुख प्रदान करते हैं । वे ब्रज-नारियों के घरों में घुस कर उनका दही-माखन चुरा कर खा जाते हैं । वे पनघट और यमुना-तट पर उनको परेशान करते हैं । वे एकांत बन में जाती हुई गोपियों को रोक कर उनसे 'दान' माँगते हैं और उनके आना-कानी करने पर उनके दधि-भाजनों को तोड़ डालते हैं । कृष्ण की इन छेड़खानियों के कारण गोपियाँ बाहरी मन से रोष भी प्रकट करती है, किंतु वास्तव में उनको इनसे सुख मिलता है और वे बार-बार इस प्रकार तंग होने में अपना अहो भाग्य मानती हैं !

कृष्ण बंशी बजाने की कला में अत्यंत निपुण हैं । वे जब बंशी बजाते हैं, तब समस्त ब्रज को आनंद-विभोर कर देते हैं । उनकी बंशी के मधुर स्वर को सुन कर ब्रज-गोपियाँ मंत्र-मुग्ध की तरह उनकी ओर खिची चली आती हैं । वे शरद ऋतु की उजेली रात में नाना प्रकार के गायन, वादन और नृत्य द्वारा उनका मनोरंजन करते हैं । वे यशोदा के लिए अबोध बालक हैं किंतु गोपियों के साथ प्रगल्भ तरुण नायक का सा व्यवहार करते हैं

उन्होंने अल्पायु में ही बलशाली दैत्यों का संहार और खेल-कूद में ही कालिय-दमन जैसा भयानक कार्य कर डाला था ! उन्होंने बात की बात में कंस जैसे पराक्रमी योद्धा को उसके प्रबल साथियों सहित मार डाला था ! उनके अमानुषी कृत्यों से प्रभावित होकर ब्रजवासी उनको एक क्षण के लिए अवतारी पुरुष समझने लगते हैं; किंतु दूसरे ही क्षण उनके साधारण बालोचित कृत्यों से मोहित होकर उनको अपना सखा और साथी ही मानते हैं।

जब कृष्ण अक्रूर के साथ ब्रज से मथुरा जाने लगते हैं, तो उनके स्वभाव में अद्भुत परिवर्तन दिखलाई देता है। उनके बिछुड़ने से ब्रज के समस्त नर-नारी परम दुखित होकर आर्त्त-नाद करते हैं, किंतु कृष्ण अपने बालपन के साथियों को छोड़ने पर तनिक भी विचलित होते हुए दिखलाई नहीं देते हैं। उनका चंचल और अनुरागी स्वभाव सहसा धीर, गंभीर और अनासक्त बन जाता है। मथुरा में कंस को मारने के उपरांत वे नंद और गोपों को अत्यंत निठुर भाव से ब्रज को वापिस भेज देते हैं और आप मथुरा की राजनीति में रम जाते है। ब्रज के अत्यंत निकट रहते हुए भी वे वहाँ जाने का नाम भी नहीं लेते हैं।

कृष्ण की अनुपस्थिति में ब्रज की दयनीय दशा का सूरदास ने अति करुणापूर्ण वर्णन किया है। नंद-यशोदा, गोप-गोपियाँ और राधा सभी ब्रज-वासी कृष्ण के विरह-संताप से व्याकुल हैं; किंतु कृष्ण को उनकी याद तक नहीं आती है। बहुत दिनों बाद जब कहीं उनको ब्रज की याद आई, तब उन्होंने ब्रजवासियों के परितोष के लिए उद्धव को वहाँ भेज दिया। उद्धव-गोपी संवाद का कथन सूरदास ने बड़े विस्तार पूर्वक किया है। इस अवसर पर गोपियों ने जो मार्मिक वचन कहे हैं, उनसे कृष्ण के प्रति उनका निश्छल अनुराग प्रकट होता है। उद्धव गोपियों को समझाने आये थे, किंतु उनकी दशा देख कर वे इतने प्रभावित हुए कि वापिस पहुँचने पर वे स्वयं कृष्ण से ब्रज जाने का आग्रह करने लगे। कृष्ण तब भी ब्रज नहीं गये, किंतु उस समय उन्होंने ब्रजवासियों के प्रति जो शब्द कहे हैं, उनसे उनकी सहृदयता का फिर परिचय मिलता है।

मथुरा से सुदूर द्वारका जाते हुए भी वे ब्रजवासियों से नहीं मिले। द्वारका में रहते हुए उन्होंने रुक्मिणी से विवाह किया और वे दाम्पत्य एवं गार्हस्थिक सुखों का उपभोग करने लगे। द्वारका के राजाधिराज रूप का वर्णन सूरदास ने अत्यंत संक्षिप्त रीति से किया है। उनके वर्णन को पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कृष्ण के इस रूप के प्रति सूरदास को कोई आकर्षण नहीं है। सुदामा के

दारिद्र-भंजन प्रसंग में सूरदास का मन कुछ रमता हुआ सा ज्ञात होता है, क्यों कि इससे उनको कृष्ण की भक्त-वत्सलता के कथन करने का अवसर मिला है।

बहुत वर्षों बाद द्वारका में रुक्मिणी ने बातों ही बातों में कृष्ण को ब्रज की याद दिला दी। उस समय वे पुरानी बातों को याद कर विह्वल से हो जाते हैं। वे ब्रजवासियों से मिलने का सुयोग सोचने लगते हैं। उस समय सूर्य-ग्रहण पर्व पर वे यादवों सहित कुरुक्षेत्र जाते हैं और अपना दूत भेज कर वहीं पर ब्रजवासियों को भी बुलवा लेते हैं। वर्षों बाद नंद, यशोदा, राधा और गोप-गोपियों को श्री कृष्ण से पुनः मिलने का क्षणिक सौभाग्य प्राप्त होता है। उनको विदा करते समय श्री कृष्ण उनसे अपने दैवी रूप के अनुकूल कथन करते हैं। सूरदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

> **ब्रजबासिन सों कह्यौ, सबन तें ब्रज-हित मेरे ।**
> **तुम सों मैं नहिं दूर, रहत सबहिन के नियरे ।**
> **भजैं मोहि जो कोइ, भजौं मैं तिनकों भाई ।**
> **मुकुर माँहिं ज्यों रूप, आपुने सम दरसाई ॥**
> **ये कहि सुमरे सकल जन, नैन रहे जल छाय ।**
> **"सूर" स्याम को प्रेम कछु, मोपै कह्यौ न जाय ॥**

सूरदास द्वारा कथित कृष्ण-चरित्र की यह संक्षिप्त रूप-रेखा है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास ने श्री कृष्ण की ब्रज-लीलाओं का जैसा उत्कृष्ट एवं विस्तृत कथन किया है, वैसा उनके मथुरा एवं द्वारका के चरित्रों का नहीं। वास्तव में सूर-काव्य के नायक ब्रजबल्लभ कृष्ण है, मथुरानाथ अथवा द्वारकाधीश कृष्ण नहीं।

सूरदास ने श्री कृष्ण के अद्भुत चरित्र का विचित्र ढंग से कथन किया है। एक ओर वे साधारण बालक के समान विविध लीलाएँ करते हुए श्री कृष्ण का कथन करते हैं; तो दूसरी ओर वे उनके अलौकिक कृत्यों का वर्णन करते हैं। एक ओर वे उनके अनुरागी और सहृदय स्वभाव का परिचय देते हैं, तो दूसरी ओर वे उनके विरक्त और निठुर रूप का कथन करते है।

श्री कृष्ण के परस्पर विरुद्ध चरित्र-कथन का कारण सूरदास की सैद्धांतिक मान्यता है। श्री बल्लभाचार्य जी के शिष्य होने के कारण सूरदास शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुयायी थे। इस सिद्धांत के अनुसार श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म हैं। वे निर्गुण और निराकार होते हुए भी सगुण और साकार हैं। उनमें समस्त परस्पर विरुद्ध धर्मों का आश्रय है इसलिए उनकी लीलाएँ अद्भुत और विचित्र

हैं। सूरदास ने उनके चरित्र में दैवी और मानुषी गुणों का संमिश्रण कर उनके इसी रूप का प्रतिपादन किया है। उन्होंने स्वयं कहा है—

वेद - उपनिषद जस कहै, निर्गुणहिं बतावै ।
सोइ सगुण होय नंद के, दाँवरी बँधावै ॥

राधा और गोपियाँ—सूर-काव्य के पात्रों में कृष्ण के उपरांत राधा और फिर गोपियों का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सूरदास ने अपने अधिकांश कथन की प्रेरणा भागवत से प्राप्त की थी—"सूर कह्यौ क्यों कहि सकैं, जन्म-कर्म अवतार। कहै कछुक गुरु-कृपा तें, श्री भागवत अनुसार।।" भागवत मे गोपियों का कथन बड़े विस्तार पूर्वक किया गया है, किंतु उसमें राधा के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है। सूरदास से पहले "ब्रह्मवैवर्त पुराण" तथा कुछ अन्य धार्मिक ग्रंथों में राधा के लिए निश्चित स्थान बन चुका था। ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने उक्त ग्रंथों के आधार-सूत्रों में अपनी मौलिक उद्भावनाओं को जोड़ कर राधा के चरित्र को पिरोया है। सूर-काव्य मे राधा के चरित्र का ऐसा आकर्षक और सरस ढाँचा प्रस्तुत किया गया कि बाद में वह कृष्ण-चरित्र का एक आवश्यक अंग माना जाने लगा। यहाँ तक कि ब्रजबल्लभ कृष्ण के चरित्र की पूर्णता राधा के बिना असंभव ज्ञात होने लगी।

सूर-काव्य की प्रधान नायिका राधा है, जो परम सुंदरी गोप-बालिका है। उसका वर्ण गौर है और उसके प्रत्येक अंग की शोभा अनुपम है। सूरदास ने अगणित पदों में राधा के रूप-लावण्य का गायन किया है। उन्होंने उसके प्रत्येक अंग का विस्तृत कथन किया है, किंतु उसके नेत्रों की छवि का वर्णन करने में उनके कथन की चरम सीमा है।

राधा का आरंभिक चित्रण एक चंचल और वाचाल किशोरी के रूप मे हुआ है। बचपन के खेल-कूद में ही राधा और कृष्ण परस्पर आकर्षित हो जाते है। धीरे-धीरे यह आकर्षण सुदृढ़ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। सूरदास ने युगल प्रेमियों की विविध चेष्टाओं के अगणित मनोरम शब्द-चित्र अंकित किये है। उनके संयोग, वियोग, मान, उपालंभ आदि का विस्तृत कथन किया गया है। सूरदास ने राधा के साथ कृष्ण का विवाह भी कराया है, अतः वह आरभ से अंत तक स्वकीया नायिका के रूप में चित्रित की गई है।

सूर-काव्य में गोपियों का चरित्र भी बड़ा अद्भुत है। आरंभ में वे नद—यशोदा के नव जात शिशु के रूप में कृष्ण के प्रति आकर्षित होती हैं। कृष्ण की बाल-क्रीडाओं में उनको अपूर्व सुख मिलता है कृष्ण कुछ बड़े होने पर

उनके घरों में जाने लगते हैं और अपनी चंचल एवं नटखट प्रकृति का परिचय भी देते है । धीरे-धीरे उनका नटखटपन बढ़ने लगता है। वे गोपियों के सूने घरों में घुस कर उनका माखन चुरा कर खा जाते हैं । उनके पात्रों को तोड़ डालते हैं। पनघट पर, यमुना-तट पर, यहाँ तक कि राह-बाट पर भी वे उनको परेशान करते हैं । उन परेशानियों के बीच में भी गोपियाँ अपूर्व सुख का अनुभव करती हैं, बल्कि वे जान-बूझ कर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं कि उनका प्यारा कन्हैया उनको अधिकाधिक परेशान किया करे! वे यशोदा से कृष्ण की कभी-कभी शिकायत भी करती हैं, किंतु वहाँ से प्राय. उनको निरुत्तर ही लौटना पड़ता है।

अकेले कृष्ण ब्रज की सहस्रों गोपियों के आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। प्रौढ़ा, युवती और किशोरी—सभी प्रकार की गोपियाँ अपने-अपने दृष्टिकोण से कृष्ण के प्रति अनुराग रखती हैं। धीरे-धीरे यह अनुराग सुदृढ़ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। तब युवती गण श्री कृष्ण से ऐन्द्रिय संबंध रखने की भी कामना करने लगती हैं । श्री कृष्ण के भुवन-मोहन रूप पर आसक्त होकर ब्रज की सहस्रों युवतियाँ रात-दिन उन्हीं के ध्यान में मग्न रहती हैं । वे श्री कृष्ण के साथ आमोद-प्रमोद करने के लिए बन-विहार, जल-क्रीड़ा और रास-विलास के अवसरों की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करती रहती हैं । जब कभी ऐसे अवसर आते हैं, तब वे लोक-लाज, कुल-मर्यादा आदि को भूल कर उन्मत्त भाव से कृष्ण की ओर दौड़ पड़ती हैं । और कृष्ण बालक होते हुए भी प्रगल्भ प्रेमी नायक की भाँति उन सब के साथ केलि-क्रीड़ा करते हैं! गोपियाँ सहस्रों हैं, उनकी भावनाएँ भी पृथक्-पृथक हैं, किंतु अकेले कृष्ण उन सब की मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं ! यह बात कृष्ण के देवत्व को भली भाँति सिद्ध करती है। इसके साथ ही उनकी यह प्रतिज्ञा—"मुझे जो जिस भाव से भजता है, उसको मैं उसी भाव से प्राप्त होता हूँ"—कदाचित गोपियों के संबंध में सब से अधिक चरितार्थ होती है

जहाँ तक कृष्ण के प्रति आसक्ति और उनके साथ केलि-क्रीड़ा का संबंध है, वहाँ तक गोपियों और राधा में कोई अंतर नहीं है । सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य और आत्म-संबंध के नाते कृष्ण पर राधा का अधिकार सब से अधिक है । गोपियाँ स्वयं राधा के गौरव और अधिकार को मानती हैं, किंतु उनमें पारस्परिक ईर्ष्या अथवा प्रेम-प्रतियोगिता की गंध भी नहीं है । हो भी कैसे, जब सब ही अनुभव करती हैं कि कृष्ण उनसे ही सर्वाधिक प्रेम करते हैं, और दिन-रात उनके ही साथ रहते हैं

सहस्रों गोपियों का कथन करते हुए भी सूरदास ने रूप, रंग, आयु और परिस्थिति के अनुसार उनका कोई वर्गीकरण नहीं किया है। उन्होंने ललिता, विशाखा, चंद्रावली आदि कुछ गोपियों के अतिरिक्त औरों का नामोलेख भी नहीं किया है। सूरदास की समस्त गोपियाँ समान रूप से सुंदरी और कृष्ण के प्रति अनुरागिणी हैं। उनके इन गुणों में किसी प्रकार का भेद-भाव न रख कर सूरदास ने सामूहिक रूप से उनकी समस्त चेष्टाओं का कथन किया है।

जिस प्रकार राधा और गोपियों ने समान रूप से कृष्ण के संयोग-सुख का अनुभव किया, उसी प्रकार उन्होंने उनके वियोग-दुःख को भी सहा। किशोरावस्था की चंचल और वाचाल राधा विरहाग्नि में तप कर गंभीर और मूक हो जाती है। उसकी मौनाकृति में मूक वेदना के लक्षण स्पष्ट दिखलाई देते हैं। उद्धव के आगमन पर गोपियों के मध्य में राधा अवश्य होगी, किंतु सूरदास ने राधा को परोक्ष में रख कर केवल गोपियों की उक्तियों का ही कथन किया है। एक प्रकार से यह उचित भी था। गोपियाँ कृष्ण की प्रेमिका थीं और राधा उनकी पत्नी। ऐसी दशा में गोपियों की तरह राधा कृष्ण के प्रति कटूक्तियाँ कह भी कैसे सकती थीं!

सूरदास ने कृष्ण-विरह से व्यथित राधा-गोपियों की जिस दयनीय दशा का वर्णन किया है, उसमे कृष्ण के प्रति उनके उत्कट प्रेम का ही परिचय मिलता है। कृष्ण अपने बाल-जीवन के कुछ वर्षों तक उनके साथ रहे थे। इसके बाद वे उनसे पृथक् हुए, तो फिर कभी लौट कर उनके पास नहीं गये; किंतु वे विरहिणी ब्रजांगनाएँ जीवन भर उनके नाम की माला जपती रहीं। जीवन के अवसान-काल में कुछ क्षण के लिए उनको कुरुक्षेत्र में श्री कृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए थे; किंतु इससे ही उन्होंने अपने को कृतार्थ मान लिया। सूरदास ने राधा और गोपियों के चरित्र-चित्रण में हर्ष और विषाद, अनुराग और विराग का अद्भुत मिश्रण किया है।

नंद–यशोदा—सूर-काव्य के नंद जी गोकुल के संभ्रांत व्यक्ति हैं और यशोदा उनकी धर्मपत्नी हैं। वयोवृद्ध होने के कारण वे "नंद बाबा" कहलाते है। वृद्धावस्था में कृष्ण-बलराम जैसे भुवन-भूषण पुत्रों की प्राप्ति के कारण उनके हर्ष का पारावार नहीं है। कृष्ण–बलराम भी अपनी बाल–क्रीड़ाओं द्वारा नद-यशोदा को अहर्निश आनंदित करते रहते हैं।

सूरदास ने नंद-यशोदा का जैसा चित्रण किया है, उससे दम्पति के स्वभाव की उदारता सरलता और निरभिमानता प्रकट होती है। पूतना जैसी दुष्टा नारी का करना और माय से अपने पुत्र को उसे दे देना

तथा अक्रूर के कुचक्र की छानबीन किये बिना ही उसके साथ अपने प्राण प्यारे पुत्रों को सदा के लिए भेज देना आदि बातें यशोदा और नंद की निष्कपट सरल प्रकृति की परिचायक हैं।

सूर-काव्य में नंद स्नेही पिता और यशोदा स्नेहमयी माता के रूप में ही सर्वत्र दिखलाई देते हैं। उनके हृदय वात्सल्य रस से परिपूर्ण हैं। अपने पुत्रों के अनिष्ट की काल्पनिक आशंका से ही उनके कोमल हृदयों को भारी आघात पहुँचता है। जब कभी कृष्ण-बलराम खेल-कूद में घर से दूर चले जाते हैं, तब वे नाना प्रकार की शंकाएँ करने लगते हैं।

कृष्ण की चंचल प्रकृति और उनके नटखट स्वभाव ने ब्रज की समस्त गोपियों को परेशान कर दिया था। वे उनके दधि-माखन की चोरी ही नहीं करते थे, वरन् उनके दधि-भाजनों को तोड़ भी डालते थे। गोपियाँ नंदालय में जाकर यशोदा से शिकायत करती थीं, किंतु सरल प्रकृति की स्नेहमयी माता को यह विश्वास ही नहीं होता था कि उसका अबोध और भोला-भाला बालक इस प्रकार की दुर्घटनाएँ कैसे कर सकता है! कई बार गोपियों ने कृष्ण के अपराध को प्रमाणित भी कर दिया, किंतु यशोदा ने गोपियों को समझा-बुझा कर टाल दिया। यशोदा की समझ में यह नहीं आता था कि उसके घर में दही-माखन का अपार भांडार होते हुए भी उसका कन्हैया दूसरों के घरों में चोरी करने क्यों जाता है!

जब कृष्ण का नटखटपन सीमा से बाहर हो गया और यशोदा उनको समझा कर हार गई, तब सहज क्षमाशील और स्वाभाविक स्नेहवती माता सहसा कुपित हो गई। उसने रोष पूर्वक कृष्ण के दोनों हाथों में रस्सी बाँध कर उन्हें ऊखल से बाँध दिया और आप हाथ में "साँटी" लेकर उनको धमकाने लगी। बेचारे कृष्ण हिचकियाँ लेकर रोने लगे।

यशोदा के उस अभूतपूर्व रौद्र रूप को देख कर गोपियाँ पश्चात्ताप करने लगीं। उनको यह विश्वास नहीं था कि उनके साधारण उपालंभ पर यशोदा उनके प्यारे कन्हैया को इस प्रकार का कष्ट देगी। गोपियों ने विनय पूर्वक यशोदा से कृष्ण के हाथ खोल देने को कहा; किंतु यशोदा ने उनको भी फटकार दिया! जब इस घटना के फल स्वरूप यमलार्जुन के विशाल वृक्ष गिर पडे और यशोदा ने अपने प्राणाधिक कृष्ण को बाल-बाल बचते हुए देखा, तो उसका क्रोध सहसा शांत हो गया। उसने दौड़ कर कृष्ण को छाती से लगा लिया, और उक्त कृत्य के कारण अपने को धिक्कारने लगी। इसके बाद यशोदा ने फिर कभी कृष्ण के प्रति कोप नहीं किया

जब कृष्ण बलराम अक्रूर के साथ मथुरा चले गये और नंद उनको वापिस लाने में असमर्थ हुए, तो यशोदा का कोप एक बार फिर उमड़ पड़ा। अपने पुत्रों को मथुरा छोड़ आने के कारण वह नंद को धिक्कारने लगी और उनको जली-कटी सुनाने लगी। पुत्र-वियोग के कारण बेचारे नंद स्वयं दुखी थे, किंतु जब उन्होंने पत्नी की फटकार सुनी, तो उनको भी क्रोध चढ़ आया। उन्होंने यशोदा से कहा—"तुम्हारा हृदय अतिशय कठोर है। तुमने प्यारे गोपाल को रस्सी से बाँध कर दुखित किया था। अब उनके चले जाने पर क्यों हाय-हाय मचा रही हो!" सूरदास ने नंद-यशोदा के गृह-कलह का कथन कर कृष्ण-बलराम के प्रति उनके अपार वात्सल्य की व्यंजना की है।

सूरदास ने नंद-यशोदा के वियोग वात्सल्य विषयक अनेक करुण शब्द-चित्र अंकित किये हैं। जब यशोदा ने अपने प्रतिष्ठित पद को भूल कर देवकी के यहाँ "धाय" बन कर रहने की कामना की थी, तब उसके पुत्र-स्नेह की तीव्रता और इसके कारण उसकी अधीरता एवं उसके आत्म-त्याग का परिचय मिलता है। जब उद्धव ब्रज से मथुरा वापिस जाने लगे, तब उन्होंने यशोदा से कृष्ण के लिए संदेशा देने को कहा। यशोदा ने शब्दादिक संदेश की अपेक्षा उद्धव द्वारा कृष्ण के पास उनकी मुरली भेज कर जो मूक वेदना व्यक्त की है, उसका अनुभव कर पाठक का हृदय फटने लगता है।

अनेक वर्षों के दुखद वियोग के अनंतर कुरुक्षेत्र में नंद-यशोदा को अपने प्राण प्यारे पुत्रों से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। उस समय उनके पुत्र गोकुल के ग्वाला नहीं थे, वरन् द्वारका के प्रतापी नरेश थे। दीर्घ कालीन प्रतीक्षा के उपरांत वह क्षणिक भेंट होने पर भी, सूरदास ने उसका अति संक्षिप्त कथन किया है। यद्यपि सूर-काव्य में उस समय नंद-यशोदा की मौनाकृतियाँ दिखलाई देती हैं, तथापि उनके नेत्रों से प्रेम-धारा प्रवाहित हो रही होंगी और उनके हृदयों में वात्सल्य रस का सागर उमड़ रहा होगा!

बलराम और गोप बालक—बलराम रोहिणी के पुत्र और कृष्ण के बड़े भाई हैं। कृष्ण की तरह इनका भी आरंभिक लालन-पालन नंद-यशोदा द्वारा गोकुल में हुआ है। वे गौर वर्ण के हृष्ट-पुष्ट बालक हैं। शारीरिक बल में सब से बढ़कर होने के कारण वे खेल में समस्त गोप बालकों के नेता हैं। वे व्यंग वचन और वक्रोक्तियों से कभी-कभी कृष्ण को चिढ़ाते भी हैं। उन्हीं के इशारे पर गोप-बालक भी कृष्ण को तंग करते हैं, किंतु वैसे बलराम कृष्ण से हार्दिक प्रेम रखते हैं।

खेल, गोचारण और दुष्टों के दलन में बलराम सदैव कृष्ण के साथ रहते हैं, किंतु राधा और गोपियों के साथ होने वाली कृष्ण की मधुर लीलाओं में अन्य सखाओं के साथ बलराम दिखलायी नहीं देते हैं। इन लीलाओं में बलराम को दूर रख कर सूरदास ने कृष्ण के शील की ही रक्षा की है।

ब्रज में राक्षसों का संहार तथा मथुरा में कंस और उसके साथियों का वध करते समय कृष्ण को बलराम से अत्यधिक सहायता मिलती है। उसके बाद भी जरासंध, शिशुपाल तथा अन्य दुष्ट राजाओं के साथ कृष्ण के युद्ध में बलराम सबसे आगे रहते हैं। ब्रज से एक बार जाने के बाद कृष्ण दुबारा वहाँ पर लौट कर नहीं गये, किंतु बलराम एक बार द्वारका से भी ब्रज में आते हैं। उस समय समस्त व्रजवासियों से अत्यंत प्रेम पूर्वक मिल कर उनको आश्वासन देते हैं कि कृष्ण शीघ्र उनसे मिलेंगे।

कृष्ण के खेल-कूद, गोचारण और उनकी अंतरंग लीलाओं में कुछ गोप-बालक सदैव उनके साथ रहते हैं। उन अंतरंगी सखाओं में सुबल, श्रीदामा आदि मुख्य हैं। खेल में श्रीदामा प्रायः कृष्ण का प्रतिद्वंदी रहता है। प्रातःकाल होते ही वे गोप-बालक कृष्ण बलराम को आकर घेर लेते हैं और सायंकाल तक छाया की तरह उनके साथ लगे रहते हैं। कृष्ण-बलराम को भी अपने सखाओं के साथ खेलने, बन जाने, गोचारण करने और 'छाक' खाने में अत्यंत आनंद मिलता है। कृष्ण-बलराम के मथुरा जाने पर वे गोप-बालक भी मथुरा गये थे, किंतु नंद के साथ उनको भी खाली लौटना पड़ा था। कृष्ण के वियोग में वे गोपगण भी वर्षों तक कष्ट पाते रहे। अंत में उनको भी कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण के दर्शन हुए थे।

बलराम का मुख्य शस्त्र हल है, इसलिए वे हलधर भी कहलाते हैं। कृष्ण की प्रकृति में सतोगुण और रजोगुण की प्रधानता है, किंतु बलराम की प्रकृति तमोगुण प्रधान है। सूरदास की धारणा के अनुसार कृष्ण परब्रह्म और बलराम ब्रह्म के एक अंश हैं। सूर-काव्य में इसी दृष्टिकोण से उनके चरित्र का गायन किया गया है।

अन्य चरित्र—उपर्युक्त प्रधान चरित्रों के अतिरिक्त सूर-काव्य में और भी अनेक चरित्रों का चित्रण हुआ है। उन चरित्रों में उद्धव, अक्रूर, वसुदेव, कंस, सुदामा आदि पुरुष पात्र और देवकी, रोहिणी, वृषभानु-पत्नी, रुक्मिणी, कुब्जा, चंद्रावली, ललिता आदि स्त्री पात्र विशेष उल्लेखनीय है। सूरदास मानव-स्वभाव और मनोविज्ञान के अपूर्व ज्ञाता थे। यही कारण है वे अपने सभी पात्रों का चरित्र चित्रण ऐसी के साथ कर सके हैं।

कवि की बहुज्ञता—

सूर-काव्य की अन्य विशेषताओं के साथ उसके कवि की बहुज्ञता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवित्व-शक्ति के साथ काव्यशास्त्र का ज्ञान होने पर भी यदि कवि में विविध विद्याओं, कलाओं और सांसारिक अनुभव का अभाव है, तो उसका काव्य विशेष प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता। सूरदास में जहाँ जन्म-जात कवित्व शक्ति, विलक्षण प्रतिभा और काव्यशास्त्र का अपार ज्ञान है, वहाँ उनमें विविध विद्याएँ, कलाएँ और लौकिक अनुभव भी पर्याप्त परिमाण में दिखलाई देते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य का महत्व सर्वोपरि है। सूर-काव्य के पाठक अथवा श्रोता के मन पर सूरदास के इन गुणों की ऐसी गहरी छाप लगती है कि वह उनकी प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता।

सूरदास के जीवन-वृत्तांत से ज्ञात होता है कि उनको नियमित रूप से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। उनके जन्मांध होने के कारण भी उनको अध्ययन करने में असुविधा थी। फिर सत्संग और निजी अनुभव द्वारा ही ऐसा अपार ज्ञान प्राप्त करना वास्तव में बड़े आश्चर्य की बात है!

हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं कि सूरदास काव्यशास्त्र और संगीत-शास्त्र के अपूर्व पंडित थे। काव्यशास्त्र संबंधी सभी बातों के समावेश और संगीत-शास्त्रोक्त अनेक राग-रागनियों के उपयोग के कारण उनका तद्विषयक ज्ञान स्वयंसिद्ध है। उन्होंने अपने काव्य में विविध वाद्य-यंत्रों और राग-रागिनियों का नामोल्लेख भी किया है[१]। उन्होंने अपने दृष्टिकूट पदों में ऐसे अनेक शब्द रखे हैं, जो विभिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। उन्होंने अपने समस्त काव्य में विविध विषयों से संबन्धित विस्तृत शब्दावली का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास शब्द-कोष के बड़े धनी थे।

उनको विविध अंगों के आभूषण और नाना प्रकार के व्यंजनों से भी परिचय था[२]। श्रीनाथजी की आठों समय की झाँकियों के शृंगार और राजभोग विषयक पदों में उन्होंने भूषणों और व्यंजनों के नाम गिनाये है। उनको कृषि, वाणिज्य, ज्योतिष और शकुन विद्याओं का भी यथेष्ट ज्ञान था। उनकी ज्योतिष विषयक जानकारी के संबंध में "साहित्य-लहरी" का तिथि सूचक पद तथा "सूरसागर" के कतिपय पद उल्लेखनीय हैं[3]। उन्होंने रूप-वर्णन की उत्प्रेक्षाओं में भी अपने ज्योतिष ज्ञान का इस प्रकार परिचय दिया है—

१. इसी ग्रंथ के पृष्ठ २४३ और ३०५ देखिए।
२. " " " २३२ देखिए।
३ " " ३ और ११ देखिए

नील–सेत और पीत–लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि गुरु-असुर देव-गुरु मिलि, मनु भौम सहित समुदाई।।

जब कृष्ण गेंद खेलते हुए कालिय-दह में कूद गये, तब यशोदा और नंद को अनेक अपशकुन होने लगे थे। सूरदास के निम्न पदों में उनके तद्विषयक ज्ञान का इस प्रकार परिचय मिलता है—

(१) जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि एक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी।।
आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरी दोष मिटाइ।
मंजारी आगे ह्वै आई, पुनि फिरि आँगन आइ।।
व्याकुल भई, निकसि गई बाहिर, कहँ धौं गये कन्हाई।
बाएँ काग, दाहिनें खर-स्वर, व्याकुल घर फिरि आई।।

(२) देखे नंद चले घर आवत।
पैठत पौरि छींक भई बाएँ, दहिनें धाह सुनावत।।
फरकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करति लराई।
माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई।।

सूर-काव्य का धार्मिक स्वरूप होने के कारण इसमें धर्म-ग्रंथों के तत्व विशेष रूप से मिलते है। इनसे ज्ञात होता है कि सूरदास को रामायण, महाभारत, भागवत तथा पुराणोक्त कथानकों के अतिरिक्त गीता, वेदांत, योग तथा विविध दार्शनिक सिद्धांतों का भी पर्याप्त ज्ञान था। यद्यपि सूरदास गृहस्थ नहीं थे, तथापि साभाजिक रीति-रिवाजों और सामाजिक प्रथाओ से वे पूर्णतया परिचित थे। श्री कृष्ण के जाति-कर्म, नाम-करण, अन्न प्राशन, वर्ष गाँठ, कर्ण छेदन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों एवं विविध अवसरो पर आयोजित पूजा, व्रत, उत्सव तथा मनोरंजक प्रसंगों के सांगोपांग कथन करने से उनके तत्संबंधी ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है।

इनके अतिरिक्त सूरदास को अन्य विद्याओं और कलाओं का भी पर्याप्त ज्ञान था। सूर-काव्य में स्थान-स्थान पर ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनसे उनकी विलक्षण बहुज्ञता और उनके प्रकांड पांडित्य का परिचय मिलता है।

सूर-काव्य की विशेषताएँ इतनी अधिक हैं कि उनके संक्षिप्त विवरण के लिए भी यहाँ पर पर्याप्त स्थान नहीं है। सूरदास वास्तव में हिंदी साहित्य गगन के सूर्य हैं, जो पाठकों और श्रोताओं के मन-मंदिरों को चिर काल तक प्रकाशित करते रहेंगे

* इति *

परिशिष्ट

प्रासंगिक-पदावली

पुस्तक में आये हुए कुछ महत्त्वपूर्ण अपूर्ण पदों की संकेत सहित पूर्ति—

आजु हौं एक एक करि टरि हौं ।
मोहि कहा डरपावत हो प्रभु, अपने पूरे पर लरि हौं ।।
[1]हौं तौ पतित सात पीढ़िन कौ, जो जिय ऐसी धरिहौं ।
हौं तो फिरि वैसोई ह्वै हौं, तुमहिं बिरद बिनु करि हौं ।।
अब तो तुम परतीत नसाई, क्यों मानें मेरो हियरा ।
"सूरदास" साँचौ तब थपि हौं, जब हँसि देहौ बीरा ।। १ ।।

प्रभु मैं सब पतितन कौ राजा ।
को करि सकै बराबरि मेरी, पाप करन कौं ताजा ।।
चारि चुगलि के चँमर ढुरत हैं, काम क्रोध दल बाजा ।
निंदा के मेरें छत्र फिरत हैं, तऊ न उपजी लाजा ।।
[2]चल्यौ सबेरौ, आयौ अबेरौ, लैकर अपने साजा ।
"सूरदास" प्रभु तुम्हरे मिलि है, देखत जम दल भाजा ।। २ ।।

[3]मन रे तू भूल्यौ जनम गँवावै ।
बेग ही चेत सकल सिर ऊपर, काल सदा मँडरावै ।।
खान पान अटक्यौ निसि बासर, जिभ्या लाड़ लड़ावै ।
गृह सुख देखि फिरत है फूल्यौ, सुपने मन भटकावै ।।
कै तू छाँड़ि जायगौ इनकों, कै तोहि इहैं छुड़ावै ।
ज्यों तोता सेंमर पर बैठ्यौ, हाथ कछू नहिं आवै ।।
मेरी मेरी करत बावरे, आयुष वृथा गँमावै ।
हरि से हितू बिसारे वैसे, सुख विष्टा चित भावै ।।
गिरिधरलाल सकल सुखदाता, स्रुति पुरान सब गावै ।
"सूरदास" बल्लभ उर अपने, चरन कमल चित लावै ।। ३ ।।

---

1. पृष्ठ ७९ के आरंभ की अधूरी पंक्ति
2. पृष्ठ ८३ के अंत में अधूरा पद
3. पृष्ठ ८५ पर अधूरा पद

[1]मन रे तैं आयुष वृथा गँवाई ।
इंद्री वस्य परायन डोलत, उदर भरन के ताँई
सेयौ न लाल चरन गिरिधर के, बेर बेर चित लाई
निसि दिन फिरत विषय रस माँतो, सुत दारा कों लड़ाई ॥
यह संसार रैन को सुपनौ, मात पिता पति भाई ।
बिनु ब्रजराज नहीं कोई तेरौ, वेद पुरानन गाई ॥
कहा भयो संपति बहु बाढ़ी, पाई बहुत बड़ाई ।
दिवस चार में खेह उड़ैगी, यह सब सोंज पराई ॥
धन जोबन गृह देखि भुलानो, कुबुधि कुबुद्ध कमाई ।
रंचक स्वाद जीभ के कारन, तोरी स्याम सगाई ॥
जन्म पाय जग में कहा कीनों, कीनो कहा कमाई ।
जा सुख कों सुख मानि रह्यौ है, सो सुख है दुखदाई ॥
बहुत दिवस भटकत भए तोकों, अजहू सुधि नहिं आई ।
'कौड़ी मार, बिटौरा चूकत', छार परो चतुराई ॥
अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्री बल्लभ सुखदाई ।
"सूरदास" सरनागति हरि की, और न कछू उपाई ॥

[2]अजहू सावधान किन होहि ।
माया सुखहिं भुजंगनि को विष, उतर्यो नाहिन तोहि ।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ ।
बार बार ह्वै स्रवन निकट तोहि, गुरु-गारुड़ी सुनायो ॥
बहुत अध्यास देह अभिमानो, मो देखत इन खायौ ।
कोउ-कोउ उबरे साधु संगति मिलि, स्याम धनंतर पायौ ॥
सलिल मोह नदी क्यों तरि सकि, बिना गीत ताके गाए ।
"सूर" मिटै अज्ञान - मूरछा, ज्ञान मूरि के खाए ॥ ५

[3]श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई ।
श्री लक्ष्मन सुत द्विज के राजा, कीजै कहा बड़ाई ॥
बहुरि कृष्ण अवतार लियो है, सदन तुम्हारे आई ।
कोटि कोटि कलि जीव उद्धारन, प्रगटे श्री जदुराई ॥
चिरजीवो अक्काजी को सुत, श्री विट्ठल सुखदाई ।
गिरिधरलाल की ढाढ़ी कहावै, "सूरदास" बलि जाई ॥ ६

१. पृष्ठ ८५ पर अधूरा पद
२. पृष्ठ ८५ पर अधूरा पद
३. पृष्ठ ८६ पर अधूरी पंक्ति

[1]नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ, मैं गोवर्धन तें आयौ ।
तुम्हारे पुत्र भयौ, हौं सुनिकै, अति आतुर उठि धायौ ॥
बंदीजन और भिक्षुक सुनि - सुनि, दूरि - दूरि तें आए ।
इक पहलें ही आसा लागे, बहुत दिनन तें छाए ॥
ते पहिलें कंचन मनि भूषन, नाना बसन अनूप ।
मोहि मिले मारग में, मानों जात कहूँ के भूप ॥
तुम सौ परम उदार नंद जू, जो माँग्यौ सो दीनौं ।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन में, तुम सरि साखौ कीनौं ॥
कोटि देहुँ तौ परचौ रहूँगौ, बिनु देखे नहिं जैहौं ।
नंदराय सुनि बिनती मेरी, तबहिं बिदा भल ह्वै हौं ॥
दीजै मोहि कृपा करि सोई, जो हौं आयौ माँगन ।
जसुमति सुत अपने पाँयन चलि, खेलन आवै आँगन ॥
मदनमोहन मैया कहि बोलै, यह सुनिकै घर जाऊँ ।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी, "सूरदास" मेरौ नाऊँ ॥ ७ ॥

[2]है हरि मोहू तें अति पापी ।
घातक कुटिल चबाई कपटी, मोह क्रोध संतापी ॥
लंपट धूत पूत दमरी कौ, विषम जाप नित जापी ।
काम विवस, कामिनि ही के रस, हठ करि मनसा थापी ॥
भच्छ अभच्छ अपय पीवन कौं, लोभ लालसा धापी ।
मन क्रम बचन दुसह सबहिन सौं, कटुकै वचन अलापी ॥
जेते अधम उधारे प्रभु तुम, मैं तिन की गति मापी ।
सागर "सूर" विकार जल भरचौ, अधिक अजामिल बापी ॥ ८ ॥

[3]तुम देखो सखि आज नयन भरि, हरि जू के रथ की सोभा ।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत, कीजियत हैं जिहिं लोभा ॥
चारु चक्रमनि खचित मनोहर, चंचल चँमर पताका ।
स्वेत छत्र जनु ससी प्राचि दिसि, उदित भयौ निसि राका ॥
स्याम सरीर सुकेस पीत पट, सीस मुकुट और माला ।
मनों दामिनि घन रवि तारागन, उदित एक ह काला ॥

पृष्ठ ६० और ८८ २. पृष्ठ ९१ ३. पृष्ठ १००

उपजत छबि कर अधर संख धुनि, सुनियत सब्द प्रसंसा
मानहु अरुन कमल मंडल में, कूजत है कल हंसा
आनंदित पितु भ्रात जननि सब, कृष्न मिलन जिय भावै
"सूरदास" गोकुल के बासी, प्राननाथ वर पावै

[1]रे मन चिंता ना कर पेट की ।
हलन चलन में कछु नाहिन ह्वै, कलम लिखी जो ठेट की
जीव जंतु जेते जल थल के, तिन विधि कहा समेट की
समै पाय सबहिन कों पहुँचे, कहा बाप कहा बेट की
जाकों जितनौ लिख्यौ विधाता, ताकों तितनौ पहुँचै पेट की
"सूरदास" ताहि क्यों नहि सुमिरै, जो तू है ऐसौ चेटकी

[2]गुरु बिनु ऐसी कौन करें ।
माला तिलक मनोहर बानों, सिर पर छत्र धरें
भवसागर तें बूड़त राखें, दीपक हाथ धरें
"सूरस्याम" गुरु ऐसे समरथ, जिहिं तें लै उधरें

[3]कृष्न भक्ति करि कृष्नहिं पावै ।
कृष्नहि तें यह जगत प्रगट है, हरि में लय ह्वै जावै
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों ही, हरि लीला जग देखै
तौ तिहिं दुख सुख निकट न आवें, ब्रह्म रूप करि लेखै
अज्ञानी मैं - मेरो करिकै, ममता बस दुख पावै
फिरि-फिरि जोनि भ्रमै चौरासी, मद मत्सर करि आवै
हरि हैं तिहूँ लोक के नायक, सकल भलो सो करि हैं
"सूरदास" यह ज्ञान होय जब, तब सुख सों नर तरि हैं

[4]हरिजन संग छिनक जो होई ।
कोटि स्वर्ग सुख, कोटि मुक्ति सुख, वा सम लहै न कोई
महद भाग्य पुन्य संचित फल, कृष्ण कृपा ह्वै जाके
"सूरदास" हरिजन पद महिमा, कहत भागवत ताके

१- पृष्ठ १२२
२ पृष्ठ १२३
३ पृष्ठ १८८
४ पृष्ठ २५३

अनुक्रमणिका

१. नामानुक्रमणिका

२. ग्रंथानुक्रमणिका